

बहुरहस्यमय कापालिक मठ

(सत्य घटनाओं पर आधारित योग तांत्रिक कथा प्रसंग)



कथा-सार

- एकाएक मुझे होश हुआ। बापरे! यह तो अघोर पन्थियों का बलि देने का ढंग है। वह होमकुण्ड, वह वेदी, वह काली की विकराल मूर्ति, वह भयानक युवती और वह लेटा हुआ निरीह बालक.....।

—वह रहस्यमयी कापालिक मठ

- मेरा सारा शरीर काँप उठा। सन्दूकची तोड़कर खोली गयी। उसके भीतर मृगछाला में लपेटी हुई दर्शनशास्त्र की हस्तलिखित एक मोटी-सी पुस्तक रखी मिली।

—नरककाल

- रानी राजलक्ष्मी संन्यासी के दोनों पैर सीने से लगाये रो रही थी। संगीत की मूर्च्छा ने विह्वल बना दिया था राजलक्ष्मी को। उसके अन्तर की सोयी हुई चेतना को जगा दिया था। उस गीत ने.....।

—मैं छली गयी।

- एक बात पूछ सकता हूँ मैं।
विपिन बाबू ने अचकचा कर मेरी ओर देखा, पूछिए।
क्या पूछना चाहते हैं आ?
यह शव किसका है?
ओह! विपिन बाबू से जोर से सांस लेकर कहा, यह राजतांत्रिक तारानाथ भट्टाचार्य का है। पिछले 10 वर्षों से इसी प्रकार रखा हुआ है। क्यों?

—तंत्र साधना एक राजकुमारी की।

- कमल के पत्तों पर बिखरी ओस की बूंदों को बड़ी हिकमत से इकट्ठा कर पन्ने के गिलास में रख दिया हो, ऐसा ही लगा उस समय रत्ना का सौन्दर्य मुझे। एकाएक नजदीक के किसी आश्रम में टन्-टन् ग्यारह का घंटा बजा, और रत्ना की पार्थिव काया आलौकिक सत्ता में बदल गयी फिर एक मास के लिए।

—दो आत्माएँ

वह रहस्यमय कापाळिक मठ

[सत्य घटनाओं पर आधारित योग-तांत्रिक कथा प्रसंग]

अरुणकुमार शर्मा

संकलन
मनोज शर्मा



विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

WAH RAHASAYAMAYA KAPALIK MATH

by

Arun Kumar Sharma

ISBN : 81-7124-222-7

प्रथम संस्करण : १९९९ ई०

मूल्य : १८० रुपये

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी-२२१ ००१

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा०लि०

चौक, वाराणसी-२२१ ००१

उन आत्माओं की स्मृति में
जिनकी अदृश्य प्रेरणा शदैव प्राप्त होती रही है
सुझे

— अरुणकुमार शर्मा

दो शब्द

जन्म, मृत्यु और जीवन का रहस्य क्या है? मनुष्य क्या स्वयं में एक रहस्यमय प्राणी है? इनके अतिरिक्त मन और आत्मा क्या है? उनकी शक्ति की सीमा क्या है? कौन से माध्यम द्वारा मनुष्य उन दोनों की शक्तियों को प्राप्त कर सकता है? क्या उन शक्तियों द्वारा लौकिक-पारलौकिक लाभ सम्भव है? यदि सम्भव है तो वह उससे क्या-क्या कर सकता है?

क्या अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण, दूर दृष्टि, देहातीत अनुभव आदि सम्भव है? यदि सम्भव है तो उन्हें कैसे और किन साधनों से प्राप्त किया जा सकता है?

कहने की आवश्यकता नहीं इन सब के विषय में हिन्दू धर्म ग्रन्थों में विस्तार से बहुत कुछ लिखा हुआ है। कभी-कभी विभिन्न रूपों से विभिन्न प्रकार के दृष्टान्त सामने भी आते हैं, लेकिन वैज्ञानिक रूप से उनकी पुष्टि पूर्णतया नहीं हो पाती है। इसका कारण एकमात्र यह है कि विज्ञान की अपनी एक विशिष्ट सीमा है। अपनी उस विशिष्ट सीमा के अन्तर्गत आने वाले विषयों को ही सत्यापित कर सकने में समर्थ है वह। यह कहना अनावश्यक न होगा कि पश्चिमी देशों में परामनोविज्ञान का आश्रय लेकर उपर्युक्त रहस्यमय गूढ़ विषयों पर शोध और अन्वेषण कार्य व्यापक रूप से किया जा रहा है। जिसका शुभ परिणाम सामने आ रहा है शनै शनै। लेकिन परासामान्य और परामनोवैज्ञानिक तथ्यों के गूढ़ और गोपनीय रहस्य अपने आप में अत्यन्त जटिल हैं। अनुमानों और अन्धविश्वासों का तिमिराच्छन्न अन्धकार की परतें उन पर चढ़ी हुई हैं। जिन्हें हटाकर ही शोध, अन्वेषण और जाँच-पड़ताल आदि किया जा सकता है और यह सब कार्य पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर ही सम्भव है।

कहने की आवश्यकता नहीं, ऐसा ही किया है मैंने। परामनोविज्ञान के जितने भी पक्ष हैं, उनकी सीमाओं को देखते हुए सन् १९४८ ई० में स्वतन्त्र रूप से भूत-प्रेत और तंत्र-मंत्र जैस परामानसिक जगत से सम्बन्धित विषयों पर शोध और अन्वेषण कार्य शुरू किया मैंने। इस दिशा में जहाँ एक ओर भारी सफलता प्राप्त हुई, वहीं दूसरी ओर कई प्रकार की कष्टकारक स्थितियों और अनेक प्रकार की भयंकर विपत्तियों का भी सामना करना पड़ा मुझे। अस्तु,

वह रहस्यमय कापालिक मठ और उसकी परिधि में आने वाली अन्य कथाएँ मेरे उसी शोध और अन्वेषण का परिणाम हैं, इसमें सन्देह नहीं। आशा है पाठकों के लिए 'यह संग्रह' मनोरंजक तो होगा ही इसके अतिरिक्त ज्ञानवर्धक भी सिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं।

शिवरात्रि
१९९९ ई०
वाराणसी

अरुण कुमार शर्मा

अपनी बात

पिताजी श्री अरुणकुमार शर्माजी ने अपने पचास वर्ष के साहित्य साधना काल में अपने अनुभवों पर आधारित भूत-प्रेत और तंत्र-मंत्र परक सैकड़ों कथाएँ लिखीं और लिखे अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर लेख व निबन्ध भी। उनकी रचनाएँ विभिन्न सामायिक पत्र-पत्रिकाओं में बराबर प्रकाशित होती रही। कोई ऐसी पत्र-पत्रिका नहीं, जिसमें प्रकाशित न हुई हो उनकी रचना। मैंने उनकी सभी प्रकार की रचनाओं को मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त करने का प्रयास किया है। पहले भाग में तंत्र-मंत्र परक कथाओं का संकलन है। दूसरे भाग में भूत-प्रेत आदि से सम्बन्धित कथाओं का संकलन है। जबकि शेष दो भागों में है आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विषयों पर लिखे गये लेख-निबन्ध आदि का संग्रह।

प्रत्येक भाग के अपने-अपने शीर्षक हैं, जैसे पहले भाग का शीर्षक है 'सत्य घटनाओं पर आधारित योग-तांत्रिक कथा प्रसंग'। जिसके अन्तर्गत पहले कड़ी के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है 'वह रहस्यमय कापालिक मठ' जिसमें सनसनीखेज और रोमांचकारी तरह कथाओं का संग्रह है।

आशा एवं विश्वास है कि कथा साहित्य के रूप यह योग-तंत्रपरक कथा संकलन उपादेय और ज्ञानवर्धक सिद्ध होगा पाठकों के लिए और उनका प्रोत्साहन प्राप्त होगा मुझे।

व्यवस्थापक

मनोज शर्मा

आगम निगम संस्थान

५/२३, हरिश्चन्द्र रोड

वाराणसी-२२०००१

☎ : ३१३७७५, ३१२२९३

प्रकाशकीय

पं० अरुणकुमार शर्मा योग, तंत्र और भूत-प्रेत आदि परा मनोवैज्ञानिक विषयों के निष्णात् विद्वान तो हैं ही इसके अतिरिक्त उन्होंने तंत्रशास्त्र के गूढ़ अंगों पर गम्भीरतापूर्वक स्वतंत्र रूप से शोध एवं अन्वेषण कार्य भी किया है। शोध एवं अन्वेषण काल में उनके जीवन में अनेक अविश्वसनीय, लौकिक और पारलौकिक घटनाएँ भी घटी हैं, जिन्हें अपनी विशिष्ट कथा शैली में प्रस्तुत करते हुए उनके माध्यम से योग, तंत्र और भूत-प्रेत आदि के रहस्यमय गोपनीय पक्षों को विशेष रूप से उद्घाटित करने का प्रयास किया है। 'वह रहस्यमय कापालिक मठ' उसी प्रयास का एक महत्वपूर्ण परिणाम है।

इस समय व्यापक अश्रद्धा का युग है। सत्य क्या है, असत्य क्या और वास्तविकता क्या है? इसका समाधान और इसका निर्णय करने की क्षमता और योग्यता किसी धार्मिक समुदाय तथा किसी धार्मिक सम्प्रदाय में नहीं है इस समय और एकमात्र यही कारण है कि सभी प्रकार की साधना, उपासना आदि के प्रति घोर भ्रामक धारणा फैली हुई है सभी वर्ग के लोगों में।

ऐसे वातावरण और ऐसी परिस्थिति में प्रस्तुत कथा संग्रह के अन्तर्गत कुछ ऐसे योग-तांत्रिक साधना प्रसंग हैं, जिन पर पाठकों के मन में सहज और स्वाभाविक रूप से अविश्वास भ्रम एवं सन्देह उत्पन्न हो सकता है। अतः उनके निराकरण हेतु संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि कथाओं में प्रसंगवश आयी हुई साधना सम्बन्धी सभी योग-तांत्रिक चर्चाएँ पूर्ण रूप से योगशास्त्र और तंत्रशास्त्र द्वारा प्रमाणित हैं, इसमें सन्देह नहीं। जहाँ-जहाँ प्रसंगवश जो तांत्रिक विवरण दिए गये हैं उनके विषय में रुद्रयामल तंत्र, प्राण तोषिणी तंत्र, कुलार्णव तंत्र, शक्तिसंगम तंत्र, मेरुतंत्र, देवीयामल तंत्र, कुलमृत दीपिका कालिका पुराण, नाथ सम्प्रदाय आदि महत्वपूर्ण तंत्र ग्रन्थों में अध्ययन किया जा सकता है। कथा संग्रह में कोई ऐसा विषय विवरण अथवा प्रसंग नहीं है जिनकी मूलभित्ति शास्त्र विरुद्ध हो।

आशा है प्रस्तुत कथा संग्रह पाठकों के लिए मनोरंजन के अतिरिक्त ज्ञानवर्धक और उपयोगी भी सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है।



कथावस्तु क्रम

	पृष्ठ
१. वह रहस्यमय कापालिक मठ	१
२. नरककाल	२१
३. वह रहस्यमय साधु	३५
४. ज्योतिषी का रहस्य	६४
५. मैं छली गयी	७७
६. रहस्यमयी राजकुमारी की रहस्यमयी साधना	१११
७. श्मशान भैरवी	१२७
८. दो आत्माएँ	१३८
९. एक तांत्रिक का रहस्यमय खजाना	१५०
१०. वह रहस्यमय तांत्रिक संन्यासी	१६०
११. आसाम की कामरूप विद्या	१७४
१२. डाकिनीविद्या	१८४
१३. ब्रह्मपिशाच का शाप	१९३

उपर्युक्त सभी कथाएँ रहस्य रोमांच से भरपूर सनसनीखेज व
अविश्वसनीय सत्य घटनाओं पर आधारित हैं

— संकलनकर्ता

मैंने अपने लिए कुछ भी नहीं लिखा। मैंने लिखा— भोग-
विलास में आकण्ठ डूबे हुए अकर्मण्य देवताओं के लिए चाहे वह
स्वर्ग सुर हों, चाहे हों भूसुर। मैंने लिखा— उन मनुष्यों के लिए जो
प्रज्ञाहीन और विवेकशून्य होकर पथ-भ्रष्ट हो गये हैं और जो भूल
गये हैं, जीवन के परम आदर्श को और परम उद्देश्य को।

मेरा जीवन
परम करुणामयी परमेश्वरी
की
एक लीला।

अरुणकुमार शर्मा

वह रहस्यमय कापालिक मठ

आपने मेरी बहुत सारी रचनाएँ पढ़ी होंगी। भूत-प्रेत, तंत्र-मंत्र और योग-अध्यात्म सभी से संबंधित। मगर प्रस्तुत कथा के माध्यम से मैं आपको अपने रहस्यमय जीवन की जो रहस्यमयी घटना सुनाने जा रहा हूँ वह निश्चय ही अति विलक्षण है। इतनी विलक्षण, इतनी रोमांचकारी और इतनी रहस्यमय कि साधारण लोग विश्वास ही नहीं कर सकेंगे उस पर। बहुत से लोग मुझसे भूत-प्रेत-पिशाच की सिद्धि चाहते हैं। बहुत से लोग चाहते हैं मुझसे तंत्र-मंत्र की साधना। लोग समझते हैं कि यह सब सरल और सहज है। ऐसे लोगों को क्या जवाब दूँ मैं। कैसे समझाऊँ इन लोगों को कि ये सब सिद्धियाँ और ये सब साधनायें सभी लोगों के लिए नहीं हैं। सभी नहीं प्राप्त कर सकते, सभी नहीं कर सकते। इन सबके लिये काफी कष्ट उठाना पड़ता है। सांसारिक सुख-सुविधा, आनन्द और तमाम सांसारिक आकर्षणों की सपने में भी कल्पना नहीं करनी पड़ती। मोह-माया से भी दूर रह कर संसार में, समाज में तथा परिवार में जड़वत् और शववत् रहना पड़ता है। तभी जाकर मानवेतरशक्ति प्राप्त होती है। तभी सब कुछ सम्भव भी होता है। मगर फिर भी मानवेतरशक्ति प्राप्त कर लेने के बाद व्यक्ति उसी प्रकार संसार, समाज और परिवार में अपने आपको सहज और व्यवस्थित नहीं कर पाता जैसे मैं हूँ। एक विचित्र और असहज स्थिति में जी रहा हूँ मैं। मेरी मानस-चेतना और मेरी आत्म-शक्ति देह की सीमा को लाँघकर एक ऐसे रहस्यमय केन्द्र की ओर उन्मुख हो गयी है, जहाँ शून्य के सिवाय और कुछ भी नहीं है। एक परम शून्य, एक विराट और सर्वव्यापक शून्य से भरता जा रहा है मेरा जीवन और अस्तित्व। कब्रिस्तान की सारी खामोशी और सारी नीरवता बिखर गयी है मेरे चारों ओर। श्मशान की सारी उदासी और सारा वैराग्य भर गया है मेरे जीवन के कण-कण में। एक निराश्रित, एकाकी और संबलहीन जीवन जी रही है मेरी आत्मा।

मैं शरीर नहीं हूँ। मैं शरीर के भीतर हूँ। मैं शरीर के आश्रित नहीं हूँ। शरीर मेरे आश्रित है। मगर अब मैं शरीर को छोड़ना चाहता हूँ हमेशा के लिये। पर शरीर है कि मुझसे अलग नहीं होना चाहता। वह यह नहीं जानता और यह नहीं समझता कि मैं कितना व्याकुल हूँ। मेरी आत्मा कितनी आकुल है—यह सपना तोड़ने के लिये। इस सपने से जागने के लिये। संसार सपना ही तो है। सपने के सिवाय और कुछ भी नहीं। मृत्यु के शानदार जागरण के बाद ही व्यक्ति को पता चलता है कि जिसे वह जीवन कहता था और जीवन समझता था वास्तव में वह एक सपना ही है। सपने के सिवाय और कुछ नहीं। और जब यह सपना देखते-देखते घबरा जाता हूँ और शरीर से मेरी आत्मा का तालमेल नहीं बैठता तब उद्भ्रान्त हो उठता है मेरा चित्त। उस दिन भी मेरा मन खिन्न था। चित्त उद्भ्रान्त था। और जब ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है तो मैं एकान्त में चला जाता हूँ। बिल्कुल निर्जन सुनसान स्थान में। लेकिन उस दिन मैं

काफी व्याकुल और अशांत था। एकान्त निर्जन, और सुनसान स्थान भी मेरी व्याकुलता को दूर न कर सका। शायद नियति कुछ और चाहती थी तभी तो मैं बिना कुछ सोचे-समझे और बिना कोई विचार किये चल पड़ा 'अरुणाचल' की ओर।

अब यहीं से वह विलक्षण कथा शुरू होती है, जिसकी चर्चा मैंने ऊपर की है और यह भी बतलाया है कि मेरी यह कथा इतनी विचित्र और इतनी विलक्षण है कि आप लोगों में से अधिकतर को विश्वास ही न होगा। लोगों को विश्वास हो या न हो, भले ही लोग मेरी कल्पना समझें और कल्पना समझ कर भले ही मेरी उपेक्षा करें, इसकी परवाह नहीं है मुझे। मगर हाँ, एक बात अवश्य है और वह यह है कि यदि आप घटनाओं से संबंधित स्थान का पता मुझसे मालूम करना चाहेंगे तो मैं आपको कभी भी नहीं बतला सकूँगा, क्योंकि मैं यह नहीं चाहता कि मेरी तरह और कोई व्यक्ति अनजाने में जीवनभर पछताने का सिलसिला लगा ले।

हाँ, तो अरुणाचल प्रदेश का भ्रमण करता हुआ मैं एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया था जहाँ आस-पास कुछ भी न था। चारों तरफ मीलों ऊँची हिमालय की चोटियाँ खड़ी थीं, आसपास को चुनौती देती हुई। क्षितिज से क्षितिज तक फैला हुआ दुर्लभ पहाड़ी इलाका, जिसे देख कर मन में आतंक की अनुभूति होती थी। बर्फ से आच्छादित चोटियाँ जिनकी पृष्ठभूमि में था नीला आकाश। तेज हवा के कारण हर समय उन चोटियों पर बर्फ जमी ही रहती थी। अद्भुत दृश्य था। उन अद्भुत दृश्यों को अपलक निहारता हुआ धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था, तभी मेरी नजर एक किलेनुमा मठ पर पड़ी। छोटी-छोटी पहाड़ियों से घिरा वह मठ अत्यन्त रहस्यमय लग रहा था। मठ का काफी हिस्सा खँडहर हो चुका था। बाकी हिस्सा जो बचा था वह खँडहर में बदलने ही वाला था। मठ के चारों तरफ घनी झाड़ियाँ थीं जिनके भीतर जंगली कीड़े किर्र-किर्र कर रहे थे। पत्तों की खड़खड़ाहट के अलावा और हवा की सनसनाहट के अतिरिक्त चारों तरफ गहन निस्तब्धता थी।

मैं खड़ा हो गया। चारों तरफ ताका मैंने। मन ही मन में अपने ऊपर झल्लाया। सोचने लगा कि अब क्या किया जाये। भटक कर जिस स्थान पर पहुँच गया था, वहाँ से वापस लौटने का मतलब था रात के स्याह अंधकार में जंगली जानवरों के भूख के सामने अपने आपको समर्पित कर देना और सीधे बिना किसी से पूछे यमलोक पहुँच जाना।

तभी उस मरघट जैसे उजाड़ मठ के सामने की तरफ पहली ही मंजिल की एक कोठरी की खिड़की में से बाहर पड़ता हुआ प्रकाश मुझे दिखलायी पड़ा। रोशनी देख कर मुझे लगा कि अवश्य वहाँ कोई रहता होगा। मैंने सोचा रात वहीं बिता ली जाये।

झटपट मैं मठ के भीतर पहुँच गया। अहाते में ऊँची-ऊँची घास उगी हुई थी। वातावरण में एक अबूझ-सी खिन्नता व्याप्त थी। अहाते के उस पार एक विशाल दरवाजा था। मैंने जोर-जोर से उस दरवाजे को खटखटाया, मगर कोई नहीं आया दरवाजा खोलने।

तब मैंने चिल्ला कर कहा—अरे भाई कोई है, इस मकान में।

कई बार खटखटाने और आवाजें लगाने पर भी किसी ने दरवाजा न खोला। जब मैंने चिढ़कर कहा—“अरे भाई इन्सान हैं इसके अन्दर या कोई और।” इस तरह घबड़ाते हुए मैं दरवाजे पर एक नजर फेंककर ही हड़बड़ाहट के साथ रास्ता टटोलता हुआ मठ की उस खिड़की के पास गया जिसमें से छनकर रोशनी बाहर आ रही थी। खिड़की कहने से आप जो कल्पना करेंगे वैसी नहीं थी वह खिड़की। एक दीवार में एक चार फुट चौड़े और छह फुट लम्बे चौखट में एक समूचा शीशा फिट था। शीशा सफेद रंग का और काफी मोटा था। जिस कमरे में शीशे की वह खिड़की फिट थी, उसमें काफी तेज रोशनी हो रही थी और मुझे उस रोशनी में कमरे के भीतर एक विचित्र और आश्चर्यजनक दृश्य दिखलाई पड़ा। खिड़की के सामने वाली दीवार के पास भगवती पराशक्ति महाकाली की एक विकराल मूर्ति थी। मूर्ति अष्टभुजी थी। शव पर आरूढ़ थी। मूर्ति के चरणों के पास एक हवनकुण्ड था, जिसमें से सुगन्धित धूम निकल-निकल कर कमरे के वातावरण में छा रहा था। हवनकुण्ड के चारों तरफ पत्थी मार कर पद्मासन की मुद्रा में पाँच-छह व्यक्ति बैठे हुए थे। उन सभी का रूप भयानक था। शरीर का रंग काला था। उनके सिर मुड़े हुए थे। गले में बन्दर की खोपड़ियाँ लटक रही थीं। कानों में भी किसी जीव की हड्डी का कुण्डल झूल रहा था। उन सभी के होंठ इस प्रकार हिल रहे थे जैसे वे कोई मन्त्र पढ़ रहे हों। बीच-बीच में वे हवनकुण्ड में शराब और घी की आहुतियाँ भी छोड़ते जा रहे थे। हवनकुण्ड के पास ही एक लम्बे आकार का फरसा था और उस फरसे के पास ही चारपाँच वर्ष का एक बच्चा लेटा हुआ था। वह नंगा था और उसके सारे शरीर में सिन्दूर पुता हुआ था। गले में जवा फूल की माला भी पड़ी थी। सहसा उस रहस्यमय कमरे में एक युवती न जाने किधर से आ गयी। युवती की आयु २५ वर्ष से अधिक नहीं थी। रंग काला था, मगर देखने में आकर्षक थी। उसके बाल खुल कर पीठ पर बिखरे हुए थे। होठ लाल थे। आँखें भी लाल हो रही थीं। मस्तक पर सिन्दूर का गोल टीका था। गले में बन्दर की खोपड़ी झूल रही थी। वह सर्वांग नग्न थी। साक्षात् वह किसी हाकिनी या डाकिनी-सी लग रही थी। ऐसी भयानक स्त्री की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। उसके उपस्थित होते ही हवनकुण्ड के पास बैठे हुए व्यक्तियों में से एक व्यक्ति उठ कर हाथ में मदिरा-पात्र लिये उसके पास पहुँचा और मदिरा-पात्र उसे थमा दिया। कालरात्रि-सी वह भयंकर युवती एक साँस में गटगट कर सारी मदिरा पीने के बाद वहीं एक आसन पर बैठ गयी। उस समय उसकी मुद्रा और उसके चेहरे का भाव बिल्कुल अमानवीय लग रहा था। मुँह बिचका कर और होठों को दबाकर कभी वह सोते हुए बच्चे की ओर देखती-तो कभी काली की मूर्ति की ओर। युवती का चेहरा काफी भयानक और काफी वीभत्स लग रहा था। मदिरा के नशे से बोझिल उसकी आँखें गूलर के फूल की तरह लाल हो रही थीं। लाल-लाल आँखों से कभी-कभी वह काली की मूर्ति की ओर भी निहार लिया करती थी।

एकाएक मुझे होश हुआ। बाप रे! यह तो अघोरपन्थियों का बलि देने का ढंग

है। वह होमकुण्ड, वह वेदी, वह काली की मूर्ति, वह भयानक मूर्ति, वह भयानक युवती और वह लेटा हुआ निरीह बालक। मेरे सारे शरीर में एक सिहरन समा गयी। हवन करने के बाद निश्चय ही उस बालक की बलि अघोरी लोग देंगे। मैंने आगे बढ़कर शीशे पर घूसा मारा, पर अजीब बात थी कि उस पर कोई आवाज ही नहीं हुई। अन्दर-उपस्थित व्यक्तियों का ध्यान भी मेरी ओर नहीं गया।

मैंने आस-पास देखा। एक पत्थर का टुकड़ा पड़ा था वहाँ। उसे उठाया और अपनी पूरी ताकत से मैंने खिड़की के शीशे पर चोट करनी शुरू कर दी। पर आश्चर्य की बात थी कि इतने जोर से पत्थर पीटने पर भी वह शीशा टूटा नहीं।

अब क्या किया जाये? पत्थर का टुकड़ा हाथ में लिये मैं असहाय की तरह अन्दर देखता रहा। इतने में न जाने किधर से एक लम्बी-चौड़ी काठी का व्यक्ति कमरे में प्रकट हुआ। उसकी शक्ल भी काफी भयानक थी। सिर पर उसके जटा-जूट था और लम्बी दाढ़ी थी। गले में बच्चों की खोपड़ियों की माला पहने हुए था। मस्तक पर लम्बा टीका लगाये, कमर में लाल कपड़े का टुकड़ा लपेटे तथा हाथ में त्रिशूल लिये था वह। चेहरा काफी भयानक और डरावना था उसका।

कमरे में उस रहस्यमय और भयानक व्यक्तित्व वाले साधु के प्रविष्ट होते ही वह युवती अपने स्थान से उठ खड़ी हुई और श्रद्धा से झुक कर उसके चरणों का स्पर्श किया। मगर साधु ने उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। वह एक बार माँ महामाया की प्रतिमा की ओर देखकर कोई मन्त्र बुदबुदाने लगा और उसी अवस्था में धीरे-धीरे चल कर हवनकुण्ड के समीप रखे फरसे को उठा लिया उसने, फिर उसी प्रकार चल कर बच्चे के पास पहुँचा। इसी बीच हवनकुण्ड के निकट बैठा एक व्यक्ति उठा और बच्चे को गोद में लेकर प्रतिमा के सामने लिटा दिया। निश्चय ही उस बालक को कोई दवा देकर बेहोश कर रखा होगा उन अघोरियों ने।

साधु अपने दाहिने हाथ में फरसा लिये बालक के करीब पहुँचा और फरसे को बच्चे के सिर से छुआया। बच्चे ने आँखें खोलीं और डरते-डरते विस्फारित दृष्टि से उस खड्गधारी अघोरी साधु की ओर देखा। मैं फिर जोर-जोर से चिल्लाता हुआ उस खिड़की के शीशे को बार-बार पत्थर से पीटने लगा। वह अघोरी साधु आगे बढ़ आया और झुक कर मेरी ओर देखने लगा। उसकी आँखें लाल-लाल और खिंची-खिंची-सी थीं। नाक तिरछी थी। गालों की हड्डियाँ उभरी हुई थीं। वह जब झुककर मेरी तरफ देखने लगा तो मैं भी अप्रसन्न व्यक्ति की तरह टकटकी बाँधे उसकी तरफ देखते रह गया। उसने भी मुझे सिर से पैर तक निहारा। जैसे मुझे ठीक से देख कर पहचान लेना चाहता हो वह। इस तरह मुझे ताकने के बाद वह उस बच्चे के सामने जाकर खड़ा हो गया और फिर अपने हाथ का चमचमाता हुआ फरसा तान लिया उसने। दूसरे ही क्षण खच की आवाज हुई और उसी के साथ बच्चे की हृदय-विदारक चीख भी गूँजी। देखा, बच्चे का सिर धड़ से अलग हो गया था और काफी दूर तक की जमीन खून से लाल हो उठी थी। बच्चे का सिर और धड़ थोड़ी देर तक छटपटाता रहा और फिर शान्त हो गया। मैं पलटकर भागा वहाँ से। खून ! खून ! चिल्लाता हुआ

सड़क पर पहुँचा। सड़क के किनारे ही कुछ दूरी पर मिलिटरी वालों का कैम्प था। एक गश्ती मिलिटरी के सिपाही से टक्कर हो गयी मेरी। भय, क्षोभ और सिपाही से आ टकराने का परिणाम यह हुआ कि कुछ देर तक तो मैं बोल ही नहीं पाया। फिर जब श्वास-प्रश्वास की गति स्वाभाविक हुई तो मैंने उसे वह किस्सा सुनाया और उसका हाथ पकड़कर लगभग खींचते हुए ही मैं उसे मठ के भीतर ले गया। फिर उस कमरे की खिड़की के पास पहुँचा।

“हाँ यहीं”, कहकर मैं उँगली उठाकर इशारा करने ही वाला था कि तभी सोच-विचार में पड़ गया। उँगली उठाऊँ किस तरफ। चारों तरफ गहन अन्धकार था। खिड़की ही नहीं दिखाई पड़ रही थी। कहीं रोशनी भी नहीं थी। उस सिपाही ने अपनी टॉर्च जलाई। रोशनी खिड़की पर पड़ी।

“मैंने कहा यही है वह खिड़की। इस कमरे में अघोरी हैं। उन सबने एक बच्चे की बलि दी है।”

“आपने अन्दर जाकर देखा है क्या”? सिपाही ने कहा।

“देखा है। अरे! अन्दर एक निष्पाप बच्चे की हत्या हुई है और आप ऐसे इतमीनान से प्रश्न कर रहे हैं मुझे।”

वह सिपाही कुछ बोला नहीं। मैं मठ की दूसरी ओर गया। बगल का दरवाजा खुला था। दरवाजे से भीतर घुसते ही एक चमगादड़ शोर मचाता हुआ बगल से निकल गया। मैं अन्दर घुसा। वहाँ फर्श पर धूल की मोटी पर्तें जमीं हुई थीं। लगता था जैसे वर्षों से उस मठ में कोई आया न हो। मैं आगे ही आगे चलकर उस कमरे तक गया। टॉर्च की रोशनी में मुझे उस कमरे की खिड़की का शीशा दिखाई दिया। कमरा वही था, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं था। पर पहचाना नहीं जाता था। टॉर्च की रोशनी में कमरा बिल्कुल खाली दिखलाई पड़ा मुझे। खिड़की के सामने की दीवार के पास काली की वह विकराल मूर्ति अवश्य थी। मगर मूर्ति पर भी धूल की मोटी पर्त जमी हुई थी। इसके अलावा वहाँ न बच्चा था, न वहाँ कोई आदमी था। न होम और न हवनकुण्ड। मैं चकरा गया यह देख कर।

मिलिटरी का वह सिपाही मुझे भौचक्का देखकर हँस कर बोला—“आपने जो कुछ भी देखा है, वह ठीक ही था।”

“ठीक था तो वे सब लोग फिर गये कहाँ?”

भूतकाल में। दो सौ वर्ष पहले यह अघोरी और कापालिकों का रहस्यमय मठ था। अघोरी कापालिक साधु-संन्यासी इस मठ में गुप्त रूप से तंत्र मंत्र की साधना किया करते थे। सिपाही ने आगे बतलाया कि ब्रिटिश सरकार इस मठ को खाली देख कर गोरखा रेजीमेण्ट का इसमें केन्द्र खोलना चाहती थी। केन्द्र खुला भी। मगर कुछ ही दिनों बाद एक के बाद एक कर सिपाहियों की रहस्यमय ढंग से मृत्यु होने लगी। फिर तरह-तरह की प्रेत-लीलाएँ भी होने लगीं। इसलिए लाचार होकर सरकार को यहाँ से केन्द्र हटा कर दूसरी जगह उसे स्थापित करना पड़ा। आपकी तरह कई और लोगों ने इस प्रकार इस मठ में भूत-लीला देखी है। कभी-कभी चीखने-चिल्लाने और रोने

की भी आवाजें लोगों को सुनाई पड़ती हैं।

सिपाही से ये सारी बातें सुनकर एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं। क्या मैंने सचमुच प्रेत-लीला देखी थी। सहज ही विश्वास नहीं हो पा रहा था मुझे। रात मिलिटरी कैम्प में गुजारी मैंने। सबेरे उस सिपाही ने कहा—“चलिये, मैं आपको गंगटोक जाने वाली बस के अड्डे पर सरकारी जीप से पहुँचा दूँ। आप वहाँ से गंगटोक चले जाइयेगा।”

काश, मैं उस सिपाही की बात मान लेता और उस इलाके के बाहर चला जाता तो बेहतर होता। तब आज जो विलक्षण, भयप्रद और दारुण दुख मुझे सहना पड़ रहा है, उससे बचा रहता मैं। पर ऐसा होता कैसे?

शंकराचार्य से प्रताड़ित होने वाले कापालिकों ने अपने कापालिक धर्म-साधना आदि की रक्षा के लिये ऐसे ही गुप्त स्थानों में अपने मठों और साधनाश्रमों का निर्माण किया था—समझते देर न लगी मुझे। निश्चय ही ऐसा ही गुप्त मठ था कापालिकों का। अतः मैं दिन के प्रकाश में उस रहस्यमय मठ का निरीक्षण करना चाहता था। सबेरा होते ही मैं चल पड़ा मठ की ओर। दूर से ही दीख गया वह मठ। ध्वस्त परिवेश में अतीत की एक यादगार के रूप में पूरे तीन सौ वर्षों के अपने शासन-काल में कापालिकों के भयंकर तामसिक साधना-जीवन का वह प्रतीक मठ धूल-धूसरित होकर भी अपनी भंगिमा से सिर ऊँचा किये खड़ा था। सब ओर साय-साय हो रहा था। एक विचित्र-सी उदासी, एक अबूझ-सी खिन्नता परिव्याप्त थी उस मठ में। धूल से अटी टूटी-फूटी सीढ़ियाँ चढ़ते समय दहशत से पर फड़फड़ाते कबूतर कानों को छूते हुए निकल गये। लगा जैसे चमगादड़ भी चीखे हों वहीं कहीं। उस म्लान निस्तब्ध मठ में मुझे विचित्र अनुभूति हुई। धूल से भरे पड़े, पत्थर और टूटे-फूटे बुर्जों पर घूमते हुए हर क्षण यही लगता रहा कि रुँधी हुई हवा की उस अवशता के बीच काले रंग के कपड़े का चोला पहने-हाथ में कपाल और त्रिशूल लिये, पैरों में खड़ाऊँ पहने कापालिक के परिवेश में कोई धीमें-धीमें चलता हुआ अतीत के जीर्ण-शीर्ण काले परदे को उधार देगा और सहज ही मैं उस डरावने अँधियारे वातावरण में मन-प्राणों को एकबारगी स्तम्भित कर देगा। मगर कोई नहीं आया।

जिस समय मैं मठ के आँगन में घूम रहा था, तभी मेरी नजर किसी गुप्त तहखाने में जाने के लिये एक छोटे-से दरवाजे पर पड़ी। टॉर्च की रोशनी के सहारे मैं उसके भीतर जब गया तो देखा—नीचे जाने के लिये चक्करदार सीढ़ियाँ थीं। पहले तो नीचे उतरने में भय अवश्य लगा, मगर फिर साहस कर सीढ़ी उतरने लगा मैं। करीब ८-१० सीढ़ियाँ उतरने के बाद मुझे काफी लम्बा-चौड़ा एक कमरा मिला। सीलन और बदबू से भरा था वह कमरा। एक कोने में लोहे का सन्दूक रखा था। लगभग छह फुट लम्बा, चार फुट ऊँचा और उतना ही चौड़ा था वह सन्दूक। उसमें ताला नहीं लगा था। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर सन्दूक का भारी-भरकम ढक्कन खोल दिया मैंने। ढक्कन उठते ही बदबू का एक तेज झोंका बाहर निकलकर फैल गया। जी मचला उठा मेरा। जब मैंने टॉर्च की रोशनी सन्दूक के भीतर डाली तो देखा उसमें ताँबे और पीतल की लगभग दो फुट की तीन-चार नालियाँ थीं। नालियों में ढक्कन लगे थे। मैंने

बाहर आकर उन नालियों को जब खोला तो देखा कि उसमें कागज जैसे पतले ताँबे के पत्रों पर अज्ञात भाषा में कोई पाण्डुलिपि थी। कुल मिलाकर ताम्रपत्रों की संख्या चालीस थी।

मेरे एक मित्र थे। नाम था शिवनाथ जोशी। जोशी जी भाषाशास्त्री थे और कलकत्ता में रहते थे। मैंने उन्हें ही उन ताम्रपत्रों को दिखाना उचित समझा। मुझको विश्वास था कि वे ताम्रपत्रों की भाषा अवश्य समझ लेंगे। अतः मैं उसी दिन कलकत्ता के लिये रवाना हो गया।

जोशी जी ने जब ताम्रपत्रों को देखा तो उन्हें उनकी लिपि की भाषा समझते देर न लगी। एकबारगी चौंक पड़े वह। आश्चर्य भरे स्वर में कहने लगे—शर्मा जी! यह काफी मूल्यवान और दुर्लभ सम्पत्ति है। पालि भाषा से मिलती-जुलती एक विशेष भाषा है। इन पाण्डुलिपियों की जो बौद्धकाल में एक प्रान्तीय भाषा थी।

ध्यानपूर्वक सभी ताम्रपत्रों को पढ़ लेने के बाद जोशी जी आगे बोले— “आयुर्वेद तंत्र के अन्तर्गत रस-रसायन के अनेक दुर्लभ सिद्धान्तों और उन सिद्धान्तों के आधार पर अनेक रासायनिक प्रयोगों का सविस्तार वर्णन किया गया है इनमें।”

“इन ताम्रपत्रों की कितनी आयु होगी? मैंने पूछा।

“लगभग चार सौ वर्ष।” जोशी जी ने उत्तर दिया।

“कहीं इनके लेखक का तो नाम अवश्य होगा।”

“हाँ, है।”

“क्या नाम है?”

“वेणीमाधव भिषगरत्न।”

वेणीमाधव भिषगरत्न का नाम सुनते ही एकबारगी चौंक पड़ा मैं। कुछ देर तक भौचक्का-सा जोशी जी का मुँह ताकता रहा और फिर अपने आप बोल पड़ा— “कहीं अनन्तमाधव तामणे के परिवार से संबंधित तो नहीं हैं ये भिषगरत्न महाशय?”

“कौन अनन्तमाधव तामणे” जोशी जी ने कौतूहलवश प्रश्न किया।

“अरे वही तामणे, जो पिछले बीस-पच्चीस वर्ष से आयुर्वेद तंत्र पर शोध और अन्वेषण का कार्य कर रहे हैं। रस-रसायन का भी उन्हें अच्छा ज्ञान और अनुभव है। एकबार मैंने उन्हीं के मुँह से वेणीमाधव जी का नाम सुना था। वे उनके पूर्वज थे।”

एकाएक मुझे कुछ याद आया। तामणे जी के पुत्र जिनका नाम ब्रह्ममाधव तामणे था, मेरे घनिष्ठ परिचितों में से थे और बनारस में ही रहते थे। इस संबंध में मैंने उनसे पहले मिल लेना उचित समझा और उसी दिन मैं कलकत्ता से बनारस के लिये रवाना हो गया ताम्रपत्रों को लेकर।

○○○

बनारस पहुँचते ही मैं ब्रह्म माधव तामणे से मिला। वे बालाघाट मुहल्ले में रहते थे। विस्तार से मैंने उन्हें सारी बातें बतला दीं। सब कुछ सुन लेने के बाद तामणे जी ने बतलाया कि वह कापालिकों का अति प्राचीन मठ है। गुप्त रूप से निवास करने

वाले कापालिक और अघोरमार्गी संन्यासी लोग उस मठ में रह कर तांत्रिक साधनायें किया करते थे और कभी-कभी सिद्धि-लाभ के लिये नरबलि भी किया करते थे। लगभग चार सौ वर्ष पूर्व उसी मठ से संबंधित एक कापालिक से मेरे पूर्वज वेणीमाधव तामणे का परिचय हुआ था। उस समय पेशवाओं के आश्रय में वेणीमाधव तामणे निष्णात वैद्य थे। कापालिक को आयुर्वेद तंत्र की विकट सिद्धि थी। वह अपने साथ तामणे महाशय को अपने मठ में ले गया। कुछ ही दिनों में तामणे महाशय रसायनविद्या में निष्णात हो गये। उन्होंने उसी रहस्यमय मठ में अपनी एक रसायनशाला की स्थापना भी की। वे दिन-रात जड़ी-बूटियों का रसायन तैयार करने में जुटे रहते थे। कायाकल्प जैसे महत्वपूर्ण रसायन के अलावा वे रसायन द्वारा त्रिकालदर्शी एक शीशे का भी निर्माण करना चाहते थे। कमरे की वह खिड़की तामणे महाशय की देख-रेख में बनी थी। उसके शीशे पर उन्होंने कई वर्षों तक स्वयं अपने रसायनों का प्रयोग किया था। शीशे के तैयार होने के लगभग एक साल बाद तामणे महाशय ने एक ऐसे रसायन का भी निर्माण किया था, जिसका लेप शरीर पर करने से आदमी गायब हो जाता था। मतलब यह कि वह सभी को देख सकता था, मगर उसे कोई नहीं देख सकता था।

वेणी माधव तामणे ने जिन रस-रसायनों को सिद्ध किया था, जिनमें उन्हें सफलता मिली थी और जिनका वे प्रयोग कर के उसका परिणाम भी देख चुके थे, उन सब का सविस्तार वर्णन उन्होंने ताम्रपत्र पर किया था। इसके अलावा कर्कट रोग (कैन्सर), लकवा, यक्ष्मा, नपुंसकता, धातु-दौर्बल्य, बन्ध्या, दोष, मूर्च्छा आदि असाध्य बीमारियों से संबंधित जड़ी-बूटियों का सविस्तार वर्णन और उनके प्रयोगों का उल्लेख भी उन्होंने किया था। निस्सन्देह वह ताम्रपत्र आयुर्वेदशास्त्र और औषधितंत्र की अमूल्य और अत्यन्त महत्वपूर्ण सम्पत्ति थी। कहने की आवश्यकता नहीं, पूरे तीन साल के अथक परिश्रम के फलस्वरूप मैं उन ताम्रपत्रों का हिन्दी भाषा में अनुवाद कर सका।

जब मैं ब्रह्म माधव तामणे से बातें कर चलने लगा तो वे बोले— “मेरे पिता जी आपको इस संबंध में काफी विस्तार से बहुत-कुछ बतला सकते हैं। मैं उनका पता आप को दे रहा हूँ। आप उनसे जाकर मिल लें।”

मैंने कहा— “ठीक है। मैं अवश्य मिलूँगा। मिलना भी चाहता हूँ मैं।” यह कह कर मैंने ब्रह्म माधव तामणे से पता ले लिया और इस तरह स्वयं अपने आप एक भयानक संकट को निमंत्रण दे दिया।

चम्बा के निकट एक अत्यन्त निर्जन स्थान में एक नदी के किनारे रह रहे थे अनन्त माधव तामणे। नाम सुना था, मगर साक्षात्कार नहीं हुआ था। जब मैं भोर के समय पठानकोट स्टेशन पर उतरा, तो उस समय काफी तेज ठण्ड थी। पठानकोट से चम्बा के लिये बसें जाती हैं। पूरे आठ घंटे का रास्ता है। जब मैं चम्बा पहुँचा, तो उस समय साँझ की स्याह कालिमा फैलने लगी थी। चम्बा में दो रात बिता कर दूसरे दिन चल पड़ा मैं अनन्तमाधव जी से मिलने के लिये। चम्बा और कश्मीर का सीमान्त प्रदेश। पहाड़ी इलाका, घनघोर जंगल। गहरी निस्तब्धता छायी हुई थी, वातावरण चारों ओर साँय-साँय कर रहा था। बाहर की दुनिया से परे-सा प्रतीत हो

रहा था वहाँ। आकाश में काले बादल छाये हुए थे। गहन निःश्वास जैसी हवा हाहाक करती हुई झाड़ियों की झुरमुटों को कँपा रही थी। पूरे चार दिन पैदल चल कर पहुँचा था मैं वहाँ।

अनन्त माधव तामणे का निवास खोजने में काफी परेशानी हुई। पहाड़ी की तलहटी में उनका लकड़ी का बना छोटा-सा मकान था। मकान के चारों तरफ वनौषधियों के पेड़-पौधे और कई प्रकार की लतायें लगी हुई थीं। रुद्रवन्ती, लाजवन्ती, नागगन्धा आदि की भी दुर्लभ लतायें थीं वहाँ।

मकान में छोटे-छोटे केवल चार कमरे थे। एक कमरे में सोते-बैठते थे तामणे महाशय। एक कमरा रसोई आदि के काम में आता था। शेष दो कमरों में रसायनशाला थी। जड़ी-बूटियों की भरमार थी उन दोनों कमरों में। हस्तलिखित पुस्तकों और प्राचीन पाण्डुलिपियों की भी संख्या कम न थी। जिस समय मैं वहाँ पहुँचा, अपने कमरे में बैठे हुए तामणे महाशय किसी प्राचीन तथा दुर्लभ पुस्तक का अध्ययन कर रहे थे। लगभग ६५-७० वर्ष की अवस्था, सुगन्धित देह-यष्टि, गौर वर्ण, कन्धों तक झूलते काले घुँघराले बाल, घनी दाढ़ी, चेहरे पर विलक्षण तेज और आँखों में ज्योति थी। यही था तामणे महाशय का रूप और व्यक्तित्व। देखने में वैदिककालीन किसी ऋषि से लग रहे थे तामणे महाशय।

पढ़ने में इतने लीन थे कि मेरी उपस्थिति का आभास तक नहीं हुआ उन्हें। मैंने चरण का स्पर्श किया, तो वे चौंक पड़े। पहले उन्होंने गहरी दृष्टि से मेरी ओर देखा, फिर परिचय और आने का कारण पूछा। स्वर गम्भीर था। अपना परिचय देने के बाद मैंने उन्हें पूरी कथा सुना डाली।

सारी बातें सुनने के बाद काफी देर तक मौन रहे तामणे महाशय। फिर कहने लगे—“श्री वेणीमाधव भिषगरत्न मेरे पूर्वज थे। उनके गुरु एक कापालिक संन्यासी थे। उन्हीं की देख-रेख में श्री वेणीमाधव जी ने आयुर्वेद तंत्र की विलक्षण सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। उन्हीं से उन्होंने औषधियों का भी अपूर्व ज्ञान प्राप्त किया था।

“इतना सब तो मैं जानता हूँ—मगर” मेरे आगे कुछ बोलने के पूर्व ही तामणे महाशय कहने लगे— “श्री वेणीमाधव जी अच्छे चित्रकार भी थे। उनका एक चित्र आप को मैं दिखाता हूँ।” यह कहकर सन्दूक खोल कर उन्होंने एक जीर्ण कागज उसमें से निकाल मुझे थमा दिया। उस जीर्ण-शीर्ण हाथ से बनाये हुए कागज पर एक चित्र बना था। काफी फीका और धुँधला पड़ गया था वह। ध्यान से देखा, फिर एकबारगी चौंक पड़ा मैं। हे भगवान! वह चित्र तो उसी भयानक व्यक्ति का था, जो उस कापालिक मठ में हवन कर रहा था और जिसने खिड़की के पास आकर मेरी ओर अप्रसन्न मुद्रा में देखा था। पहचानने में जरा सी भी गलती नहीं हुई। मैं लड़खड़ाते स्वर में बोला—“क्या यही हैं आप के पूर्वज और कापालिक संन्यासी के शिष्य वेणी माधव जी ?”

“हाँ, यही हैं। उन्होंने स्वयं अपना यह चित्र बनाया था। उनकी सारी संगृहीत दुर्लभ वस्तुयें मेरे पास सुरक्षित हैं। उन्हीं में यह चित्र भी था। आप को दो-तीन चित्र

और दिखाऊंगा, जिन्हें देख कर आपको घोर आश्चर्य होगा।” यह कहकर तामणे महाशय ने फिर सन्दूक खोला और उसमें से चित्रों का एक पुलिन्दा निकाल कर मुझे थमा दिया। वे चित्र भी काफी जीर्ण-शीर्ण थे। मैं खोल कर देखने लगा। पहले चित्र में एक काफी लम्बा-चौड़ा मैदान था। मैदान के एक ओर एक इमारत बनी थी। आकाश में एक विमान उड़ रहा था और एक विमान इमारत के पास मैदान में था। चित्र चार सौ वर्ष पुराना था, मगर चित्र में जो विमान थे वे आधुनिक थे।

मुझे बेहद आश्चर्य हुआ। मैंने सन्देह-भरे स्वर में पूछा—“क्या आपको यह बनावटी नहीं मालूम पड़ता ? कागज पुराना है, जीर्ण-शीर्ण भी है, चित्र भी चार सौ वर्ष पूर्व का है, मगर आज के हवाईजहाजों जैसा यह चित्र बना कैसे ? विमानों का पौराणिक वर्णन मैंने पढ़ा है, पर उस वर्णन पर आधारित विमान आधुनिक विमानों से तो भिन्न होते थे। आधुनिक विमान का यह दृश्य इस चित्र में कैसे अंकित हुआ।

तामणे महाशय ने कहा—“आप को यही शंका है न कि इन चित्रों के कागज पुराने हैं, किन्तु चित्र नहीं। पर यह एकदम असम्भव है। ये कागजात परम्परागत रूप से पिता से पुत्र के हाथों में आये हैं। इनकी एक लम्बी सूची भी है मेरे परदादा के दादा के समय की। मैं आपको वह सूची भी दिखा सकता हूँ। इसलिये यह चित्र जाली है, यह मानना बिलकुल कठिन है। पर इसे एक तरफ रख दिया जाय तो भी अभी आप ने बाकी चित्रों को देखा नहीं है। उन्हें देखिये तब आप स्वयं समझ जायेंगे कि उनकी क्या व्याख्या हो सकती है ?”

मैंने दूसरा चित्र देखा। आधुनिक महायुद्ध का दृश्य था। भयंकर हृदय विदारक दृश्य। तामणे महाशय ने बतलाया—“यह तीसरे महायुद्ध का दृश्य है। कल्पना भी नहीं की जा सकती ऐसे महायुद्ध की, मगर होगा अवश्य तीसरा युद्ध। अब तीसरा चित्र जरा देखिये।”

तीसरे चित्र को देखते ही आश्चर्य के मारे मैं स्तब्ध रह गया। हे भगवान, क्या देख रहा था उस चित्र में मैं। उसका कागज भी जीर्ण था। रंग भी फीका था पर वह चित्र अभी एक माह पहले के प्रसंग का और मेरा ही चित्र था वह। अमावस की रात को बाहर खड़ा मैं अन्दर का दृश्य देख रहा था। उसी प्रसंग का चित्र था। अमावस की रात थी। गहरा अन्धकार था। कापालिक मठ की उस रहस्यमयी खिड़की से छन कर रोशनी मुझ पर पड़ रही थी। मैं अपने हाथ में पत्थर का टुकड़ा लिये हुए था। मेरे चेहरे पर भय और विस्मय के भाव थे। आँखें विस्फारित थीं। ओंठ चीखने की मुद्रा में खुले हुए थे। उस वक्त का एकदम सही चित्र था। कहीं कोई भ्रम न था, अविश्वास भी नहीं किया जा सकता था।

मैंने अस्फुट स्वर में कहा—“यह चित्र तो मेरा अपना ही है। एक मास पूर्व का, पर यह सम्भव कैसे हुआ ?”

“सम्भव होना आसान है। मेरे पितामह के परदादा श्री वेणी माधव तामणे ने आपको इसी रूप में देखा होगा।”

“क्या कहा !”

उत्तर में समझाते हुए तामणे महाशय ने बतलाया—“जिस व्यक्ति ने कमरे के भीतर से आप को घूर कर देखा था, वे वेणी माधव जी ही थे। उनके साथ जो लोग हवनकुण्ड के पास बैठे थे वे लोग उनके सहयोगी थे। बाद में आपने एक और व्यक्ति को देखा होगा कापालिक संन्यासी के भेष में।”

“हाँ, देखा था। कौन था वह जटाजूटधारी भयानक संन्यासी ?”

“वही थे वेणी माधव जी के कापालिक गुरु स्वामी प्रज्ञानन्द कापालिक।”

“एक बात मैं और पूछ सकता हूँ ?”

“पूछिये।”

“उस यज्ञ-भूमि में वह नग्न युवती कौन थी ?”

मेरी बात सुनकर कुछ क्षण के लिये तामणे महाशय मौन साध गये, फिर बोले—
“वह कापालिनी थी। भयंकर कापालिनी। उसी का आश्रय लेकर, उसी के माध्यम से स्वामी प्रज्ञानन्द कापालिक ने रसायनविद्या में सिद्धि-लाभ किया था।” थोड़ा रुक कर तामणे महाशय ने आगे कहना शुरू किया—आपने चार सौ वर्ष पूर्व का दृश्य देखा था, मगर इस समय कापालिनी की आयु कम से कम पाँच सौ वर्ष है। वह मर कर भी जीवित है। उसकी आयु अक्षुण्ण है। कालजयी है वह कापालिनी। वह विभिन्न रूपों में और विभिन्न परिवेशों में भ्रमण करती रहती है। उसी की अगोचर सहायता से, उसी के अदृश्य निर्देशन एवं मार्गदर्शन में मैं स्वयं पिछले ४५ साल से रसायनविद्या और काष्ठ औषधितंत्र में शोध और अन्वेषण कार्य कर रहा हूँ।”

तामणे की यह बात सुनकर स्तब्ध रह गया मैं। मैंने हकलाते हुये पूछा—“इस समय भी वह कापालिनी किसी रूप, किसी भेष में होगी किसी स्थान पर ?”

“हाँ, है।” तामणे महाशय ने कहा—“मगर पहले आप सिद्धान्त को समझिये। पहले यह बतलाइये कि जो शीशा कुछ विशेष प्रकार का है, उस पर आपकी नजर पड़ी या नहीं।”

“हाँ, वह तो देखा था मैंने। पत्थर के टुकड़े से उस पर काफी प्रहार किया था। पर वह टूटा नहीं था।”

“ठीक कहते हैं आप। मैं तो हथौड़े भी चला कर देख चुका हूँ, पर शीशे को जरा-सी भी क्षति नहीं पहुँची। मैं अनेक विशेषज्ञों को भी वह शीशा दिखा चुका हूँ, पर कोई नहीं बता पाया कि उसे कैसे तैयार कराया गया होगा। अभी मैंने जो चित्र आप को दिखाया है, उनमें और उस शीशे में कोई संबंध हो सकता है, इसकी तो मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी, पर आपने मुझे अपनी कथा सुनाई और उस घटना का वर्णन किया तो मैं एकदम चौंक पड़ा। आप का और एक माह पूर्व के उस प्रसंग का एक चित्र है, यह बात ध्यान में आते ही उस शीशे का एक गुण मेरी समझ में बिलकुल साफ आ गया।”

“कैसा गुण ?”

तामणे महाशय बोले—“आप की समझ में नहीं आया। जरा सोचिये। नहीं समझ पाये, अरे ! आपका चित्र जो इस प्राचीन जीर्ण कागज में अंकित है, इसे श्री वेणीमाधव

जी ने अब से चार-सौ साल पहले बनाया था। इसका मतलब यह कि उस शीशे में उन्हें भविष्य नजर आया था ?”

“ऐं ! क्या कहा आपने ?” मैंने मूर्खों की तरह तामणे जी की ओर ताकते हुए प्रश्न किया।

“हाँ। और आपने जो कुछ देखा था, वह चार सौ वर्ष पूर्व यानि अतीत का दृश्य था।”

“यानी मुझे उस शीशे में भूतकाल नजर आया था ?”

“हाँ। वह शीशा पारदर्शक ही नहीं, कालदर्शक भी है।” तामणे महाशय ने कहा—“उस शीशे के दोनों तरफ दो काल प्रत्यक्ष नजर आते हैं। बाहर से देखने पर भूतकाल और अन्दर से देखने पर भविष्यकाल। जैसे बाहर से आदमी ४०० वर्ष का भूत काल देख सकता है, उसी प्रकार भीतर से वह ४०० वर्ष का भविष्यकाल भी देख सकता है।

यह बात इतनी विलक्षण, इतनी अविश्वसनीय थी कि सुनकर ही काफी देर तक मैं खामोश बैठा रहा। उसी पर विचार करता रहा। न टूटने वाला शीशा ! कालदर्शक शीशा ! एक तरफ से भूतकाल दिखाई पड़ता है, दूसरी तरफ से भविष्य। हे भगवान ! कितना विलक्षण और अविश्वसनीय सत्य था वह।

अविश्वास प्रकट करने के लिये कोई भी आश्चर्यजनक शब्द कहना काफी आसान था, पर इसकी वास्तविकता और उसकी वास्तविक अनुभूति अजीबोगरीब थी। मैंने जिनको देखा था, वे दो साल पहले के वेणीमाधव भिषगरत्न और उन वेणीमाधव भिषगरत्न द्वारा चार सौ साल पहले बनाया गया चित्र हूबहू मेरा था।

तामणे महाशय ने कहा—“एक काल से दूसरे काल में जाने और वहाँ का दृश्य देखने की बात कोई नयी नहीं है।”

मैं बोला—“केवल दूसरे काल में पहुँचना ही नहीं, उसमें देखे गये दृश्य को ठीक-ठाक अंकित कर देना कमाल की बात है।”

“पर इसमें नवीनता क्या है ? दूसरे के मन में प्रवेश कर उसके मन की बात जान लेने की विस्मयजनक परन्तु प्रत्यक्ष घटनायें आपने भी देखी-सुनी होंगी।”

“जी नहीं। योगी मन में प्रवेश कर सकते हैं, यह तो मैंने सुना है, पर वे दूसरे के मन में अंकित छवि ज्यों की त्यों अंकित कर सकते हैं, यह तो मैंने नहीं सुना।”

“पर ऐसा होता तो है।” तामणे महाशय ने कहा—“और अब भी ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं। आपने नासिक के गजानन महाराज गुप्ते का चरित्र पढ़ा है या नहीं। उसी में वर्णित एक घटना सुनाता हूँ आपको, ताकि आपको विश्वास हो जाय। गजानन महाराज के एक भक्त थे। नाम था— त्र्यंबक गाँवकर। वे फोटोग्राफर थे। एक बार उनके पास बम्बई के एक आडिटर श्री अम्बर भाड़खरे आये। खरेजी १९४० ई० में अपनी माता का अन्तिम संस्कार करने के लिये नासिक गये थे। उन्होंने अपनी माता का फोटो खींच रखा था, जो उस समय उनके पास नहीं था। त्र्यंबक गाँवकर के पास आकर उन्होंने एक विचित्र बात कही—“मैं एकाग्रचित से अपनी माँ का ध्यान

करता हूँ। आप ध्यान लगा कर मेरे मन में प्रवेश करिये और मेरे ध्यान में माँ की जो मूर्ति है, उसको देख कर एक चित्र बना दीजिये।” गाँवकर ने यह बात मान ली थी। दोनों ही एकसाथ आसनों पर बैठ कर ध्यानमग्न हो गये। ध्यान से उठने के बाद ही गाँवकर ने खरेजी की माता का चित्र बना दिया। आश्चर्य की बात थी कि वह चित्र हूबहू खरेजी की माता का ही था।”

“कमाल की बात है यह तो।” मेरे मुँह से निकला—“कमाल की बात भले ही हो, मगर है सच। इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि ध्यान की सहायता से दूसरे के मन में प्रवेश किया जा सकता है और आपके एक माह पूर्व के अनुभव से यह भी स्पष्ट है कि उस विशिष्ट रासायनिक शीशे की सहायता से एक काल से दूसरे काल में प्रवेश किया जा सकता है।”

“मैंने कहा—“यदि वह सिद्धान्त सच है, तो ऐसे कई उदाहरण सामने होने चाहिये। मेरे अकेले के अनुभव से एक सिद्धान्त पर पहुँचना उचित नहीं है।”

मेरा तर्क सुन कर तामणे महाशय प्रसन्न मुद्रा में बोले—“इसी कार्य के लिये मुझे आप का सहयोग चाहिये। आप ने उस मठ में जैसी कापालिक हवन-क्रिया देखी थी, उसकी सम्पूर्ण विधि मेरे पास है। वेणी माधव जी की एक हस्तलिखित पुस्तक में मुझे वह विधि मिली थी। मैं उस विधि के अनुसार हवन करना चाहता हूँ।

“बाप रे ! बच्चे की बलि देकर !” मैंने भयभीत स्वर से पूछा।

“नहीं। नहीं। मुर्गे और बकरे की बलि देकर। उस पुस्तक में मुर्गे और बकरे की भी बलि देने का उल्लेख है। तांत्रिक क्रिया करने और बलि देने के उपरान्त उस शीशे में से बाहर देखने पर भविष्य-दर्शन हो जायेगा। ऐसा उस पुस्तक में वेणी माधव जी ने लिखा है। साथ ही यह भी लिखा है कि भविष्यदर्शन करने वाले को योग का अभ्यासी होना चाहिये। आपने तो योग-साधना की है।”

मैंने सिर हिला कर हामी भर दी।

“बस ठीक है।” तामणे महाशय ने कहा “इसीलिये तो आप बाहर से वह दृश्य देख पाये।” थोड़ा रुक कर तामणे महाशय ने आगे कहा—“यदि हमारा प्रयोग सफल रहा, तो विज्ञान के एक बिलकुल नये क्षेत्र में कदम रखने का श्रेय हमें ही प्राप्त होगा।”

● ● ●

सृष्टि के गूढ़ रहस्यों की खोज के लिये हमेशा ही खतरा उठाया है मैंने। जो भी गूढ़ और रहस्यमय है, उसके प्रति हमेशा से गहरा आकर्षण रहा है, मेरे मन में। इसीलिये तामणे महाशय का प्रस्ताव स्वीकार कर मैंने कोई अभिनव कार्य नहीं किया। उनके प्रस्ताव को स्वीकार करते समय यदि मुझे जरा-सा भी यह पता होता कि मैं जीवन भर के लिये एक भयंकर विपत्ति मोल ले रहा हूँ और मोल ले रहा हूँ किसी भयंकर दुर्घटना में पड़ने का खतरा, तो यकीन कीजिये, मैं कभी भी तामणे महाशय के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता। जिस समय सिर हिलाकर मैंने तामणे महाशय के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उसी क्षण ही कहीं अदृश्य ने ठहाका लगाया, जिसे

सुन न सका मैं उस समय।

उस रहस्यमय कापालिक मठ में जाने और वहाँ तांत्रिक प्रयोग करने का दिन और समय निश्चित हो गया। तांत्रिक अनुष्ठान के लिये कुछ विशिष्ट तांत्रिकों की आवश्यकता थी। मगर मैं इसके लिये जिन परिचित तांत्रिकों से मिला उनमें से कोई भी उस अघोरी मठ में और इतनी दूर उस निर्जन हिमप्रान्त में जाने के लिये तैयार नहीं हुआ। सभी ने मेरे प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

अन्त में हार-थक कर तारानाथ भट्टाचार्य से मिला। बनारस के कालीबाड़ी मुहल्ले में रहते थे उन दिनों भट्टाचार्य महाशय। सिद्ध अनुभवी तंत्रसाधक थे वह। कई प्रकार की विलक्षण तांत्रिक सिद्धियाँ प्राप्त थीं उन्हें। कई भयंकर और उग्र तांत्रिक प्रयोगों में भी आशातीत सफलता प्राप्त की थी उन्होंने। तंत्र की दिशा में एक प्रकार से वे मेरे गुरु थे और थे बड़े भाई के तुल्य भी। मैं उनको काफी आदर-सम्मान देता था और वे भी मेरी किसी बात को टालते न थे। इसीलिये मुझे पूरा विश्वास था कि वे मेरे प्रस्ताव को अस्वीकार कदापि नहीं करेंगे।

साँझ का समय था। 'प्रणामी' की आवश्यकता को समझ कर उसके लिये भूना हुआ मुर्गा और एक बोटल मदिरा खरीदी मैंने और उसे लेकर जब मैं तारानाथ भट्टाचार्य के यहाँ पहुँचा तो उस समय वे काली के सामने बैठे साधनारत थे। कुछ देर तक मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ी। जब वे साधना से उठे तो दोनों पदार्थ उनके सामने रख कर शुरू से अन्त तक मैंने सारी कथा सुना डाली उन्हें और अन्त में कहा—“आपको चलना ही पड़ेगा उस मठ में और वेणी माधव भिषगरत्न महाशय की उस दुर्लभ हस्त-लिखित पुस्तक में वर्णित विधि के अनुसार तांत्रिक अनुष्ठान में सहयोग देना होगा।”

मेरे प्रस्ताव को तारानाथ भट्टाचार्य ने स्वीकार तो अवश्य कर लिया, मगर थोड़ा ठहर कर कहा—“अनुष्ठान तो हो जायेगा। मैं चलने के लिये भी तैयार हूँ, मगर मुझे भय इस बात का है कि वह कापालिनी कहीं कोई भयंकर उपद्रव न खड़ा कर दे। यदि ऐसा कुछ हुआ तो हम सब लोग निश्चय ही किसी भयानक विपत्ति में पड़ जायेंगे।”

कापालिनी के उग्र और भयानक स्वरूप से मैं परिचित था। तारानाथ जी की बात सुन कर एकबारगी सोच में पड़ गया मैं। फिर बोला—“वह कापालिनी किसी भी प्रकार का उपद्रव न करे और हम सब लोग भी किसी प्रकार की विपत्ति में न पड़ें, इसके लिये भी आपको ही सब कुछ करना पड़ेगा।” मेरी बात सुन कर तारानाथ भट्टाचार्य मौन रहे। कुछ बोले नहीं। मौन स्वीकृति लक्षणम्—समझ कर मैं उठ कर चला आया और तैयारी करने में जुट गया।

निश्चित समय पर जब मैं, तामणे महाशय और तारानाथ भट्टाचार्य को लेकर वहाँ पहुँचा, उस समय वातावरण में गहरी उदासी छायी हुई थी। चारों तरफ कब्रिस्तान जैसी खामोशी फैली हुई थी। अपराह्न का ढलता हुआ सूरज अब अरुणाचल के उत्तुंग पर्वतों के पीछे छिप गया था। मठ के भीतर प्रवेश करते ही तामणे महाशय का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। मगर भट्टाचार्य जी एकबारगी व्यग्र हो उठे। व्यग्रता कैसी थी,

यह समझ न सका मैं। उस समय उनके चेहरे पर एक अजीब तरह की परेशानी की झलक थी। ऐसा लगा मानों वे किसी अदृश्य शक्ति की उपस्थिति का अनुभव कर रहे हों वहाँ उस मठ में। एक बार मैंने उनकी ओर देखा। फिर हम दोनों एकसाथ मठ की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे।

मठ में स्थापित काली की उस भयंकर प्रतिमा को देख कर तारानाथ जी बोले—
“निश्चय ही यह प्रतिमा अघोरपन्थियों और दुर्धर्ष कापालिकों के युग की है। इसे पंच-मुण्डी आसन पर स्थापित होना चाहिये।”

कमरे को साफ किया गया। काली की प्रतिमा को भी साफ कर गंगाजल और मदिरा से स्नान कराया गया। तांत्रिक अनुष्ठान में लगने वाली सारी वस्तुयें कमरे के एक कोने में रख दीं मैंने। पशु को भी नहला-धुला कर एक कोने में बाँध दिया और फिर स्वयं तैयार होने लगा मैं।

अमावस की स्याह, काली रात।

पहले पशु की पूजा हुई। उसके सिर पर लाल सिन्दूर का टीका लगाया गया और गले में लाल पुष्प की माला पहनाई गयी और अन्त में पिलायी गयी उसे मदिरा। फिर खड्ग की पूजा हुई। तत्पश्चात् हवन शुरू हुआ। जलते हुए हवनकुण्ड, उसमें पड़ने वाली भिन्न-भिन्न वस्तुओं की गन्ध और तांत्रिक मन्त्रों के गम्भीर उद्घोष से कमरे में एक भयप्रद वातावरण की सृष्टि हो गयी। होम समाप्त हुआ। तारानाथ जी ने माँ काली की पूजा तांत्रिक विधि से की। पूजा समाप्त होते ही माँ, महामाया पराशक्ति काली की उस पाषाण-प्रतिमा में एक अलौकिक अनिर्वचनीय तेज आ गया। दप्-दप् कर जलने लगा माँ का मुख-मण्डल। उसी के साथ कमरे का वातावरण भी रहस्यमय और बोझिल हो उठा एकबारगी। भट्टाचार्य जी के संकेत पर मैंने पशु को माँ के सामने लाकर खड़ा कर दिया। जान जाने की आशंका से उसके चेहरे पर जो करुणा आ गयी और जिस तरह से वह मिमियाने लगा, उसे देख कर एक सिहरन-सी दौड़ गयी मेरे सारे शरीर में।

अब जोर-जोर से मंत्र पढ़ने लगे भट्टाचार्य महाशय। उसी समय तामणे महोदय ने बलि देने वाला खड्ग उठा लिया। दूसरे ही क्षण खच की आवाज हुई और साथ ही एक दर्दनाक चीख की भी। बलि हो गयी थी। काफी दूर तक फर्श लाल हो उठा था बलि पशु के उष्ण-शौणित से। भट्टाचार्य जी ने पशु-मुण्ड को उठा कर माँ के सामने रखा और उस पर कपूर जलाया, फिर माँ को प्रणाम किया।

उसी समय न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैंने दृष्टि घुमा कर खिड़की के उस पारदर्शक और त्रिकालदर्शक शीशे की ओर देखा। हे भगवान, कौन कह सकता था कि वह अमावस की रात थी। खिड़की के बाहर तेज रोशनी थी। जैसे दिन ही हो और तेज रोशनी में मुझे खिड़की के बाहर थोड़े से फासले पर एक विस्तृत मैदान दिखलायी दिया। मैदान के एक ओर कई तोपें जिनका मुँह आकाश की ओर था, एक कतार में रखी हुई थीं। पर उन तोपों को दागने के लिये वहाँ कोई नहीं था। मगर कुछ ही पल के बाद वे तोपें स्वयं अपने आप आग उगलने लगीं। उनमें से एक हरा-

सा धुआँ निकल कर मैदान के चारों तरफ फैल गया। थोड़ी देर बाद ही मैदान के पास की ऊँची इमारतों में एक विस्फोट हुआ और आग तथा नीले रंग का धुआँ आकाश में छा गया। तोपें शान्त हुईं। वह धुआँ अदृश्य हुआ और उस मैदान में अन्तरिक्ष से एक बड़ी सी वर्तुलाकार तश्तरी हिलती-डोलती आती दिखायी पड़ी। पहले तो मैं समझ ही नहीं पाया कि वह एक उड़न तश्तरी है। नीले आसमान में एक लाल तारे जैसी दिखायी पड़ी वह मंगल तारे जैसी। पहले यही विचार मेरे मन में आया, पर जब वह पास आने लगी तो यकीन हो गया कि वह मंगल तारा नहीं है और नजदीक आने पर दिखायी पड़ा कि वह एक उड़न तश्तरी है। वह तश्तरी या वर्तुलाकार विमान—कुछ भी कह लीजिये, मैदान में उतर कर स्थिर हो गयी। वह नीले रंग की थी। सामने की ओर अति तीव्र गति से एक पंखा चल रहा था, जिसमें से आग की हल्की-हल्की लपटें हवा के साथ निकल रही थीं। अचानक उसका बगल का दरवाजा खुला और उसमें से जो निकला उसे देखकर मैं हैरान रह गया।

किसी भी जीवित प्राणी से उसकी कोई समानता न थी। कदू जैसा गोल और बड़ा-सा माथा, काफी ऊँचा ललाट, तीन बड़ी-बड़ी आँखें, एक ललाट में और दो अगल-बगल। नाक थी ही नहीं। एकदम सपाट था माथे के नीचे का हिस्सा। सिर्फ मुँह था और वह भी एक लम्बा फाँक जैसा। कानों की जगह दो ऊँचे गुमणे- से थे और उन्हीं के पास से फुट-डेढ़ फुट लम्बे बालों की जटायें ऊपर की ओर निकली हुई थीं। किसी झिंगुर की मूछों की तरह। गला नहीं था। गले की जगह एक हाथ ही था। उसके अगल-बगल हाथों के पंजों में बारह-बारह उँगलियाँ थीं और काफी लम्बे-लम्बे नाखून थे। उस विलक्षण प्राणी के देह पर कपड़े थे या नहीं या उसके शरीर का गठन ही उस प्रकार का था, यह समझ पाना कठिन ही था। कारण कि यदि वह कपड़े पहने था, तो उसके कपड़े बदन से एकदम चिपटे हुए थे। छाती और पेट का आकार नगाड़े जैसा था और तीन पैर थे उसके। पीछे के एक पैर पर खड़े होकर सामने के दोनों पैर उठा कर उसने एक छलाँग ली तो ४०-५० फुट का फासला पार कर लिया। एक छलाँग लेकर पिछला पैर टेक कर फिर उसने छलाँग लगायी। इसी तरह वह सारे मैदान में कूदता फिरा।

इसके बाद वह सीधे मेरी तरफ आया। पहले दोनों आँखों से वह मुझे ताकता रहा। फिर माथे पर का तीसरा नेत्र खुला उसका। अत्यन्त तीव्र प्रकाश की एक किरण-सी निकली और मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। तड़-तड़ और झन्न की आवाज हुई और मेरे हाथ-पैरों और पेट में सूई भोकने की-सी पीड़ा हुई। चीख मार कर मैं जमीन पर लोट गया और उसी के साथ मुझ पर गहरी मूर्च्छा छा गयी। उस बेहोशी की स्थिति में मैंने क्या-क्या देखा और क्या-क्या अनुभव किया इसकी अपनी अलग कथा है, जिसे मैंने 'वह रहस्यमयी कापालिनी' शीर्षक रचना में लिपिबद्ध किया है।

जब मेरी बेहोशी दूर हुई और आँखें खुलीं, तो मैंने अपने आपको गंगटोक के एक अस्पताल में पाया। अस्पताल के एक कमरे में पलंग पर पड़ा हुआ था मैं, मेरे निकट तामणे महाशय और तारानाथ भटाचार्य के अलावा दो-तीन सज्जन और

बैठे हुए थे, जिन्हें मैं पहचानता नहीं था। बाद में पता चला कि वे लोग स्थानीय तांत्रिक थे और उन लोगों ने मेरा तांत्रिक उपचार किया था।

जैसे ही मैंने आँखें खोलीं, तामणे महाशय ने मृदु स्वर में कहा—“शर्मा जी अब आपको कैसा लग रहा है ?”

“ठीक हूँ।” कहकर फिर आँखें मूँद लीं मैंने। मुझे स्थान और काल का होश नहीं था, अभी ठीक तरह से। तामणे जी और तारानाथ जी यहाँ क्यों, और मैं पलंग पर क्यों पड़ा हूँ। यह बात तो पहले मुझे सूझी ही नहीं थी। फिर एकाएक याद आया और फिर सारी बातें एकाएक मानस-पटल पर उभर गयीं।

मैं तकिये की टेक लगा कर उठ गया तथा पूछा—“मैं यहाँ कब आया ? तारानाथ जी ने तसल्ली देने के स्वर में कहा—“आहिस्ता-आहिस्ता शर्माजी। जोर से न हिलिये-डुलिये। आपके घाव अच्छे हो रहे हैं, पर अभी आपको सावधान रहना चाहिये।”

पर मैं उठ ही बैठा। मैंने पूछा—“पर मैं यहाँ आया कब ? कितने दिनों से पड़ा हूँ मैं यहाँ ?”

तारानाथ जी बोले—“पन्द्रह दिनों से। अमावस्या को हमने होम किया था। आज पूर्णिमा है। पूरे पन्द्रह दिन आप बेहोश रहे हैं।”

“हे भगवान ! पर मुझे हुआ क्या है ?” मैंने पूछा।

“बताता हूँ। परन्तु अभी आप यह दवा ले लीजिये। इससे आपको आराम मिलेगा, फिर मैं सब सुनाऊँगा।”

उपस्थित तांत्रिकों के पूछने पर मैंने उस रात का देखा हुआ दृश्य ज्यों का त्यों सुना दिया। उस विलक्षण प्राणी के रूप-रंग और उसके बाद की घटी घटना का भी मैंने विस्तारसहित वर्णन कर दिया।

मेरे सुना चुकने के बाद तामणे महाशय ने कहा—“आपके चीख मारकर लुढ़कने के बाद ही तड़ाक-फड़ाक की आवाज के साथ खिड़की का शीशा फूट गया। शीशे के वे ही टुकड़े धँस जाने के कारण आपके बदन में जख्म हो गये थे।”

“अच्छा, वह खिड़की फूटी तो। एक काम तो अच्छा हुआ। उस शीशे का विश्लेषण कराया आप लोगों ने ?” मैंने प्रश्न किया।

“नहीं, क्योंकि शीशे का एक भी टुकड़ा वहाँ नहीं मिला।”

“ऐसा कैसे हुआ ? शीशा टूटा और काँच का एक भी टुकड़ा नहीं।” मैंने आश्चर्य से पूछा।

“हाँ। बात तो ऐसी ही है और उस खिड़की का शीशा भी अब अदृश्य हो गया है।”

“क्या मतलब ?”

“मतलब यही कि यों देखने पर खिड़की खाली नजर आती है। शीशा नहीं दीखता उसमें। पर खिड़की से कोई चीज बाहर फेंके तो वह उसी अदृश्य शीशे से टकरा कर अन्दर ही गिर पड़ती है।”

“यानी वह शीशा अब भी नहीं टूटा है ?”

“नहीं, उसका कुछ भाग टूटा तो अवश्य है। मैंने एक लकड़ी उस अदृश्य शीशे पर फेंक कर देखी, तो मुझे पता चला कि हाथ के नीचे की तरफ का शीशा फूट गया है। उस जगह लकड़ी आर-पार चली गयी थी, इस शीशे का पिछला हिस्सा दीखता ही नहीं है, पर है अपनी जगह पर ही।”

“अच्छा। तब तो रहस्य और भी गम्भीर हो गया है।”

इस पर तामणे महाशय ने कहा, “ऐसी कोई बात नहीं। हाँ, एक बात सूझी है मुझे।”

“क्या ?” सब लोगों ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

तामणे जी ने कहा—“शर्मा जी ने जो दृश्य देखा है, उसका क्या अर्थ लगाते हैं आप सब लोग ?”

जब इसका समाधान किसी ने नहीं किया तो तामणे ने स्वयं कहा—“वह चार सौ वर्ष बाद का दृश्य होना चाहिये। तब तक वहाँ अरुणाचल के उस क्षेत्र में शायद कई मील लम्बा-चौड़ा हवाईअड्डा बन जायेगा और किसी सुदूर नक्षत्र से आये हुए विमान शायद हमला करेंगे।”

मैंने चौंक कहा—“नक्षत्रलोक से आये हुए।”

तामणे ने कहा—“हाँ। मेरा तो कुछ ऐसा ही ख्याल है। वह गोलाकार विमान किसी नक्षत्रलोक का ही हो सकता है। वह प्राणी भी नक्षत्रलोक का ही हो सकता है। उसने हमला कर के स्वतः स्वचालित तोपों से पहले विध्वंस किया, फिर आस-पास के क्षेत्र का निरीक्षण करते-करते उस प्राणी की नजर उस रहस्यमयी खिड़की पर पड़ी।”

“अच्छा, ऐसी बात है !” सबने आश्चर्यपूर्वक कहा।

“हाँ, मुझे तो ऐसा ही लगता है।” तामणे जी ने कहा—“उसके माथे पर आँख की तरह जो अस्त्र था, उसी से उसने वह अभेद खिड़की तोड़ी।”

“पर खिड़की का शीशा कहाँ गया ? वह अदृश्य कैसे हो गया ?”

“उसकी एक व्याख्या है मेरे पास”— तामणे जी ने कहा—“किस तरह से ऐसा हुआ, यह बताना तो कठिन है, पर किसी भी तरह से हो, भविष्य में वह शीशा फिर से नजर आने लगेगा। उस विलक्षण प्राणी ने शीशा तोड़ तो डाला अपने उस अस्त्र से, पर वह फूटा है भविष्य में, वर्तमान में नहीं। इसीलिये भविष्य में जब कभी वह शीशा फूटेगा उसी समय उसके टुकड़े भी आस-पास मिलेंगे। शीशे के टुकड़े टूट कर बिखरे तो हैं, लेकिन वे भविष्य के गर्भ में। इसीलिये अभी वे टुकड़े हमें दिखलायी नहीं पड़ रहे हैं। शीशा फूट गया है, इसीलिये वह दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन चूँकि वह भविष्य में फूटा है, इसीलिये वर्तमान में उसका अस्तित्व वहाँ है।”

तामणे महाशय क्या कहना चाहते थे, यह बात मेरी समझ में नहीं आयी। इसी स्पष्टीकरण के अलावा और कोई कैफियत थी भी नहीं इसकी।

एक तरह से यह प्रसंग तो समाप्त हो गया। पर मेरे सामने इसका और भी

भयानक रूप आया। मैंने तामणे महाशय को वह सब बातें सुनाई, जिसे मैंने १५ दिनों की बेहोशी की स्थिति में देखा-सुना और अनुभव किया था। उसे सुन कर तामणे महाशय ने सौजन्यवश सहमतिसूचक सिर तो हिलाया, पर उनकी मुद्रा से मैं यह समझ गया कि उन्हें रती भर भी विश्वास नहीं हुआ था—मेरी बात पर।

दूसरे दिन मैं वापस बनारस आ गया। मेरे साथ तामणे जी और तारानाथ जी भी लौट आये। घर आकर मैं नहाने गया और नहाकर कपड़े बदल कर बाल ठीक करने के लिये, आईने के सामने खड़ा हुआ, तो जो कुछ दिखलायी पड़ा उसमें, मैं डर के मारे काँप उठा। अरे, यह क्या ! मेरे मुँह से निकल गया। उसी दिन शाम के समय तारानाथ जी से मिलने कालीबाड़ी गया और अपनी स्थिति से उन्हें अवगत कराया। फिर मैं कमीज उतार कर उनके सामने खड़ा हो गया।

तारानाथ जी आँखें फाड़कर, मुँह बाये, भय और चकित दृष्टि से मेरी ओर ताकते रह गये।

गले से लेकर कमर तक मेरा शरीर बिल्कुल पारदर्शक हो गया था और इतने हिस्से के भीतर का सब कुछ साफ-साफ दिखलायी पड़ रहा था।

तारानाथ सब कुछ देख कर बोले—“आपके शरीर में शीशे का जहर फैल गया है। निश्चय ही उसी के फलस्वरूप शरीर का इतना भाग पारदर्शक हो गया है। आपको शीघ्र ही स्वामी प्रज्ञानन्द योगी से मिलना चाहिये। वे ही इसका यौगिक उपचार कर सकते हैं। यदि आप शीघ्रता नहीं करेंगे तो ...।”

उसी दिन मैं स्वामी प्रज्ञानन्द योगी से मिला। उन दिनों भाग्यवश बनारस में ही थे स्वामीजी। सारी बातें सुनकर और मेरे पारदर्शक अंग को देख कर स्वामी जी अत्यधिक गम्भीर हो गये।

आश्चर्य की बात तो यह थी कि तारानाथ जी और स्वामीजी के अलावा और कोई व्यक्ति मेरे शरीर के उस पारदर्शक भाग को नहीं देख पाता था। मैं भी तभी उस भाग को पारदर्शक देख पाता था, जब मैं आदमकद आईने के सामने खड़ा होता था। पूरे दो मास के योगाभ्यास से मेरे शरीर का वह भाग ठीक हुआ। मगर तब भी शायद मेरा पीछा नहीं छोड़ा था विपत्ति ने। अभी तो मुझे काफी कुछ विपत्ति झेलनी थी।

एक दिन जब मैं नित्य की भाँति नहा-धोकर आईने के सामने खड़ा हुआ तो मारे डर के मेरी घिग्घी बँध गयी। मैंने आईने में देखा कि मेरे पीछे उसी कापालिनी की स्याह छायाकृति खड़ी थी। बेहद भयानक दृश्य था वह।

पाठकगण। उस भयानक कापालिनी की छायाकृति को देख कर क्या आपकी आँखें भी विस्फारित न हो जातीं और चेहरा पीला न पड़ जाता, आपके दिल की धड़कन भी तेज न हो जाती और गहरा धक्का लगने के कारण क्या आप भी काँपने न लगते सिर से पैर तक।

वह दृश्य देख कर भय, दुःख और संताप से क्या आप भी परेशान न हो उठते। क्या आप भी यही न सोचते कि हाय, यह कैसी आफत हमने मोल ले ली।

मुझ पर ठीक यही असर हुआ। इस विलक्षण दृश्य के सदमें से मैं धम् से नीचे बैठ गया और दुःख तथा व्याकुलता के उद्रेक से रोने लग गया। खुल कर रोया मैं— फूट-फूट कर।

कहने की आवश्यकता नहीं। इन तमाम घटनाओं को घटित हुए पचास साल गुजर गये। तब से लेकर आज तक कापालिनी की छायाकृति ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा है। आज भी जब मैं आईने के सामने खड़ा होता हूँ, तो स्पष्ट रूप से वह छायाकृति मुझे अपने पीछे खड़ी दिखलायी पड़ती है। मेरे सम्पूर्ण जीवन के कण-कण में उस भयंकर कापालिनी का अस्तित्व छा गया है। कभी-कभी तो उसके तामसिक प्रभाव से मेरा मस्तिष्क उदभ्रान्त हो उठता है। पागलों की-सी स्थिति हो जाती है तब मेरी। यदि आप यह जानना चाहेंगे कि उस तमोमयी कापालिनी से मुझे कोई लाभ भी है, तो इस विषय में केवल यहीं कहूँगा कि वह असम्भव और असाध्य कार्य को सम्भव और साध्य करने की दिशा में मेरी सहायता करने के लिये हमेशा तैयार रहती है। मगर मैं यह नहीं चाहता, क्योंकि जानता हूँ कि इसके लिये मुझे भारी मूल्य चुकाना पड़ेगा।



नर-कंकाल

नर-कंकाल !

जी हाँ। नर-कंकाल।

एक नहीं तीन-तीन नर-कंकाल।

सभी मजदूरों के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। सभी के चेहरे स्याह पड़ गये थे। खुदाई का काम कोई भी आगे करने को तैयार नहीं था।

पुरातत्व-विभाग में मेरी नयी-नयी नियुक्ति हुई थी उस समय, और मेरे निर्देशन में पहली बार खुदाई का काम हो रहा था आसाम के उस घोर जंगली इलाके में। मनोहरलाल उस इलाके का ठेकेदार था। जंगल काटने का ठेका लिया करता था वह। उसी ने खुदाई के लिये तीस-चालीस मजदूरों का इन्तजाम किया था।

बातचीत के सिलसिले में मनोहरलाल ने बताया था कि वह टीला भुतहा है। वहाँ रात में अक्सर प्रेतात्मायें घूमती हैं। टीले के बगल में बैताल बाबा का जो मन्दिर है, सुनने में आता है कि अमावास्या की काली अँधेरी रात में वहाँ सारी प्रेतात्मायें इकट्ठी होती हैं और जलसा करती हैं। फिर बड़े मद्धिम स्वर में मनोहरलाल ने अन्त में कहा— “साहब! यहाँ खुदाई न करायेँ तो अच्छा वर्ना कोई भी मुसीबत खड़ी हो सकती है। प्रेतात्मायें जो ठहरीं।”

मनोहरलाल की बातें सुनकर हँस पड़ा मैं। बोला— “हर जगह को ही लोग भुतहा करार दे देते हैं। आसाम में कोई ऐसी जगह नहीं है, जहाँ भूत-प्रेत विचरण न करते हों। सभी जगह तो भूत-प्रेत हैं। क्या उनके डर से सरकारी काम बन्द करा दूँ ?” मनोहरलाल ने मेरी बातों का जवाब नहीं दिया। बस सिर झुकाकर चला गया।

आसाम की पहाड़ी तलहटी में था वह टीला, जिसकी बायीं ओर घने जंगलों का सिलसिला था। जंगल के सीने को चीरती हुई एक पहाड़ी नदी टीले को छूती हुई बहती थी। नदी के किनारे ही बैताल बाबा का मन्दिर था। काफी पुराना हो चुका था मन्दिर। मूर्ति के नाम पर मन्दिर के भीतर एक “ताखा” भर बना हुआ था। तेल, सिन्दूर से पुता रहता था वह ताखा। सुनने में आया था कि साल में एक बार वहाँ बैताल बाबा का मेला भी लगता है। काफी दूर-दूर से लोग आकर वहाँ मनौतियाँ मानते हैं। मुर्गे की बलि देते हैं और शराब चढ़ाते हैं।

मन्दिर से कुछ दूर पर एक पक्का एक मंजिला मकान भी था। वह भी काफी जर्जर और पुराना हो चुका था। उसकी दीवारें गिर चुकी थीं। जगह-जगह जंगली घासें उग आई थीं।

खुदाई का काम बन्द हो जाने के कारण मुझे परेशानी हो रही थी। मैं जब अपने सहयोगी डॉ० सक्सेना को लेकर खुदाई की जगह पहुँचा तो वहाँ मनोहरलाल से भेंट हो गयी। वह मुझे देखकर मुसकराया। बोला— “साहब! मैंने कहा था न, यह टीला

भुतहा है। खुदाई न कराये।”

मैंने मनोहरलाल की बातों की ओर ध्यान नहीं दिया, चुपचाप सक्सेना के साथ आगे बढ़ गया।

लगभग १६-२० फुट नीचे एक पक्के चबूतरे के भीतर वे तीनों नर-कंकाल मिले थे। मैंने ध्यान से देखा, तीनों साबूत थे। कहीं टूटे हुए नहीं थे। उनमें दो नर-कंकाल तो औरतों के थे और तीसरा पुरुष का। परीक्षण करने पर पता चला कि तीनों की उम्र कम थी। आगे के परीक्षण के लिये मैं नर-कंकालों की खोपड़ियाँ अलग कराकर अपने साथ लेता आया और उसकी सूचना अपने अधिकारियों को दे दी।

उस दिन साँझ का समय था। आकाश में बादल छाये हुए थे। पुरवा हवा बह रही थी। वातावरण में गहरी नीरवता छाई हुई थी। मैं धीरे-धीरे चलकर बैताल बाबा के मन्दिर के टूटे चबूतरे पर बैठ गया। निशा का पत्र उसी दिन मिला था मुझे। अमेरिका से शीघ्र ही लौटने वाली थी वह। मेरा मन काफी प्रसन्न था उस समय। पूरे चार साल बाद निशा से भेंट होगी। मुझे कितना चाहती है वह। इतनी दूर जाकर भी मुझे भुला न पायी निशा। उसी की यादों में खोया न जाने कब तक बैठा रहा चबूतरे पर, पता नहीं। अचानक मकान के खँडहर की ओर से किसी के चीखने की आवाज आयी। भय से मेरे रोंगटे खड़े हो गये। बड़ी दर्दनाक चीख थी वह। फिर मैं एक मिनट भी वहाँ नहीं रुका। वापस लौट आया अपने कैम्प में। सारी रात सो न सका था मैं। बराबर उस चीख की याद आती रही मुझे। सबेरे मैंने इसकी चर्चा पिंगुल से की। पिंगुल मेरा स्थानीय नौकर था। मेरी बात सुनकर वह बोला—“साहब! उस मकान में शास्त्री जी का भूत रहता है। कभी-कभी वही चीखता-चिल्लाता है।” फिर उसने आगे जो कुछ बतलाया—वह सब बड़ा विचित्र लगा मुझे। उसने बताया—लगभग चालीस-पचास साल पहले उस मकान में रमाकान्त शास्त्री नाम का एक युवक रहता था। काफी पढ़ा-लिखा था वह। किसी एकान्त स्थान में रहकर वह दर्शनशास्त्र की एक पुस्तक लिखना चाहता था और इसी इरादे से वह उस एकान्त स्थान पर बने उस मकान में रहने को आया था। बाहर कम ही निकलता था। सारा दिन अध्ययन, चिन्तन-मनन और लेखन में ही लगा रहता था वह। एक दिन वह न जाने कहाँ चला गया एकाएक और फिर आज तक वापस नहीं आया।

पिंगुल से मुझे यह भी मालूम हुआ कि रमाकान्त शास्त्री की शादी गाँव के मुखिया लक्ष्मण प्रसाद की इकलौती बेटी रेखा से होने वाली थी। मुखिया ने ही रमाकान्त शास्त्री को शहर से बुलाया था और अपना वह मकान उसे रहने को दिया था। रेखा काफी आकर्षक और सुन्दर युवती थी। पढ़ी-लिखी भी थी। पहली नजर में ही वह रमाकान्त शास्त्री को दिल दे बैठी। रमाकान्त शास्त्री भी रेखा को चाहने लगा था। कभी-कभी दोनों शाम के समय इसी टीले पर घूमने चले आते थे। घण्टों बैठे बातें करते रहते थे। मगर जिस दिन रमाकान्त शास्त्री लापता हुआ, उसी दिन रेखा की लाश उसके मकान के बाहर बरामदे में पायी गयी वह अचानक कैसे मर गयी, इसका पता कभी किसी को न चला। डॉक्टरों ने बतलाया कि रेखा की हृदयगति बन्द हो जाने से मौत

हुई थी। भगवान जाने सच क्या था। इस भयानक घटना से लक्ष्मण प्रसाद मुखिया को इतना सदमा पहुँचा कि वे पागल हो गये और कुछ दिनों बाद ही उसी स्थिति में मर गये। लड़की के सिवाय परिवार में और कोई नहीं था, इसलिये उनकी सारी लावारिस सम्पत्ति सरकार ने अपने कब्जे में कर ली।

“तुमको ये सारी बातें कैसे मालूम हुई?” मैंने पिंगुल से पूछा। “साहब, मेरी माँ मुखिया के घर बर्तन मांजती थी और मैं भी चाकरी करता था। उस वक्त मेरी उम्र पन्द्रह-सोलह साल की थी। उस समय वह टीला नहीं था। उसकी जगह एक बड़ा मन्दिर था। मन्दिर तीन तल्लों का बना था। दो तल्ला तो जमीन के भीतर का और तीसरा तल्ला ऊपर था। जहाँ तक मेरा ख्याल है बौद्धों का मन्दिर था वह, क्योंकि कभी-कदा बहुत सारे बौद्धभिक्षु मन्दिर में इकट्ठे होते थे और अपना पूजा-पाठ करते थे।”

पिंगुल का कहना सही था। एक शिला-लेख के आधार पर हमारे विभाग को काफी प्राचीन बौद्ध मठ का पता चला था वहाँ। बौद्धग्रन्थों के आधार पर यह भी पता चला था कि किसी समय भगवान तथागत ने अपने शिष्य आनन्द के साथ उस बौद्ध मठ में कुछ समय व्यतीत किया था। सरकार को वहाँ प्राचीन और दुर्लभ बौद्धकालीन वस्तुएँ मिलने की आशा थी। इसीलिये खुदाई की जा रही थी।

पिंगुल की बातें सुनकर पूरी रात मेरे मानस-पटल पर रमाकान्त और रेखा का काल्पनिक रूप उभरता और मिटता रहा। सोचने लगा—कहीं वे तीनों नर-कंकाल रमाकान्त, रेखा और मुखिया के तो नहीं हैं। अगर हैं तो तीनों एकसाथ और एक ही स्थान पर कैसे मिले। मेरे सामने यह विकट प्रश्न था ?

मजदूरों के अभाव में काम रोक देना पड़ा था। डॉ० सक्सेना तो दिल्ली चले गये, मगर मैं वहीं रह गया। इसलिये कि मनोहरलाल ने मजदूरों की व्यवस्था करने का मुझे आश्वासन दिया था।

एक दिन देखा—नर-कंकालों की खोपड़ियाँ गायब थीं। घोर आश्चर्य हुआ। काफी खोजने पर भी उनका कहीं पता नहीं चला। आखिर वे गयीं कहाँ ? कौन ले गया उनका ? किसे जरूरत थी उनकी ? किसी अज्ञात भय से काँप उठा मेरा मन। इस घटना के दो-तीन दिन बाद एक युवक मुझसे मिलने आया कैम्प में। काफी सौम्य और शान्त लगा। सुन्दर और आकर्षक तो था ही। पढ़ा-लिखा भी था। मगर उसकी भाव-भंगिमा और बातचीत करने का ढंग मुझे रहस्यमय और विचित्र लगा।

जब मैंने पूछा कि क्या काम है उसे मुझसे तो उसने बड़े ही शान्त स्वर में कहा—“जब मजदूरों का इन्तजाम हो जाये तो मैं टीले के भीतर मिले चबूतरे की खुदाई कराऊँ। वहाँ एक पुरानी पाण्डुलिपि मिलेगी, जिससे सारे रहस्यों पर स्वयं अपने आप प्रकाश पड़ जायेगा।”

जब मैंने पूछा कि उस पाण्डुलिपि के बारे में उसे कैसे मालूम हुआ तो युवक ने पहले तो मेरी ओर एक बार घूर कर देखा, फिर मद्धिम स्वर में बोला—“मेरा नाम रमाकान्त शास्त्री है।”

रमाकान्त शास्त्री ? चौंक पड़ा मैं एकबारगी। “मगर इस नाम का व्यक्ति तो

चालीस-पचास साल पहले लापता हो गया था, अगर तुम्हीं वह रमाकान्त शास्त्री हो तो इस समय तुम्हारी उम्र कम से कम पैसठ-सत्तर साल होनी चाहिए... मगर तुम तो अभी युवक हो।”

मगर मेरी इन बातों का उस युवक ने कोई जवाब नहीं दिया। बस, निर्विकार भाव से मेरी ओर देखता रहा वह। उस समय उसकी आँखों में अजीब-सा सम्मोहन उतर आया था। विचलित हो उठा मैं। आगे न बोला गया न कुछ पूछा ही गया मुझसे। सहसा बैठे-ही बैठे युवक का सारा शरीर एक भयंकर नर-कंकाल में बदल गया। भय से थर-थर काँपने लगा मेरा सारा शरीर। न जाने कहाँ से मुझमें ताकत आ गयी। मैं पूरे वेग से कैम्प से निकलकर बाहर नदी की ओर भागा। संयोग से रास्ते में मोहन लाल से भेंट हो गयी। सारा किस्सा उसे एक साँस में सुना डाला मैंने। वह भी मेरी बात सुनकर एक बार दहल उठा, फिर बोला—“मैंने तो साहब आपसे पहले ही कहा था कि यह सारा इलाका भूतों का डेरा है। मगर आपने मेरी बात पर ध्यान न दिया; खैर, अब आज से आप मेरे मकान में रहिये। यहाँ अकेले कैम्प में रहने की जरूरत नहीं, वर्ना कभी भी आप किसी भयंकर खतरे में पड़ सकते हैं।”

एक हफ्ते बाद डॉ० सक्सेना भी वापस आ गये और मोहन लाल ने कुछ मजदूरों का भी इन्तजाम कर दिया। फिर जोर-शोर से खुदाई का काम शुरू हो गया। दो-तीन दिन की खुदाई से बौद्धाश्रम की भूमिगत सबसे नीचे वाली मंजिल सामने निकल आयी। दालान, आँगन और कमरे निकले सभी सफेद और लाल संगमरमर के बने हुए थे। कमरे बिल्कुल साफ और स्वच्छ थे। ऐसा लगता था कि रोजाना सफाई होती रही है। कमरे में एक अनिर्वचनीय सुगन्ध भी फैली हुई थी। बीच वाला कमरा अपेक्षाकृत काफी लम्बा-चौड़ा था। उसकी संगमरमरी दीवारों पर भगवान बुद्ध की सारी जीवन-लीला खुदी हुई थी। कमरे के भीतर घुसते ही मेरा तन-मन पुलकित हो उठा। बड़ी शान्ति का अनुभव हो रहा था वहाँ। काफी देर तक निर्विकार भाव से खड़ा रहा कमरे में। सहसा अन्तर्मन में ऐसा लगा कि कोई गम्भीर किन्तु कोमल स्वर में मुझे पुकार रहा हो। चौंककर चारों तरफ देखा, मगर वहाँ कोई नहीं था। बस शान्ति थी, खामोशी थी और थी गहन नीरवता।

मैं टहलता हुआ दूसरे कमरे में पहुँचा; वहाँ सब कुछ था, मगर शान्ति नहीं थी। मैं वापस लौटने को सोच ही रहा था कि डॉ० सक्सेना की आवाज सुनाई पड़ी—“शर्माजी! शर्माजी! इधर आइये।”

सक्सेना साहब बगल वाले एक छोटे से कमरे में थे। जब मैं वहाँ पहुँचा तो उन्होंने सामने की ओर उँगली से इशारा करते हुए कहा, “देखिये ! यह क्या है ?

कमरे की दीवार से सटाकर भगवान तथागत की एक अति भव्य पाषाण-प्रतिमा स्थापित की गयी थी वहाँ। भगवान बुद्ध की अभय मुद्रा थी। मुख पर चिर-परिचित शान्ति और सौम्यता की प्रखर आभा थी। प्रतिमा लगभग तीन फुट ऊँची थी।

प्रतिमा के ऊपर से फिसलती हुई मेरी नजर अचानक एक वस्तु पर अटक गयी। वह वस्तु थी। एक वस्तु सन्दूकची भगवान के कमलासन के निकट रखी थी और उसके

ऊपर धुँधले अक्षरों में लिखा था—“शान्ति के दूत भगवान तथागत के चरणों में”—
रमाकान्त शास्त्री।

मेरा सारा शरीर एकबारगी काँप उठा। और उसी के साथ उस युवक की शकल भी तैर गयी आँखों के सामने। सन्दूकची तोड़कर खोली गयी। उसके भीतर मृगछाला में लपेटी हुई दर्शनशास्त्र की हस्तलिखित एक मोटी-सी पुस्तक रखी मिली और उसी के साथ लपेटा हुआ कागजों का एक पुलिन्दा भी मिला, जिसके ऊपर के कागज पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था—रमाकान्त शास्त्री की जीवन-गाथा।

मेरे लिये जितनी मूल्यवान तथागत की वह मूर्ति थी, उतनी ही मूल्यवान रमाकान्त शास्त्री की जीवन-कथा भी थी।

जीवन-कथा का अन्तिम अंश इस प्रकार था—

“और अब अपने जीवन की सबसे अधिक दुखदायी किन्तु साथ ही सबसे अद्भुत विचित्र घटना का जिक्र करता हूँ। मेरी यह जीवन-कथा जिस किसी के हाथ लगे, उससे अब मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। आपने अभी तक इस जीवन-कथा में जो कुछ पढ़ा है उससे आपको कहीं ऐसा तो नहीं लगा कि मेरा दिमाग खराब हो गया है ? मैंने अब तक आपको अपनी जो कथा सुनाई है, उसके सूत्रबद्ध होने में तो आपको कोई सन्देह नहीं है। मेरी कथा में आपको कहीं कोई अस्वाभाविकता या अवास्तविकता की झलक तो नहीं मिली ? क्या आपको यह विश्वास है कि अभी तक मैंने आपको जो कुछ जिस ढंग से सुनाया है, वह उसी ढंग से सुनाया है, जैसे कोई बुद्धिमान व्यक्ति सुना सकता है। देखिये, सोचा था आपसे एक प्रश्न पूछने को और इतने सारे प्रश्न पूछ डाले, लेकिन करता भी क्या ? इस आशंका से मेरा हृदय काँप उठता है कि कहीं मेरी जीवन-कथा को पढ़कर लोग मुझे पागल न समझ बैठें। इसीलिये इतने प्रश्न पूछे मैंने। मेरी जीवनी का यह अन्तिम अंश इतना असाधारण है, सामान्य व्यक्ति के अनुभवों से इतना भिन्न है और संसार के नियमों तथा ज्ञान-विज्ञान के इतना विरुद्ध है कि मुझे स्वयं ही सन्देह होने लगता है।

अपनी यह दुखभरी व्यथा सुनाने के साथ ही जब मैं यह सोचता हूँ कि शायद इसे सुनने वाला इस पर विश्वास न करे और मुझे पागल समझ बैठे, शायद वह मेरे प्रति अनुकम्पा का भाव प्रकट करने के बजाय मेरा मजाक उड़ाने लगे तो मुझे ऐसा लगता है कि जैसे हजारों बिच्छुओं ने एकसाथ ही मेरे हृदय पर डंक चुभो दिये हों।

और तब मैं असीम वेदना से तड़फ उठता हूँ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी इस कथा का एक-एक अक्षर सत्य है। अपने लिये सर्वाधिक वंदनीय स्वामी विवेकानन्द और भगवान बुद्ध की सौगन्ध खाकर मैं कहता हूँ कि मैं आपको जो कुछ सुना रहा हूँ, वह सत्य है और उसमें कल्पना का जरा-सा भी स्पर्श नहीं हुआ है।”

जिस समय मैं रमाकान्त शास्त्री की जीवनी का यह अंश पढ़ रहा था उस समय मुझे ऐसा लगा कि मानो वह स्वयं मेरे सामने बैठकर उसे सुना रहा हो।

मेरे पास धन, सम्पत्ति का कोई अभाव नहीं है। कलकत्ता में मेरे अपने कई

मकान है। बैंक में लाखों रुपये जमा हैं। कलकत्ता के कोलाहलपूर्ण जीवन से ऊबकर और वहाँ की व्यस्तता से घबराकर मैं आसाम के इस सुनसान, निर्जन और शान्त इलाके में आया था। मेरे एकाकी जीवन को माधुर्य से भर देने वाली एक सुशील तथा सुन्दर पत्नी की भी प्राप्ति होने वाली थी। सच तो यह था कि रेखा का आकर्षण ही मुझे यहाँ खींच लाया था।

सोचता हूँ कि रेखा! कि उस दिन सुबह जब तुम मेरे यहाँ आने के लिये घर से निकली होगी तो तुमने अपने मन में कैसे-कैसे मनोरथों और कामनाओं की सृष्टि की होगी। जन-समाज की निन्दा की परवाह किये बिना जब तुम मेरे मकान की ओर चली थी तो तुमने मन में जाने क्या-क्या सोचा होगा। खैर छोड़ो यह सब। मैं तो भावनाओं के प्रवाह में बहता हुआ दूसरी ओर चला जा रहा हूँ।

रेखा के साथ मेरी शादी पक्की हो चुकी थी। मगर मैं अपने हठ के कारण शादी करने को तैयार नहीं था अभी। मैंने स्वामी विवेकानन्द और बुद्ध के ग्रन्थों का अध्ययन किया था। मुझे इस बात का विश्वास हो गया था कि धर्म केवल विवाद का ही विषय नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव का विषय है। यदि परमेश्वर का अस्तित्व सचमुच है, तो उसका प्रत्यक्ष रूप से दिखायी देना आवश्यक है—इसी जन्म में और इन्हीं आँखों से। और इसीलिये मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि जब तक ईश्वर-प्राप्ति के किसी मार्ग का ज्ञान प्राप्त नहीं कर लूँगा और इस सृष्टि के रहस्य के पीछे जिस अज्ञात शक्ति का हाथ है, उसके स्वरूप का जब तक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लूँगा, तब तक शादी नहीं करूँगा।

मैंने दर्शनशास्त्र का गहरा अध्ययन किया था, लेकिन दर्शन के जिन सिद्धान्तों का बुद्धि परिचय प्राप्त कर चुकी थी, उनका प्रकाश अन्तःकरण तक अभी नहीं पहुँचा था और इसी कारण मेरा मन अत्यधिक असन्तुष्ट था। प्रकृति के विभिन्न रूपों की विचित्र अनुभूति से मेरा हृदय भर जाता है और फिर मेरा मन अवर्णनीय व्याकुलता से भर उठता। मुझे ऐसा लगता, मानो प्रकृति के इन रूपों और सृष्टि के इन तमाम दृश्यों और मेरे बीच कोई अभेद्य पर्दा है, जिसके कारण ही मैं उसके अत्यधिक सुन्दर रूप का वास्तविक साक्षात्कार नहीं कर पाता और यह सोचकर मेरा मन एक गहरी उदासी से भर उठता और तब फिर सोचता—इन समस्त चराचर पदार्थों और मुझमें कल्पनागम्य ही नहीं वरन् अनुभवगम्य एकरूपता भी है। लेकिन फिर भी मैं इसकी वास्तविक अनुभूति से वंचित हूँ। सृष्टि के इन स्वरूपों से मैं अपने मन का तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाता और यह मेरे दुख का सबसे बड़ा कारण है।

मैं घंटों अत्यधिक अशान्त मन लिये इधर-उधर टहलता रहता। एक दिन ऐसी ही विचित्र मनोदशा में काफी देर तक टहलने के बाद मैं रेखा के घर गया। वह अकेली थी उस समय। मैं भर्राये स्वर में बोला—‘रेखा! कल सबेरे मेरे यहाँ तुझे आना होगा। यही कहने तीन मील का लम्बा रास्ता तै कर तुम्हारे पास आया था इस समय।’

‘किसलिये?’ चकित हो कर उसने पूछा।

‘कोई खास बात नहीं है। बस यों ही।’ ‘आप भी कैसी बातें करते हैं, शादी

के पहले इस तरह मिलना-जुलना भला उचित होगा ? दुनिया क्या कहेगी ? आपको हो क्या गया है ?'

'मुझे कुछ नहीं हुआ है।' झुंझलाहट भरे स्वर में मैंने कहा— 'लेकिन याद रखो इतना कि अगर तुम मुझसे प्रेम करती हो और पति-रूप में सचमुच मुझको पाना चाहती हो, तो कल सबेरे तुम्हें किसी-न-किसी बहाने से मेरे यहाँ आना ही होगा।'

रेखा मेरी बातों का कोई जवाब दे, इसके पहले ही मैं वहाँ से चला आया। चल तो पड़ा मैं, मगर बाद में मेरा मन पश्चात्ताप की आग में झुलसने लगा। सोचा कि लौटकर कह दूँ कि रेखा! मेरे यहाँ आने की जरूरत नहीं। मगर ऐसा न कर सका मैं। काश! लौटकर मना कर दिया होता।

मगर नियति तो कुछ और ही चाहती थी। मेरी किस्मत में उसने मेरे ही हाथों रेखा का सर्वनाश जो लिखा था उसे भला कौन मिटाता ?

रास्ते में सोचने लगा—स्वामी रामकृष्ण और विवेकानन्द प्रत्यक्ष रूप से परमेश्वर का दर्शन कर चुके थे लेकिन हजार कोशिश करने पर भी मैं अप्रत्यक्ष रूप से भी परमेश्वर के एक अंश का भी दर्शन न कर सका—एक अंश का भी साक्षात्कार न कर सका। मेरे मन में एकाएक यह लालसा उत्पन्न हुई कि काश ! मेरी ऐसी किसी गुरु से भेंट हो जाती, जो मुझे सही मार्ग दिखा देता। बुद्धि के प्रयास की चरम सीमा पर मैं पहुँच चुका था और अब मेरे हृदय में यह इच्छा उत्पन्न हो रही थी।

और संयोग से मेरी यह लालसा घर पहुँचने से पहले मार्ग में ही दुर्भाग्यवश पूरी हो गयी। हाँ ! दुर्भाग्य ने ही तो पूरी की थी मेरी यह लालसा। प्यास से तड़प रहे व्यक्ति को यदि पानी में डुबो दिया जाये तो इसे प्यास बुझाना तो नहीं कहा जा सकता। जैसे ही मैं इस मठ के करीब पहुँचा, एकाएक मेरी नजर एक संन्यासी पर पड़ गयी। वह ध्यानस्थ बैठा था मठ के चबूतरे पर। अत्यधिक विकलता से आक्रान्त मेरे मन को उस संन्यासी का दर्शन शुभ प्रतीत हुआ।

वह शायद अघोरी संन्यासी था। आयु रही होगी यही करीब सत्तर-अस्सी साल की। मगर फिर भी उसके चेहरे पर अद्भुत तेज था। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं उसके सामने जाकर बैठ गया। लगभग एक घण्टे बाद उसने अपनी आँखें खोलीं और मेरी ओर आश्चर्य और कौतूहल से देखते हुए पूछा, 'तुम कौन हो बेटा ?'

मैंने अपना नाम बतला दिया।

उम्र क्या है ?

पच्चीस वर्ष !

संन्यासी काफी देर तक मौन साधे बैठा रहा और आकाश की ओर निहारता रहा। उस समय उसके चेहरे पर गम्भीरता का गहरा भाव था।

संन्यासी का मौन भंग हुआ। उसने मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए कहा— 'बेटा ! लगता है कि तू दुःखी है। बता तू क्या चाहता है ?'

मैंने उसके सामने अपने मन की वास्तविक अवस्था का तुरन्त वर्णन कर दिया।

‘तुम जिस बीज का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहते हो संन्यासी कहने लगा— ‘उसके लिये तो योगियों को भी कई जन्म लेने पड़ते हैं। कई-कई जन्म हाड़-मांस गलाने के बाद कहीं उसका थोड़ा-सा ज्ञान हो पाता है। मैं तुझे ईश्वर का तो दर्शन नहीं करा सकता, लेकिन उसके साक्षात्कार प्रयत्न करने के लिये जिस लम्बी आयु की आवश्यकता होती है वह मैं तुझे दे सकता हूँ। यानी ‘इच्छा मरण शक्ति!’

वह साधु मेरी आँखों में आँखें डालकर बड़े गम्भीर और शान्त स्वर में बोला— ‘तू इस शक्ति को प्राप्त करने का अधिकारी है। बेटा, यही कारण है कि मैं तुझे यह शक्ति प्रदान करने को तैयार हूँ। लेकिन हाँ! इसके लिये मेरी एक शर्त है। यह अलौकिक शक्ति प्राप्त कर लेने के बाद तुझे उस समय तक के लिये अपना शरीर, मन-बुद्धि आदि सब कुछ मेरे अधीन कर देना होगा। इच्छामरण की शक्ति प्राप्त करना आसान थोड़े ही है।’

संन्यासी की बात सुनकर वह शक्ति प्राप्त करने का मैंने निश्चय कर लिया। इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का सोच-विचार करने की जरूरत नहीं समझी मैंने !

संन्यासी मेरी ओर निश्चल भाव से देख रहा था। मैंने सिर झुकाकर विनम्र भाव से कहा—‘आप वह शक्ति मुझे दीजिये। मैं सब तरह से तैयार हूँ और पूरी तरह आपके अधीन होने को भी तैयार हूँ।’ न जाने किस अज्ञात प्रेरणा से आप ही आप मेरे मुँह से निकल गया।

मेरे मुँह से इतना निकलते ही साधु मेरी ओर देखकर मुस्कराया। काश! उस समय उस मुस्कराहट का रहस्य समझ गया होता। खैर ! मुस्कराते हुए वह मुझे अपने साथ लेकर इसी कमरे में आया और पद्यासन लगाकर बैठने का आदेश दिया फिर उसने।

मैंने तुरन्त आदेश का पालन किया। दूसरे ही क्षण मेरी साँस अपने आप धीमी पड़ने लगी। स्थिर होने लगा मन भी। मेरी पलकें बोझिल होती गयीं और मुझे लगने लगा कि जैसे मेरी समस्त चेतनायें सुषुप्त होती जा रही हैं। उस अर्ध जाग्रत् अवस्था में मुझे साधु के ये अधिकारपूर्ण शब्द सुनाई दिये—‘मैं जैसा, जो कहूँगा, वही तुम्हें कहना होगा। कहो, अपने आपको मैं देख सकूँगा किन्तु स्पर्श न कर सकूँगा।’

उसकी आज्ञानुसार मैंने उसके ये शब्द अपनी वाणी में दुहरा दिये। उसने फिर कहा—‘आगे कहो मैं अपने आपको देख सकूँगा लेकिन न तो उससे बातचीत कर सकूँगा और न उसे कोई नुकसान ही पहुँचा सकूँगा।’

इन शब्दों को भी मैंने दुहरा दिया। शब्दों में निहित विचित्रता पर ध्यान देने या आश्चर्य करने की शक्ति भी उस समय मुझमें बाकी नहीं रह गयी थी। मैंने उक्त शब्दों का उच्चारण किया ही था कि मुझे फिर साधु के ये शब्द सुनाई दिये—‘तुमने इच्छामरण शक्ति प्राप्त कर ली।’ और तभी मेरी शेष चेतनायें भी लुप्त हो गयीं।

रात के दो बज गये। रमाकान्त की दिलचस्प और रोमांचकारी कथा पढ़ने में इतना तल्लीन हो गया था कि समय का ज्ञान ही नहीं रहा मुझे। बीच में छोड़ने का मन नहीं कर रहा था। चाय पी कर फिर आगे पढ़ने लगा—

दरवाजा खटखटाने की आवाज सुन कर मेरी आँखें खुल गयीं। कुछ देर तक तो मेरी समझ में ही नहीं आया कि आखिर मैं कौन हूँ ? और कहाँ हूँ ? फिर मुझे दरवाजा खटखटाने की आवाज सुनाई दी और साथ ही रेखा का मधुर कण्ठ भी सुनाई दिया—‘दरवाजा खोलिये। मैं रेखा हूँ ! खोलिये दरवाजा !’

मेरे आदेशानुसार सबेरे रेखा आयी थी—हाँ रेखा आयी थी मेरी अपनी रेखा !

‘ठहरो, खोलता हूँ’— मैंने कहने की कोशिश की—मगर ये शब्द मेरे कण्ठ में ही झनझनाकर रह गये और एक विचित्र-सी आवाज ही निकल सकी मेरे मुँह से। उस ओर ध्यान दिये बिना ही मैं दरवाजा खोलने को लपका। मेरी रेखा आयी है। उसे बाहर खड़ी रखना ठीक नहीं।

○○○

रेखा सामने ही होंठों पर मुस्कराहट लिये खड़ी थी। लेकिन मेरी ओर देखते ही उसकी मुस्कराहट सहसा गायब हो गयी। उसके चेहरे पर विकट भय के भाव उभर आये। आतंक के कारण होंठ खुल गये, नथने फैल गये और आँखें फटी-फटी-सी दीखने लगीं। उसने एकबारगी चीखने की कोशिश की। मगर चीख न सकी। भय-रोमांच के कारण उसकी आवाज गले में ही रुँधकर रह गयी। ऐसा लगा जैसे किसी ने उसका गला घोट दिया हो। दूसरे ही क्षण आँधी में उखड़े केले के पेड़ की तरह पछाड़ खाकर जमीन पर गिरकर ढेर हो गयी वह। मेरी समझ में नहीं आया कि रेखा ने आखिर कौन-सा ऐसा भयानक दृश्य देखा, जिसके कारण उसकी यह दशा हुई। अस्पष्ट स्वर में मैंने रेखा, रेखा कहकर अपने हाथ आगे फैला दिये। फिर भयानक रूप से डर कर मैं चीख पड़ा। रेखा के पिता भी न जाने वहाँ कैसे पहुँच गये। वे आँखें फाड़े, मुँह बाये रेखा और मेरी ओर देख रहे थे। फिर भय और आतंक से चीखते-चिल्लाते भागने लगे बेतहाशा। मैं भी दौड़कर घर के अन्दर गया और आदमकद आईने के सामने खड़ा हो गया। आईने में अपना प्रतिबिम्ब देखकर मेरे हृदय में भय, आतंक और शोक का जो असह्य तूफान उठ खड़ा हुआ, उसका वर्णन करना मेरे लिये असम्भव है। उस आईने में मुझे दिखलायी दिया एक कंकाल, भयानक नर-कंकाल। मैं अपने व्यक्तित्व से परिचित अवश्य था किन्तु जिस शरीर को रमाकान्त शास्त्री के नाम से लोग जानते थे उसका वह वास्तविक प्रतिबिम्ब न था। उस शरीर पर से मांस, चर्म, रक्त, मज्जा आदि सब कुछ गायब हो चुका था। बचा था सिर्फ कंकाल। मैं सब कुछ देख सकता था, सुन सकता था, मगर मेरी आँख, कान नहीं थे। आँखों के स्थान पर बने थे दो डरावने गड्ढे। मुझे स्पर्श की भी अनुभूति हो रही थी, मगर मेरी त्वचा गायब हो चुकी थी। मेरे चेहरे पर किसी भी प्रकार के भाव अंकित नहीं हो सकते थे। मेरे चेहरे के स्थान पर तो क्या था केवल मात्र हड्डियों का ढाँचा। मेरे शरीर के नाम पर अस्थियों के हाथ-पैर और अस्थियों का ही घर बचा था। मैं अब कभी मर नहीं सकूँगा। बिना अपनी इच्छा के कभी भी मैं मर नहीं सकूँगा। मुझे इच्छामरण की शक्ति प्राप्त हो चुकी थी। मेरी कथा को पढ़ने वाला शायद यही सोचेगा कि यह सब असत्य है और मेरे विकृत मस्तिष्क द्वारा रची गयी काल्पनिक कथा है। लेकिन मैं पूछता

हूँ कि यदि ऐसी ही बात है कि यदि ऐसा ही है तो रेखा क्यों मर गयी ? उसके पिता पागल होकर अन्त में कैसे मर गये ?

बिना इन्द्रियों के मैं समस्त चराचर जगत के अस्तित्व का अनुभव कैसे कर सकता था, इसका रहस्य मैं स्वयं ही नहीं जानता। नेत्रों के बिना मुझे सब कुछ कैसे दिखाई देता था, इसका जवाब दे पाना मेरे लिये असम्भव है। मानव के समस्त ज्ञान-विज्ञान भी इन प्रश्नों का जवाब देने में असमर्थ ही हैं। कंकाल के रूप में बदल जाने पर भी मैं इन्द्रियगम्य समस्त सृष्टि का अनुभव कर सकता था, इसमें सन्देह नहीं।”

इसके आगे पाण्डुलिपि की लिखावट काफी अस्पष्ट थी। पढ़ा न जा सका मुझसे। दूसरे दिन सबेरे डॉ० सक्सेना ने बतलाया कि तीनों खोपड़ियाँ मकान के खँडहर में मिल गयीं।

यह खबर सुनकर अचानक मेरे मस्तिष्क में एक विचार कौंध गया। क्यों न तांत्रिक प्रयोग कर उन खोपड़ियों द्वारा आगे का हाल मालूम किया जाये। अन्त में क्या हुआ, यह मुझमें जानने की काफी उत्सुकता जागृत हो गयी थी। एक हफ्ते बाद अमावस्या की रात आने वाली थी। मैंने उसी दिन प्रयोग करने का निश्चय किया। मगर ये सारी बातें किसी को नहीं बतलायीं मैंने।

अमावस्या का दिन आ गया। मैं पूरे दिन तांत्रिक सामानों को इकट्ठा करता रहा। मगर साँझ होते ही काले स्याह आसमान में बादल घिर आये और मूसलाधार वर्षा होने लगी। एकाएक अपने तुमुल रव से धरती को कँपाती हुई बिजली कौंधी। राशि-राशि बिखरे अंधकार में धुँधले उजाले का दायरा एक बार सिमटकर फैला और फिर फैलता गया।

मैंने तीनों खोपड़ियों में तेल भरकर चिराग जलाया। जब वह तेज से जलने लगा तो तीनों खोपड़ियों को माला पहनायी और सामने शराब की बोतल, मुर्गे का ताजा गोश्त और जायफर, नीबू आदि रखा। और अन्त में एक बड़े से आईने पर काजल का भरपूर लेप कर खोपड़ियों के पीछे इस प्रकार रख दिया कि उस पर मेरी ठीक-ठीक नजर पड़ सके। इस्लामी तंत्र की इस क्रिया को “रूहे-हाज़रात” कहते हैं। इस समय हमारे देश में इस तांत्रिक क्रिया को शायद ही कोई जानने वाला हो। रूहे हाज़रात के जरिये किसी भी रूह यानी आत्मा को यदि उसने कहीं जन्म नहीं लिया है, काजल लगे आईने में बुलाकर उससे बातचीत की जा सकती है। वह अपने पार्थिव शरीर का प्रतिबिम्ब लेकर आइने में उपस्थित होती है। मगर यह सब तभी सम्भव है जबकि उस व्यक्ति की जिसकी आत्मा बुलानी है, खोपड़ी मौजूद हो।

मेरी तांत्रिक क्रिया शुरू हो गयी।

पहली खोपड़ी में जलते हुए चिराग की ओर अपलक देखते हुए मंत्र का जाप करने लगा मैं।

वे खोपड़ियाँ वास्तव में हैं किसकी ? इस बात को मैं जानना चाहता था। अगर रमाकान्त और रेखा आदि की होंगी तो निश्चय ही एक तिमिराच्छन्न रहस्य का उद्घाटन होगा। आगे क्या हुआ ? इस प्रश्न का भी उत्तर मिल जायगा। खैर, थोड़ी ही देर

बाद चिराग बुझ गया और उस खोपड़ी की आत्मा अपने शरीर की छाया के साथ आईने पर आ गयी। वह लक्ष्मण प्रसाद मुखिया की ही आत्मा थी, यह समझते मुझे देर न लगी।

उसने बतलाया कि अपने भावी दामाद को नर-कंकाल के रूप में देखा था— उसी भय और आतंक से उसकी मौत हुई थी। अपनी बेटी की मौत के सदमे की आग में वह आज भी जल रहा है।

मैं समझ गया कि बाकी दो खोपड़ियाँ रमाकान्त और रेखा की ही होंगी।

मेरा अनुभव सही निकला। दूसरी खोपड़ी का चिराग बुझते ही रमाकान्त आ गया आईने में तुरन्त पहचान गया मैं उसको। क्योंकि कैम्प में एक बार वह मुझसे मिल चुका था।

जब मैंने पूछा कि तुम्हारी आत्मकथा पूरी पढ़ी न जा सकी; क्या तुम यह बतला सकते हो कि आगे क्या हुआ ? इस पर रमाकान्त ने जो कुछ सुनाया वह इस प्रकार था—“लगातार कई दिनों तक मैं दुःख और मानसिक पीड़ा की असह्य अग्नि में झुलसता रहा। उसके बाद मैं उस अघोरी संन्यासी की तलाश में निकल पड़ा। मैं उससे पूछना चाहता था कि उसके प्रयोग में कहीं कोई गलती तो नहीं रह गया या कि इच्छा-मरण शक्ति प्राप्त करने के लिये मुझे यही मूल्य चुकाना पड़ा ?

लगातार मैं उसे खोजता रहा, मगर वह संन्यासी कहीं भी मुझे नहीं दिखलायी दिया। मेरी गति काफी तेज हो गयी थी। कुछ ही समय में सैकड़ों मील का फासला तै कर लेता था। मैं बड़े ध्यान से उसे खोज रहा था। फिर भी खोजने में सफल न हो सका मैं। अन्त में मैंने हरिद्वार जाने का निश्चय कर लिया। मेरी आत्मा को वहाँ काफी शान्ति मिली। मगर ज्यादा दिन ठहर न सका वहाँ मैं। अचानक मेरी इच्छा-शक्ति प्रबल हो उठी।

मैं हरिद्वार स्टेशन पर आया। कोई मेल ट्रेन कहीं जाने के लिये खड़ी थी। सहसा मेरी नजर प्रथम श्रेणी के एक कम्पार्टमेण्ट में पड़ गयी। एक यात्री अभी-अभी आकर अपना बिस्तर बर्थ पर बिछाने लगा था। वह मेरी ओर पीठ किये हुए था। फिर भी रह-रहकर मुझे ऐसा लग रहा था कि जैसे मैंने उसे कहीं देखा हो और जैसे उससे मेरी घनिष्ठता रही हो। मेरी एकटक देखने के फलस्वरूप ही शायद उसने बिस्तर बिछाना छोड़ कर मेरी ओर मुड़ कर देखा।

उसे देखकर आश्चर्यचकित रह गया मैं। मुझे ऐसा आघात लगा कि लड़खड़ाकर गिरने लगा। वह व्यक्ति मेरी ओर बड़े शान्त भाव से देख रहा था। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। वह व्यक्ति “मैं” था—हाँ! मैं ही! रमाकान्त शास्त्री, शान्त, निर्विकार भाव से मेरी ओर देखता हुआ—सामने खड़ा था।

कुछ कहने के लिये मैं आगे बढ़ा— लेकिन मेरे बोलने की शक्ति तो खत्म हो चुकी थी। मेरी यह निष्फल चेष्टा देखकर वह यात्री जोर से खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने कहा “तुम्हारी सारी कोशिशें बेकार हैं।”

वह व्यक्ति और कोई नहीं, मेरे ही शरीर की केंचुल पहने वह अघोरी

संन्यासी था।

उसने हँसकर कहा— “तुम इच्छा-मरण की शक्ति चाहते थे—सो मैंने तुमको दे दिया। मुझे तुम्हारी देह की आवश्यकता थी— सो मैंने पा लिया। अब मुझे साठ वर्ष तक कोई भी नया शरीर प्राप्त करने के झंझट में फँसने की कोई जरूरत नहीं। समझे...।”

मेरे अज्ञान से लाभ उठाकर उस कपटी साधु ने अपना मतलब साध लिया था। उसके इस प्रयोग के कारण ही मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय रेखा को भय के परिणामस्वरूप जान गँवानी पड़ी। जो समाज के सारे बंधनों को तोड़कर और जन निन्दा की परवाह किये बिना उस दिन सबेरे मुझसे मिलने आयी थी। मेरे मन एकाएक उस धोखेबाज और कपटी साधु की हत्या कर डालने की भयानक इच्छा जागृत हो उठी, लेकिन, मैं उसे वचन दे चुका था कि मैं अपने आपको देख सकूँगा— मगर न उसका स्पर्श कर सकूँगा और न उसे कोई नुकसान ही पहुँचा सकूँगा। बस, मेरी कहानी यहीं खत्म हो जाती है। मैं हार गया। मुझे अभी दस साल तक और रहना पड़ेगा—नर-कंकाल के रूप में। अन्त में आपसे अनुरोध है कि मेरे और रेखा के कंकाल को फिर से वहीं दफना दें। इस दुनिया में मेरे लिये कहीं शान्ति है तो सिर्फ उसी जगह है। एक विनती भी है मेरी, यदि आप मेरी पुस्तक को कहीं छपवा देंगे तो मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी।”

तीसरी खोपड़ी का चिराग काफी तेजी से जल रहा था। मैं उस पर नजर गड़ाकर जप करने लगा। कुछ ही क्षणों के बाद, रेखा की भी आत्मा सशरीर आ गयी दर्पण में।

मझोला कद, गोरा रंग, बड़ी-बड़ी स्वप्निल आँखें, चेहरे पर दुःख-शोक और वेदना की मिली-जुली छाया। करुणा की साकार प्रतिमा। पति की जगह एक भयानक और वीभत्स नर-कंकाल को देखकर तुरन्त बेहोश हो गयी वह और उसके बाद कब, किस समय उस स्थिति में उसका शरीर छूट गया, पता नहीं। रेखा ने आगे बतलाया “तब से अभी तक उसकी आत्मा उसी अघोरी संन्यासी के चंगुल में है। वह मुझसे बुरा-से-बुरा काम कराता है जिसे मैं नहीं चाहती। शायद मुझे भी दस वर्ष बाद ही छुटकारा मिलेगा उससे।”

इस समय वह साधु कहाँ और किस भेष में है, मेरे यह पूछने पर रेखा ने बतलाया—“वह इस समय कभी दिल्ली तो कभी आगरा में रहता है। तंत्र-मंत्र के नाम पर पैसा और इज्जत काफी कमा रहा है। उसके तंत्र-मंत्र के पीछे मेरे अलावा और कई विवश आत्मायें काम करती हैं। न जाने कितनी आत्मायें विवशतावश उसके चंगुल में फँसी हुई हैं।” मेरे यह पूछने पर कि उसने अपना नाम क्या रखा है, तो रेखा ने जो नाम बतलाया उसे सुनकर एकबारगी चौंक पड़ा मैं। सहसा विश्वास नहीं हुआ मुझे। मैं उस नाम से और उस नाम के व्यक्ति से भलीभाँति परिचित था। उसका प्रभावशाली व्यक्तित्व मेरे सामने उभर कर आ गया दूसरे क्षण। मेरे सामने एक बहुत बड़ा रहस्य अनावृत हो चुका था। उसका नाम क्या है, यह किसी कारणवश मैं आपको बतला न सकूँगा। मैं अपनी सुविधा के लिये उसका काल्पनिक नाम नारायण गोस्वामी

रखे देता हूँ।

दूसरे ही दिन मैंने तीनों नर-कंकालों व खोपड़ियों को फिर से यथास्थान दफनवा दिया और एक सप्ताह के भीतर सारा काम खत्म कर सीधा दिल्ली पहुँचा और वहाँ नारायण गोस्वामी से मिला। शानदार बँगला, कार, नौकर-चाकर। उसका वैभव देखकर चकित रहा गया मैं। एक आधुनिक ढंग से सजे हुए कमरे में बैठा था गद्दी पर नारायण गोस्वामी, रमाकान्त शास्त्री के शरीर का केंचुल ओढ़े हुए।

मैंने नारायण गोस्वामी की ओर व्यंग से मुस्कराते हुए कहा—“पचास साल में सिर्फ अब आठ साल छः महीने और चौदह दिन शेष बच गये हैं। क्या ख्याल है आपका ? मेरा अनुमान सही है न !”

मेरी बात सुनकर एकबारगी चौंक पड़ा नारायण गोस्वामी। बिफरे शेर की तरह दहाड़कर बोला—“तुम हो कौन ?” “अरे ! इतना भी मालूम न हो सका आपको—रेखा की आत्मा से पूछ लीजिये कि मैं कौन हूँ ?”

रेखा... यह शब्द मुँह से निकलने के साथ ही नारायण गोस्वामी का दप्-दप् चमकता हुआ चेहरा स्याह हो गया।

“आपका सारा रहस्य मैं जानता हूँ नारायण गोस्वामी! तुम कौन हो, यह शरीर किसका है, और तुम्हारा तंत्र-मंत्र क्या है, यह सब कुछ मैं जान गया हूँ।” मैं, सोफे पर बैठकर एक सिगरेट सुलगाते हुए आगे बोला—“तुम योग तंत्र-मंत्र की आड़ में निहित विवश प्रेतात्माओं की सहायता से जो कुछ करते हो, उससे भली-भाँति परिचित हूँ। अब तक तुम कितने घर उजाड़ चुके हो, कितनी औरतों का सतीत्व नष्ट कर चुके हो और कितनी मासूम अधखिली किशोरियों के बेदाग जिस्म से खिलवाड़ कर चुके हो वह भी मुझसे नहीं छिपा है।”

... तब तो तुम्हारे जैसे व्यक्ति को जिन्दा नहीं छोड़ना चाहिये। यह कहकर नारायण गोस्वामी ने बगल में रखी हुई शराब की बोतल उठा ली और मुँह से लगा लिया। दूसरे ही क्षण कई प्रेतात्माओं की छायाएँ मँडराने लगीं उसके चारों ओर ! वह क्या करना चाहता है, मैं समझ गया। हँसकर बोला—“यार ! क्यों मुझे मारने के लिये इन बेचारे आत्माओं को तकलीफ दे रहे हो ! वे मेरा कुछ भी बिगाड़ न सकेंगी। लाओ, थोड़ी सी दारू मुझे दो, प्यास लगी है मुझे, कह कर मैंने मेज पर से दूसरी बोतल उठा ली और एक ही साँस में गट्-गट् कर पूरी शराब पी गया मैं। फिर देखते-ही-देखते कमरे के वातावरण में एक भयानक काली दानवाकृति छाया उभरी और लपककर नारायण गोस्वामी के निकट पहुँच गयी। वह महापिशाच था।

दूसरे क्षण गोस्वामी करुण स्वर में चीखने-चिल्लाने लगा ! मैंने दूसरी सिगरेट सुलगायी और आलमारी से निकालकर शैम्पियन की पूरी बोतल खाली कर दिया। फिर हँसकर बोला—“गोस्वामी ! शराब इस तरह पी जाती है। सच्चे और कल्याणकारी भाव रखने वाले तांत्रिक इसी तरह शराब पीते हैं। अब बोलो, क्या चाहते हो तुम ?”

गोस्वामी को उस समय कहाँ होश था। वह तो पूर्ववत् चीख-चिल्ला रहा था और उसी स्थिति में गिड़गिड़ाने लगा—“मुझे छोड़ दो, छोड़ मुझे, मैं मर जाऊँगा।

मर जाऊँगा... हे भगवान...”

तुम रेखा को भुक्त कर दो, मैं तुम्हें इस महापिशाच से छुड़ा दूँगा। वरना तुम जानो क्या दशा होगी तुम्हारी... ?

“मुक्त किये देता हूँ... किये देता हूँ... ” गोस्वामी चिल्लाया। और दूसरे ही क्षण धड़ाम से गिर पड़ा गद्दी पर।

मेरी यह कथा यहीं समाप्त हो जाती है। बाद में सुना कि नारायण गोस्वामी ने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली। मगर सन् १९६० में ठीक आठ साल छह महीने और चौदह दिन बाद। रेखा को तो मुक्ति मिल गयी उससे। रमाकान्त शास्त्री उस नर-पिशाच अधोरी तांत्रिक के चंगुल से निकल सका कि नहीं, यह बतलाया नहीं जा सकता।



वह रहस्यमय साधु

सन् १९६८।

मैंने उन दिनों तांत्रिक साधना से संबंधित एक महत्वपूर्ण ग्रंथ को पूर्ण करने के उद्देश्य से उस पर्वतीय नगर के एक होटल में कुछ दिनों के लिए ठहरा हुआ था। होटल के मालिक मेरे सुपरिचित थे। नाम था भवानी बाबू। मेरा बहुत ख्याल रखते थे वह। उन्होंने मुझे जो कमरा दिया था वह कमरा ऊपर की मंजिल पर था। कमरे में दो बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ थीं, जो सुनसान घाटी की ओर खुलती थीं। कमरे के सामने काफी लम्बी-चौड़ी छत थी, जिस पर सुगंधित फूलों और बेलों के कई गमले करीने से रखे गये थे। छत की दूसरी ओर कतार में तीन कमरे थे, जिनका उपयोग भवानी बाबू स्वयं अपने लिए करते थे।

अपने कमरे के बाहर बहुत कम ही निकलता था मैं। जिन सामानों की मुझे आवश्यकता पड़ती, उन्हें भवानी बाबू नौकरों से भिजवा दिया करते थे। मैं प्रायः लिखता-पढ़ता रहता था या फिर खिड़की के पास चुपचाप बैठकर सुनसान घाटी की ओर गाल पर हाथ धरे अपलक निहारा करता था काफी देर तक। वह वीरान और उदास घाटी काफी दूर तक फैली हुई थी जिसके एक ओर हिमालय के हिमाच्छादित उत्तुंग शिखरों की कतारें थीं, और दूसरी ओर घने जंगलों का लम्बा सिलसिला था। जब उस जंगल के पीछे सूरज छिप जाता, साँझ की स्याह कालिमा धरती पर बिखर जाती, वातावरण में चारों ओर साँय-साँय करने लग जाता और जब हिमाच्छादित पहाड़ों के पीछे से कृष्ण पक्ष का गमनीन तथा उदास पीला-सा चाँद धीरे-धीरे निकलता उस समय वह वीरान घाटी किसी अनजाने लोक-सी प्रतीत होती थी मुझे। किसी अज्ञात अनुभूतियों से भर जाता मेरा मन और प्राण। रोज की तरह उस दिन भी साँझ के समय खिड़की के पास चुपचाप निहार रहा था मैं घाटी की ओर। तभी मुझे होटल में शोरगुल सुनाई पड़ा। दो तल्ले के बरामदे में काफी उत्तेजना दिखाई दी। कुछ शब्द एकदम नये साथ ही आशंका पैदा करने वाले थे। और दिनों की तरह अलस क्षणों के अर्थहीन वाक्यों की तरह नहीं।

...उफ। खून से एकदम सराबोर हो गये हैं।

...पहले "डेटाल" लगाइये।

...नहीं है ? ...किसी के पास चूना है क्या ? ...क्या वही दीजिये ना अरे पहले देखिये कि स्टिच करना होगा कि नहीं। चूना लगाने से मुश्किल होगी।

औफफहो। आप सब लोग डॉक्टरी क्यों कर रहे हैं ? दिस इज ए सीरियस केस। व्हाई डू यू टेक दिस केस इन योर हैण्ड ? डॉक्टर को दिखलाइये। आस-पास कोई डॉक्टर नहीं है ?

होना तो चाहिये। मैनेजर से पूछिये न...

ऐसे कौन मारता है ? कौन है वह ? चाण्डाल या पागल ? स्कैण्डल। साधु-सन्यासी बनता है ? उस साले को पुलिस के हवाले करना चाहिये। रिपोर्ट करा दीजिये। इसी हालत में रिपोर्ट की जाए तो केस तगड़ा होगा।

दूसरी तरफ का भी स्वर सुनाई दिया। आप लोग जाते ही क्यों हैं ? साधु-सन्यासी का नाम सुनकर भागते हैं, अच्छा ही हुआ। आप लोगों को उचित शिक्षा मिल गई।

मिलनी ही चाहिये सचमुच ही। और एक वक्ता ने उनका समर्थन किया... आप ही लोग तो वहाँ गये थे ट्रेस पास करने। वह तो नहीं आया था। एकान्त में साधन-भजन करना चाहता है तो आप लोग उसे डिस्टर्ब करने क्यों जाते हैं ?

मान लिया महाशय जी। मगर क्या इसीलिए किसी की जान ले लेगा ? यह क्या अन्धेर नगरी है ? आश्रम ? काहे का आश्रम ? हमारे-आपके रुपये से ही तो चलता है। ट्रेस पास कैसा ? चलिए, हमसब एक साथ चलें, ढोंगी, शराबी बेटे को शिक्षा दे आयें।

आप लोगों ने उसे रुपया दिया है श्रीमान् जी। यहाँ उपस्थित किसी ने भी दिया है। मैंने तो सुना है कि कोई प्रणामी देने जाय तो वह उठा कर फेंक देता है।

रहने दीजिये। तब चलता कैसे है ? पहले वाले सज्जन की बात पूरी नहीं हुई। इसी बीच केयरटेकर साहब की आवाज सुनाई दी ... ना, ना, यह काम न करियेगा सर। यहाँ की पुलिस सर्किल में उस साधु का बड़ा नाम है। बड़े-बड़े पुलिस अफसर उसे सम्मान देते हैं। सब डरते हैं। सब इज्जत करते हैं। इसके पहले भी कुछ लोग जा चुके हैं। साधु ने त्रिशूल से एक का सिर फोड़ दिया था और एक के कन्धे के आर पार त्रिशूल भोंक दिया था। पुलिस को खबर दी तो एस.पी. साहब ने कहा कि आप लोग विदाउट परमिशन किसी के प्राइविसी में क्यों घुसे हैं ? अगर हमें न्याय करना हो तो पहले ट्रेस पास का चार्ज लगाकर आप लोगों को अरेस्ट करना पड़ेगा। उसके बाद यदि साधु कहे कि आपने डकैती के इरादे से उसके घर पर चढ़ाई की थी तो आप उसके खिलाफ क्या सबूत देंगे ? सीरियस गोलमाल में पड़ जायेंगे। कहे देता हूँ।

यह सब सुनकर वे लोग घबरा गये। ...सोच-समझ लीजिये इसीलिए तो उसे छोड़ने कोई नहीं जाना चाहता।

इतना सुनकर कौतूहल रोकना कठिन हो गया। मैं उठकर बाहर आया। देखा कि हमारे बरामदे के छोर पर सोलह नम्बर के कमरे में बंगाल इण्टरप्राइज के जो पाँच-छः आदमी आकर ठहरे थे वही सब मुँह लटकाए बैठे हैं। उसमें से जो जरा मोटे-से हैं तुलसी बाबू उनका माथा फट गया है। उससे खून काफी निकला है। यहाँ तक कि कमीज भी भींग गयी है। इन लोगों को घेर कर और लोग भी खड़े हैं तथा इस विषय पर अपना-अपना मत प्रकट कर रहे हैं।

* घटना जानने में अधिक समय नहीं लगा। यही जो लाल रंग का एक मकान दिखाई पड़ता है जिसके चारों ओर काफी पेड़-पौधा वाला बगीचा है और बीच में

एक मन्दिर जैसी है उसी के पास लाल रंग का एक झण्डा फहरा रहा है। वहीं कोई तांत्रिक साधु रहते हैं।

○○○

उस रात काफी देर तक नींद नहीं आयी मुझे। खिड़की के पास बैठा सोचता रहा तंत्र और तांत्रिक के विषय में। भारतीय संस्कृति का मूल्य स्तम्भ है—तंत्र। वेदों में सबसे प्राचीन है ऋग्वेद। उसी ऋग्वेद से आविर्भाव हुआ है तंत्र का। भारतीय अध्यात्म क्षेत्र में केवल दो ही साधनाएँ हैं—यौगिक साधना और तांत्रिक साधना। वैसे देखने में ये दोनों साधनाएँ अलग-अलग हैं मगर आन्तरिक दृष्टि में दोनों एक दूसरे के पूरक और एक दूसरे पर आश्रित हैं। विश्व ब्रह्माण्ड के मूल में एक ही शक्ति क्रियाशील है। उस शक्ति का क्या स्वरूप है और क्या गुण है, इसे आज तक कोई भी जान न सका है। मगर तत्त्ववेत्ताओं के अनुसार उसे परमात्म शक्ति अथवा चिन्मय शक्ति कहा जा सकता है। विवेचना की दृष्टि से उस परमात्म शक्ति को दो रूपों में विभक्त किया गया है। पहला समष्टि रूप है, जो अखिल विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। दूसरा व्यष्टि रूप है, जो सभी प्रकार के जीवों और प्राणियों में चैतन्य रूप में स्थित है। साधकगण इन्हीं दोनों रूपों को परमा और परा कहते हैं। मनुष्यों में यही परारूप शक्ति, मन प्राण, वाक् के रूप में विभक्त होकर क्रियाशील है। सगुणोपासना भूमि में इन्हीं तीनों रूपों को महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती की संज्ञा दी गयी है। तंत्र में शक्ति के समष्टि और व्यष्टि रूप के अलावा इन तीनों रूपों की भी साधना है। वास्तव में तांत्रिक साधना विशुद्ध शक्ति-साधना है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो तंत्र एक अत्यन्त गूढ़, गोपनीय और रहस्यमय शास्त्र है। यह एक प्रकृष्ट विज्ञान है। वर्तमान में तंत्रसाधना और तंत्रविज्ञान के परिपक्व साधक प्रकट में बिल्कुल नहीं हैं। जो भी हैं वह प्रच्छन्न हैं। शीघ्र अपने आपको व्यक्त नहीं करते वह। इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि उनकी मति-गति को और उनकी गतिविधि को समझना कठिन है। उनको जानना-समझना भी मुश्किल है। सबसे बड़ी बात तो यह भी है कि मानवेतर शक्ति-सम्पन्न और गुप्त रूप से संचरण-विचरण और निवास करने वाले साधकों को पहचानने की दृष्टि अब नहीं रह गयी हमारे पास।

दूसरे दिन भवानी बाबू से बहुत-सी बातें मालूम हुईं। उन्होंने बतलाया कि साधु की खूब ख्याति है। हालाँकि सुख्याति की जगह कुख्याति ही अधिक है यहाँ। सुनते हैं कि वे दिन-रात खूब शराब पीते हैं। एक दिन में कम से कम पाँच-छः बोतल। उनकी आँखें शराब और गाँजे के कारण गुड़हल के फूल जैसी लाल रहती हैं हमेशा। वे बड़े कटुभाषी और अभद्र हैं। कोई श्रद्धा-भक्ति से मिलने जात है, तो मारपीट करते हैं और कभी-कभी बातें भी कहते हैं। योग-तांत्रिक साधनाओं के गोपनीय रहस्यों को भी समझाते हैं। भूत, भविष्य, वर्तमान सब बतला देते हैं, जैसे छपी हुई किताबों में सब लिखा हो।

भवानी बाबू के साथ एक और महाशय आये हुए थे। नाम था रंजन राय चौधरी। जंगल के ठेकेदार थे। उन्होंने बतलाया कि साधु में सुना है नारी संबंधी दोष भी काफी

मात्रा में हैं। उनके पास प्रायः ही नयी-नयी भैरवियाँ दिखाई देती हैं। इस मामले में साधु महाशय काफी भाग्यवान हैं। आयु सत्तर के आस-पास होगी। कोई-कोई और भी ज्यादा बतलाते हैं, मगर देखने में काफी हट्टे-कट्टे से हैं। आजकल जो भैरवी उनके पास मौजूद है, वह परम सुन्दरी है। उसकी आयु २५-२६ से ज्यादा नहीं है। कलकत्ता के किसी धनी परिवार की बहू या बेटा है वह। सुना है कि साथ में ढेर सारे जड़ाऊ गहने और सोने की मोहरें लायी हैं वह युवती। उसी के साथ कभी-कभी साधु बाबा रिक्शा या टैक्सी में बाहर जाते हैं। युवती भैरवी दोनों हाथों से पैसा खर्च कर रही है।

इतना ही नहीं, रंजन राय चौधरी हथेली पर खैनी मलते हुए आगे बोले— सुना है किसी प्रसिद्ध व्यापारी का इकलौता लड़का, देखने में सुन्दर और पढ़ने में भी तेज, कॉलेज-वॉलेज छोड़कर साधु बाबा के पास आकर पड़ा हुआ है। नौकर की तरह रहता है, बर्तन साफ करता है, बाबा का पैर दबाता है और भी सारे छोटे-मोटे कार्य करता है।

इसी तरह एक और कश्मीरी ब्राह्मण का लड़का भी रहता है। वह दोनों समय का खाना बनाता है, पूजा करता है, पैर दबाता है। कभी-कभी बाबा की लात भी खाता है। जरा-सी बात पर ही बाबा उसे कसकर पीट देते हैं। सुना है कि एक दिन उस कश्मीरी लड़के की छाती पर बैठकर जबरदस्ती उन्होंने उसे शराब पिलायी थी लड़का मरते-मरते बचा। पूरे छः घण्टे तक बेहोश था मगर ये लोग सब कुछ सह कर भी जाते नहीं। वहीं पड़े रहते हैं। दोनों लड़कों के माँ-बाप रोते-पीटते हैं। पैर पकड़ते हैं। मगर वे घर लौट कर जाना नहीं चाहते। किस लोभ में पड़े हैं, कोई नहीं जानता।

कल की घटना का भी विवरण सुना। इन भले मनुष्यों को साधु-संगत की सनक है कुछ। इसलिए ये लोग जब छुट्टी पाते हैं, ज्यादातर तीर्थों में जाते हैं, मगर तीर्थों में देवताओं का दर्शन करने नहीं, साधु सन्त खोजने। यहाँ आकर भी इन लोगों ने साधु-सन्तों की तलाश की। कई लोगों के मुँह से इस तांत्रिका का वर्णन सुनकर नाच उठे थे। साधु बाबा शिष्य नहीं बनाते। रुपया या प्रचार नहीं चाहते, उल्टे भक्तों से बचकर ही रहना चाहते हैं। ऐसा आदमी अगर साधु न हो तो तब और कौन होगा? ऐसे ही साधु की तो ये लोग इतने दिन से खोज कर रहे थे।

कई लोगों ने मना किया था कि बदमिजाज और शराबी आदमी हैं, क्यों जाते हैं ख्वाहमख्वाह छेड़ने? लेकिन इन लोगों ने किसी की भी बात नहीं सुनी। और सबरे ही स्नान करके फूल, मिठाई, अगरबत्ती आदि खरीद कर साधु के दर्शन करने गये। सोचा था कि भीतर एक मंदिर है तब देवता के नाम पूजा का सामान ले जाने पर कुछ लौटा नहीं सकेंगे। दूसरे दिन सबरे शराब का प्रभाव भी कम रहेगा।

मगर पता नहीं क्यों, साधु बाबा इन लोगों को देखते ही जल उठे। निकलो। अभी निकल जाओ। कुत्ते के बच्चे। गधे के बच्चे। सुअर की औलादा। आदि-आदि गालियाँ देते हुए साधु ने फूल-मिठाई वगैरह सब उठाकर फेंक दिया।

फिर वे खड़ाऊँ उतारकर जो लोग सामने पड़ गये, फेंक-फेंक कर मारा। मगर

ये लोग फिर भी नहीं हटे। तुलसी बाबू झुक कर पैरों पर गिरने चले। तब साधु ने एक भारी-सा लोहे का चिमटा उनके सिर पर जमा दिया। तब भाग जाने के सिवा अन्य कोई चारा नहीं रहा, निकल कर यहाँ चले आये सलाह-मशवरा करने।

जितने लोगों ने घटना सुनी, उतने प्रकार की सलाह दी। पहले तो दी थी काफी सलाह मगर तुलसी बाबू आदि ने अन्त में अपनी ही बुद्धि पर निर्भर किया। यानी मामले को एकदम दबा दिया। कहावत है कि सयाना ठगे जाने पर बाप से नहीं कहता। इसी रीति के अनुसार अपनी इज्जत बचाकर दूसरे ही दिन वे लोग कलकत्ता चले गये। रिजर्वेशन भी नहीं कराया। उन्होंने देखा कि वे लोग टूरिस्ट लॉज में ही नहीं बल्कि आसपास के सभी बंगालियों के लिए दर्शनीय, कौतुक और व्यंग्योक्ति के लक्ष्य हो रहे हैं। इसीलिए वे इतने उतावले हो गये।

वे लोग तो चले गये। मगर मैं किसी तरह भी इस बात को नहीं भूल सका। सब कुछ बड़ा रहस्यमय लग रहा था। ख्वाहमख्वाह दर्शनार्थी भक्तों के प्रति इस दुर्व्यवहार का क्या माने है ? क्या यह भी प्रचार का एक कौशल है, जिसे पब्लिसिटी स्टंट कहते हैं अथवा इसका कोई और गहरा रहस्य है ? सचमुच क्या वह साधु मानव-समाज से छिपकर रहना चाहता है ? वह कोई क्रिमिनल तो नहीं है ? नहीं तो शिष्यों के बिना काम कैसे चलता है ? माना कि आज पैसे वाली जवान भैरवी आ जुटी है। मगर इतने दिनों कैसे चलता था ? मकान, मन्दिर, शिष्य, सेवा-पूजा, बाग बगीचा—सभी काम तो चल रहा है। शराब का दाम भी तो कम नहीं है और वह लड़की ही भला कितना पैसा लायी होगी ? क्या यह सभी एक आवरण नहीं है ? सचमुच वह करता क्या है ? वह कोई रिसीवर ऑफ स्टोलेन प्रापर्टी है या कोई स्याही ? या यह सचमुच साधु है ? पुलिस उसकी इतनी इज्जत क्यों करती है ? मुनाफे के लिए या भक्ति के कारण ?

मैं जितना सोचता उतना ही उत्तेजित होता।

और अन्त में जब मुझसे रहा नहीं गया तो एक दिन तीसरे पहर साधु के आश्रम की ओर चला गया। ऊँची दीवारों से घिरा एक तल्ला मकान है। बाहर से कुछ दिखाई नहीं देता। मन्दिर का शिखर और झण्डा भी मकान से कुछ दूर जाने पर दिखाई देता है। मेरा सन्देह और बढ़ गया। इस तरह जेलखाने की जैसी ऊँची दीवार बनाकर लोगों की नजरों से बचकर रहने का क्या उद्देश्य है ? साधु के आश्रम में ऐसा कौन सा अवांछनीय कार्य-कलाप हो सकता है, जिसमें आदमी की नजर पड़ने से बाधा पड़ जायेगी ? शराब और नारी संबंधी दुराचार की बात तो सब लोग जान ही गये हैं। तब जरूर कोई और भी कुकृत्य यहाँ छिपकर होता है, जो कोई देख ले या जान ले तो मुसीबत आ सकती है।

तीसरे पहर से शाम तक आश्रम के आस-पास चक्कर काटता रहा मगर न तो वह साधु, न तो उसकी सुन्दरी भैरवी और न उन लड़कों में से कोई एक बार भी बाहर आया न किसी ने दरवाजा खोला। शक्ल-सूरत में कौन कैसा है, सो भी न जान सका। दरवाजा धक्का देकर खुलवाने का साहस मुझे नहीं हुआ। देखकर सीखना

बुद्धिमानों का काम है। बेवकूफ लोग ठगे जाने पर सीखते हैं। तुलसी बाबू आदि की हालत देखकर ही मुझे शिक्षा मिल चुकी है।

मगर यह मालूम है कि हाट-बाजार के लिए भी तो जाते ही होंगे। सुना है कि साधु महाशय कभी-कभी दर्शन देने भी जाते हैं और बीच-बीच में अपनी भैरवी को साथ लेकर भी निकलते हैं। सोचा ऐसे ही मौके पर कभी भेंट हो ही जायेगी।

भोर होते ही फिर गया। खूब तड़के उठा था। आश्रम के पास जब पहुँचा तब भी पाँच बजने में देरी थी। दूर से देखा आश्रम के सामने ही एक ऊँचे से टीले पर साधु जी बैठे हैं। अपलक दृष्टि से नवालोकिक पूर्वाकाश की ओर देख रहे हैं। उनकी दृष्टि स्थिर है। साँथ ही शरीर भी निश्चल है मानों कोई निष्प्राण पाषाण की मूर्ति है। शायद इसी को योगासन कहते हैं। तो फिर ? यह तो कोई जादूगरी या विज्ञापन नहीं मालूम पड़ता। इतने तड़के निश्चय ही उन्होंने किसी दर्शनार्थी भक्त के आने की आशा न की होगी, जिसको दिखाने के लिए इस तरह बैठे होते। यहाँ के होटलों और टूरिस्ट लॉजों में कोई भी इतने सबरे नहीं उठता हाँ मगर मेरे आने की आशा हो तो और बात है। मगर तब तो यही समझना होगा कि वह कोई बड़े शक्तिशाली तपस्वी हैं।

खूब सावधान होकर, जिससे कोई आवाज न हो, धीरे-धीरे पैर उठाता मैं उनके पास बढ़ गया। साइड से मुँह ठीक से देख नहीं पा रहा था। इसलिए थोड़ा थमकर मैं एक कोने से उन्हें देखने लगा जिससे चेहरा देखकर कुछ समझ सकूँ। देखते ही एकबारगी चौंक उठा मैं।

यह चेहरा तो मेरा परिचित है। अच्छी तरह पहचाना हुआ। सत्रह-अठारह साल का समय कम न होने पर इतना ज्यादा नहीं होता कि इतनी भूल हो जाया। वही मुँह, वही दाढ़ी, माथे पर वही सिन्दूर की लम्बी रेखा जिसके बीच में सफेद चन्दन या मिट्टी का टीका—इसका क्या अर्थ है ? सो कई बार पूछने पर भी जान नहीं सका था। परिवर्तन खाली इतना है कि पहले सिर के बाल ऐसे ही बड़े और उलझे थे। और अब पीछे की ओर तीन-चार छोटी-बड़ी जटाएँ हो गयी हैं, काले कमा वे क्रोधी, बदमिजाज और शराबी तांत्रिक साधु और कोई नहीं, मेरे सुपरिचित संन्यासी ताराचन्द्र अवधूत थे।

○○○

सन् १९५० ई० में पश्चिम बंगाल से आकर वाराणसी में डेरा-डण्डा जमा लिया था संन्यासी ताराचन्द्र अवधूत ने। नगवा के आगे थोड़ी दूर पर गंगा किनारे काफी जगह घेरकर उनका आश्रम था। कच्ची मिट्टी की मोटी-मोटी दीवारों के बने बड़े-बड़े तीन-चार कमरे थे। आश्रम के चारों तरफ केले के दर्जनों पेड़ और असंख्य छोटे-बड़े पेड़-पौधे विभिन्न प्रकार के फूलों के थे। दो गायें भी थीं। वह कुछ प्राचीनकाल के तपोवन जैसा था।

धीरे-धीरे अवधूत महाशय के भक्तों और शिष्यों की संख्या अधिक हो गयी। ज्यादातर उनके शिष्य और भक्त बंगाली थे। कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर कलकत्ता,

बर्दवान, धनबाद और चौबीसपरगना से भी उनके सैकड़ों शिष्य और भक्तगण हर साल आते थे। फिर खूब भजन-कीर्तन होता और भण्डारा भी। देखते ही देखते साल-दो साल के भीतर वाराणसी और आस-पास के इलाकों में संन्यासी ताराचन्द्र अवधूत की ख्याति फैल गयी, विशेषकर त्रिकालदर्शी संन्यासी के रूप में।

अवधूत महाशय अत्यन्त मृदुभाषी और सरल स्वभाव के आदमी थे। जो कोई उन्हें बुलाता, उसके घर चले जाते। किसी तरह का भेदभाव नहीं रखते थे। कभी-कभी देखता था कि बड़े-बड़े व्यापारियों, रईसों और अफसरों की कीमती कारों में जा रहे हैं। कभी रिक्शों में किसी निम्न वित्त भक्तों के साथ बैठे उसके घर चले जा रहे हैं। किसी की बीमारी की खबर सुनकर पैदल ही उसे देखने चले जाते। इसके लिए दो-तीन मील पैदल चलना भी कष्टकारक या अपमानजनक नहीं लगता था मगर शहर के भीतर कोई उन्हें पैदल नहीं चलने देता था। उन्हें देखते ही रिक्शे वाले दौड़े आते और उन्हें रिक्शे पर बिठा लेते तथा किराया देने पर जीभ काटते हुए हाथ जोड़ देते।

अवश्य इसके कई कारण थे। सुना था कि तंत्र-मंत्र के अलावा अवधूत महाशय बहुत सी दवा-दारू और जड़ी-बूटी भी जानते हैं। जिनकी हैसियत डॉक्टर-वैद्य को दिखाने की नहीं होती थी ऐसे सभी लोग रोग-व्याधि होने पर उनके पास दौड़ जाते थे। प्रायः धनी-मानी और अफसर लोग भी उनकी चिकित्सा का यश सुनकर उनके पास आते थे। भयंकर से भयंकर रोगों तथा व्याधियों का निदान और इलाज तुरन्त कर देते थे। तांत्रिक क्रियाओं के जरिये भी अनेक प्रकार की भयानक व्याधियाँ और भूत-प्रेत आदि बाधाओं को भी यथाशीघ्र दूर कर दिया करते थे। यही सब उनकी प्रसिद्धि का कारण था।

एक बार स्थानीय समाचारपत्र में अवधूत महाशय का फोटोसहित विवरण छप गया जिसका परिणाम यह हुआ कि जो लोग अब तक अवधूत महाशय को नहीं जानते-समझते थे वे लोग भी उनसे भलीभाँति परिचित हो गये। भीड़-भाड़ बढ़ गयी। रोजाना सायंकाल कीर्तन-भजन होने लगा। हफ्ते में एकाध बार जमकर भण्डारा भी होने लगा। मैं उन दिनों तांत्रिक साधना में नारी का महत्व, विषय पर व्यक्तिगत रूप से खोज एवं शोधकार्य कर रहा था, साथ ही ऐसे तांत्रिक और साधकों की खोज में भी लगा रहता था, जो इस विषय के ज्ञाता थे। जब समाचारपत्र में अवधूत महाशय का विवरण पढ़ा तो दौड़ा-दौड़ा गया उनके आश्रम में। फिर तो रोजाना ही जाने लग गया मैं। काफी अच्छे लगते थे अवधूत महाशय मुझे। वे तब भी पागल जैसे थे। मगर एक सदाशय और सरल पागल। किसी प्रकार का नशा-वशा करते कभी नहीं देखा था मैंने उन्हें। मगर उस समय भी उनकी एक भैरवी थी—आरती। अत्यन्त सुन्दर, आकर्षक और विनम्र, स्वभाव भी सरल और मधुर। उम्र बस यही लगभग पच्चीस-तीस के करीब। कई प्रकार की तांत्रिक साधना जानती थी वह युवती भैरवी। आश्रम के एक कमरे में अवधूत महाशय ने काली की एक पाषाण मूर्ति भी स्थापित की थी। हर अमावस्या की महानिशा बेला में भैरवी को साथ लेकर कोई विशेष तांत्रिक क्रिया करते थे अवधूत महाशय। साधना के बाद भोर के समय विधिवत काली-पूजा करते। शराब वगैरह पीते

थे या नहीं, पता नहीं। मगर उस दिन निराहार रहकर अपने हाथों से पूजा की व्यवस्था करते थे। भोग भी स्वयं बनाते थे। इससे यही लगता था कि सब कुछ सात्विक भाव से ही करते थे महाशय। सबेरे कई बार प्रसाद लेने गया था। मगर कभी भी उन्हें नशे में नहीं देखा था। खैर।

जब संन्यासी ताराचन्द्र अवधूत को यह मालूम हुआ कि मैं तांत्रिक साहित्य और साधना पर विशेषरूप से शोध एवं अन्वेषण-कार्य कर रहा हूँ तो मुझमें अधिक रुचि लेने लग गये वे। उनकी भैरवी भी मेरा अधिक ख्याल रखने लग गयी। सच पूछा जाय तो अवधूत महाशय के भजन कीर्तन, पूजा-अर्चना और साधना आदि मेरी में कोई दिलचस्पी न थी। उनके व्यक्तित्व से भी मैं अधिक प्रभावित नहीं था। मैं तो तांत्रिक साधना के कुछ गूढ़ गोपनीय और रहस्यमय आयामों से परिचित होना चाहता था। इसी उद्देश्य से उनके आश्रम में जाया करता था।

○○○

तांत्रिक साधना-प्रसंग

एक दिन प्रसंगवश मेरे यह पूछने पर कि तंत्रशास्त्र और तांत्रिक साधना के संबंध में आपका क्या विचार है ? तो अवधूत महाशय थोड़ा गंभीर होकर बोले— तंत्रशास्त्र एक गंभीर और गहन शास्त्र है। इसकी जितनी भी साधनाएँ हैं वे भी अत्यन्त गूढ़, गोपनीय और रहस्यमयी हैं। तांत्रिक साधना का एकमात्र लक्ष्य है सामंजस्य-भाव की उपलब्धि। किन्तु बिना “आत्मतत्त्व” का ज्ञान हुए इस भाव की उपलब्धि संभव नहीं। कहने की आवश्यकता नहीं ‘आत्मतत्त्व’ के ज्ञान के मार्ग में अथवा आत्म-साक्षात्कार की दिशा में सबसे बड़ा बाधक है हमारा शरीर।

इसलिये इस बाधा का निवारण सर्वप्रथम आवश्यक है।

यह कैसे संभव है ? मैंने प्रश्न किया।

साधना से। अवधूत महाशय ने कहा—शरीर बाधक तो अवश्य है लेकिन उसकी साधना से जो उपलब्धियाँ होती हैं, उनका अपना मूल्य और महत्व है। उन्हीं के प्रकाश में साधक को ‘आत्म-साक्षात्कार’, ‘आत्मदर्शन’, अथवा ‘आत्मज्ञान’ होता है। सच बात तो यह है कि तांत्रिक साधना के दो मुख्य आधार हैं—पहला है शरीर, दूसरा है आत्मा। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो शरीर, आत्मा दो नहीं हैं। जब साधना-मार्ग पर साधक चलता है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीर, आत्मा का वह भाग है जो इन्द्रियों की पकड़ में आ जाता है और “आत्मा” शरीर का वह भाग है जो इन्द्रियों की पकड़ के बाहर रह जाता है मतलब यह है कि शरीर का जो अदृश्य छोर है वह आत्मा है और जो दृश्य छोर है वह है शरीर। तांत्रिक साधना इन्हीं दोनों छोरों की साधना है। थोड़ा रुककर अवधूत महाशय बोले—शरीर और आत्मा के बीच में ‘मन’ है। शरीर परतंत्र है। यह कभी भी स्वतंत्र नहीं हो सकता। मन भी परतंत्र है, लेकिन साधना से वह स्वतंत्र हो सकता है। तीसरी वस्तु है ‘आत्मा’। आत्मा पूर्ण स्वतंत्र है। वह कभी

भी परतंत्र नहीं हो सकती।

आत्मा एकाकी है। मन भी एकाकी है, लेकिन जहाँ तक शरीर का प्रश्न है, वह एकाकी नहीं है। उसकी संख्या सात है। पहला तो है स्थूल यानी भौतिक शरीर। शेष छः शरीरों के नाम हैं— भाव शरीर, सूक्ष्म शरीर, मनःशरीर, आत्म शरीर, ब्रह्म शरीर और निर्वाण शरीर। भौतिक शरीर में ये छः शरीर बीजरूप में विद्यमान रहते हैं। उन बीजों के अपने-अपने केन्द्र हैं, जिन्हें योगतंत्र की भाषा में 'चक्र' कहते हैं। प्रत्येक चक्र प्रत्येक शरीर का बीजकेन्द्र है।

शरीर की तरह उन चक्रों के भी अपने नाम होंगे ?

हाँ ! प्रत्येक चक्र का अपना नाम है। पहला है मूलाधार चक्र, जिसका संबंध भौतिक शरीर से है। शेष छः चक्र हैं—स्वाधिष्ठानचक्र, मणिपूरक चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्ध चक्र, आज्ञा चक्र, सहस्रार चक्र। इन चक्रों का संबंध क्रमशः भाव शरीर, सूक्ष्म शरीर, आत्म शरीर, ब्रह्म शरीर और निर्वाण शरीर से समझना चाहिये।

इन सातों शरीरों के अपने-अपने प्रकृतिप्रदत्त गुण हैं और प्रत्येक शरीर के विकास की संभावनाएँ भी अलग-अलग हैं।

कैसी सम्भावनाएँ, मैं समझा नहीं ?

प्रत्येक शरीर का संबंध जीवन के सात वर्ष से है। जीवन के पहले सात वर्ष में भौतिक शरीर विकसित होकर परिपक्व होता है। शेष शरीर बीज रूप में उस समय रहते हैं। जीवन के पहले सात वर्ष अनुकरण के वर्ष हैं। इस अवधि में कोई बुद्धि, कोई भावना, कोई कामना न जन्म लेती है और न विकसित होती है। विकसित होता है केवल मात्र भौतिक शरीर। कुछ लोग केवल भौतिक शरीर की सीमा में रह जाते हैं। ऐसे लोगों में और पशुओं में कोई अंतर नहीं होता। पशुओं के पास केवल भौतिक शरीर ही होता है। दूसरे शरीर अविकसित रहते हैं।

दूसरे सात वर्ष में भाव शरीर विकसित होकर परिपक्व होता है। इन चौदह वर्षों में मनुष्य को यौन परिपक्वता की उपलब्धि होती है। यह भाव शरीर का अत्यन्त प्रगाढ़ रूप है। यौन परिपक्वता यानी कामवासना ही नहीं बल्कि अन्य सभी वासनाओं का भी प्रगाढ़ रूप है भाव शरीर। इसलिए इसे वासना शरीर भी कहते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं, जो भाव शरीर की सीमा में ही बँधकर रह जाते हैं। भौतिक शरीर की वय तो बढ़ती जाती है उनकी कविता में, उनकी पुस्तक में, उनके चित्र में, यहाँ तक कि उनके रहन-सहन में भी कामवासना भरी होती है। उनका सब कुछ यौन अभिमुखी ही होता है।

इसी प्रकार जो लोग तीसरे सूक्ष्म शरीर के तल पर आकर ठहर जाते हैं, उनका सम्पूर्ण जीवन बौद्धिक चिन्तन और विचारों से भरा हुआ होता है। वे हमेशा बौद्धिक चिन्तन-मनन में डूबे रहते हैं। अपने विचारों में खोये रहते हैं। ऐसे लोग प्रायः विचारक और मनस्वी होते हैं।

इन तीनों शरीरों की जो अवस्थाएँ हैं वंह तंत्र के पशु-भाव के अन्तर्गत हैं। मतलब यह कि इसी को पशु-भाव कहते हैं। अब चौथे शरीर को लो। चौथा शरीर

मनः शरीर है। इस शरीर की अवस्थाएँ और सम्भावनाएँ 'वीर भाव' के अन्तर्गत हैं।

यह मनःशरीर अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके एक ओर तो भौतिक शरीर और भाव शरीर तथा सूक्ष्म शरीर है। दूसरी ओर है—आत्म शरीर, ब्रह्म शरीर और निर्वाण शरीर। मनःशरीर को "साइकिक बाडी" भी कहते हैं। इस शरीर की बड़ी सम्भावनाएँ हैं। जिन लोगों का मनः शरीर पूर्ण विकसित, पूर्ण परिपक्व होता है और जो लोग मनः शरीर के तल पर आकर ठहर जाते हैं वे बिना समय और स्थान की बाधा के दूसरे से संबंधित हो सकते हैं। बिना बोले, बिना भाव व्यक्त किये दूसरे के विचार जान-समझ सकते हैं और अपने विचार तथा भाव को दूसरे तक पहुँचा सकते हैं। अपने भौतिक शरीर के बाहर यात्रा कर सकते हैं। इच्छानुसार भ्रमण कर सकते हैं। सच्चे अर्थों में योग और तन्त्र की वास्तविक साधना इसी शरीर से शुरू होती है। उच्चकोटि के योगी और साधक प्रायः इसी शरीर में निवास करते हैं और अपनी जीवन-यात्रा पूरी करते हैं। उनकी दृष्टि में पिछले तीनों शरीरों का कोई मूल्य और महत्व नहीं है।

मनः शरीर ऐसे स्थान पर है, जिसके एक ओर तो वस्तुपरक जगत की सत्ता है और दूसरी ओर है आत्मपरक सत्ता लेकिन उनके पास केवल दो ही शरीर रहते हैं। पहले शरीर पर रुके हुए लोग अनुकरणप्रिय होते हैं। इसी प्रकार दूसरे शरीर पर ठहरे हुए लोग वासनाप्रिय होते हैं।

तीसरे सात वर्ष में तीसरा शरीर—सूक्ष्म शरीर विकसित होकर परिपक्व होता है। इस २१ वर्ष की वय में मनुष्य के तर्क, बुद्धि और विचार का विकास होता है। अपनी शिक्षा-संस्कृति और सभ्यता के अनुसार जिन लोगों के तर्क, बुद्धि एवं विचारों का विकास हुआ रहता है वे लोग अनुकरण और वासना, कामना, भावना आदि को कोई महत्व नहीं देते। वे महत्व देते हैं तर्क को, बुद्धि को और विचारों को। कहने की आवश्यकता नहीं, प्रायः लोग बस इन्हीं तीनों शरीरों में से एक शरीर की सीमा में बँधे रहकर अपना जीवन समाप्त कर देते हैं। उसके आगे नहीं बढ़ पाते।

तुमने तंत्रशास्त्र के अध्ययन-काल में यह अवश्य जाना होगा कि साधना क्रम के अन्तर्गत तीन भाव हैं—पशु भाव, वीर भाव और दिव्य भाव।

हाँ ! पढ़ा तो है। मगर ठीक से समझा नहीं है। जानना एक बात है और समझना दूसरी बात है। दोनों में बड़ा फर्क है।

उन तीनों भावों का संबंध उन सातों शरीरों की अवस्थाओं से ही है। आगे समझ में आ जाएगा तुम्हारे! तुमको पहले यह मालूम होना चाहिए कि मनुष्य के जिस शरीर का विकास होता है उस शरीर के अनन्त आयाम उसके लिए खुल जाते हैं।

जिस व्यक्ति का भाव शरीर विकसित नहीं हुआ है और जो केवल भौतिक शरीर के तल पर ठहर गया है—ऐसे व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन रस, खान-पान में ही व्यतीत हो जाता है क्योंकि ऐसे लोग मात्र भोजन को महत्व देते हैं। जीभ ही उनकी संस्कृति होती है।

जो लोग भाव शरीर के तल पर आकर ठहर जाते हैं उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व यौन-केन्द्रित हो जाता है। उनके विचारों में, उनके भावों में, और उनके समस्त

कार्यकलापों में एकमात्र वासना की ही झलक रहती है। मनुष्य का पहलें तीन शरीर वस्तुपरक जगत के अन्तर्गत हैं और बाद का तीन शरीर है—आत्मपरक जगत के अन्तर्गत। पहला जगत प्रत्यक्ष प्रमाण पर आधारित अथवा निर्भर है लेकिन दूसरा जो आत्मपरक जगत है उसमें सिवाय आन्तरिक अनुभूतियों के और कुछ नहीं है तथा उन अनुभूतियों का प्रमाण स्वयं साधक अथवा मनः शरीर के तल पर पहुँचा व्यक्ति ही होता है। यह शरीर चौथे सात वर्ष में विकसित और परिपक्व होता है। मगर बहुत कम लोगों का ही मनः शरीर विकसित और परिपक्व हो पाता है।

क्यों ? मैंने प्रश्न किया।

इसलिए कि बिना योग अथवा तंत्र-साधना के मनः शरीर का न विकास होता है और न तो उसमें परिपक्वता ही आती है। जैसा कि मैं संकेत कर चुका हूँ, योग-तंत्रपरक जितनी भी सिद्धियाँ हैं वे सब इसी मनः शरीर की एकमात्र उपलब्धियाँ हैं। यहाँ यह बतला दूँ कि मनः शरीर अत्यन्त कोमल और तत्काल प्रभावित होने वाला शरीर है। विशेषकर शराब से वह तत्काल प्रभावित हो जाता है। इस प्रसंग में तुम्हें यह भी जान लेना चाहिए कि योगी अपनी साधना की दृष्टि से मनः शरीर में परतंत्र है।

वह जब तक अगले शरीर को उपलब्ध नहीं हो जाता तब तक वह मनःशरीर की सीमा में बँधा रहता है। हर समय और हर अवस्था में वह मनः शरीर में ही स्थित रहता है मगर एक तंत्रसाधक के लिए ऐसी कोई परतंत्रता नहीं है। मनः शरीर उसके लिए बंधन नहीं है वह जब तक चाहे भौतिक शरीर, भाव शरीर अथवा सूक्ष्म शरीर में रह सकता है। जब चाहे अपने मनः शरीर का उपयोग, प्रयोग कर सकता है। लेकिन मनः शरीर में उपस्थित होने और उससे काम लेने के लिए उसे प्रभावित करना आवश्यक होता है। तंत्रसाधकों के पास अपने मनःशरीर को प्रभावित करने का एक ही साधन है और वह है शराब। विशेष तांत्रिक-क्रिया की सहायता से मदिरापान करने पर साधक अपने मनःशरीर में प्रवेश कर जाता है और उसके सामने मनः शरीर के सभी आयाम प्रकट हो जाते हैं और सारी सम्भावनाएँ भी। ऐसी स्थिति में उसके लिए सब कुछ सम्भव हो जाता है। खैर,!

पाँचवा शरीर है आत्म शरीर। पाँचवें सात वर्ष में इस शरीर का विकास और परिपक्वता संभव है। लेकिन तभी जबकि मनः शरीर पूर्ण विकसित और पूर्ण परिपक्व हुआ रहता है। “आत्म शरीर” को ही “आध्यात्म शरीर” भी कहते हैं। ३५ वर्ष की उम्र तक ठीक ढंग से जीवन का विकास हो जाय तो “आत्म शरीर” की उपलब्धि संभव है। साधक अथवा योगी को इसी शरीर में आत्मज्ञान, आत्मानुभव और “आत्मसाक्षात्कार” होता है। जब तक यह शरीर प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक “आत्मा” के विषय में चर्चा करना व्यर्थ है, क्योंकि “आत्मा” हमारा अनुभव नहीं है। अनुभव के पूर्व हमारे लिए वह एकमात्र चर्चा का विषय है। तबतक “आत्मा” के पीछे कोई सार वस्तु नहीं है। जब हम कहते हैं— “आत्मा” तो उसके पीछे कुछ नहीं होता—केवल होता है, शब्दमात्र।

छठवाँ है—ब्रह्म शरीर। आत्मशरीर में आत्मज्ञान, आत्मसाक्षात्कार अथवा

आत्मानुभव होने पर ही इस शरीर की उपलब्धि संभव है। इसके विकास और परिपक्वता की सम्भावनाएँ ४२ वर्ष की अवस्था तक हैं। “ब्रह्म शरीर” की सबसे बड़ी उपलब्धि है—अहं ब्रह्मास्मि। जब तक हम इस शरीर को प्राप्त नहीं हो जाते हैं तब तक “आत्मा” की तरह “अहं ब्रह्मास्मि” भी हमारे लिए केवल शब्दमात्र ही है जिसके पीछे कोई सार तत्व नहीं।

सातवाँ शरीर है—“निर्वाण शरीर”। इसका विकास ४९ वर्ष की अवस्था में हो जाना चाहिए। “निर्वाण शरीर” कोई शरीर नहीं है। वह “बॉडीलेसनेस” यानी देहशून्यता की स्थिति है। वह परम अवस्था है। वहाँ परम शून्य के सिवाय और कुछ नहीं है। वहाँ ब्रह्म भी शेष नहीं है। वहाँ कुछ भी शेष नहीं है। वहाँ सब समाप्त है। “निर्वाण” शब्द का बस इतना अर्थ है—“दीपक का बुझ जाना।” जलते हुए दीपक की ज्योति बुझ जाने पर कहाँ विलीन हो जाती है ? यह बतला सकना कठिन है। इसी को कहते हैं—“निर्वाण”। और कहते हैं “परम शून्य” की अवस्था।

इस सन्दर्भ में अवधूत महाशय ने एक अति महत्वपूर्ण बात बतलायी मुझे। उन्होंने कहा—प्रथम चार शरीर तक स्त्री और पुरुष के मध्यअन्तर है। उसके बाद किसी भी प्रकार का लैंगिक भेद नहीं रह जाता।

पुरुष का सभी शरीर पुरुष का नहीं होता। इसी प्रकार स्त्री का भी सभी शरीर “स्त्री” का नहीं होता। जैसे कोई पुरुष है तो उसका पहला शरीर यानी भौतिक शरीर पुरुष शरीर होता है। उसके पीछे वाला भाव शरीर स्त्री शरीर होता है क्योंकि ऋणात्मक ध्रुव बिना धनात्मक के और धनात्मक ध्रुव बिना ऋणात्मक ध्रुव के क्रियाशील नहीं हो सकता। विज्ञान की भाषा में पुरुष का शरीर धनात्मक (धन) है और स्त्री का ऋणात्मक (ऋण) है। स्त्री का प्रथम शरीर भौतिक शरीर ऋणात्मक होता है। उसके पीछे वाला शरीर पुरुष का होता है इसलिए वह धनात्मक होता है। प्रथम शरीर ऋणात्मक होने के कारण ही स्त्री किसी भी कार्य में आक्रामक नहीं होती। यहाँ तक कि कामवासना के मामले में भी। वह पुरुष पर बलात्कार नहीं कर सकती। हाँ, बलात्कार के आक्रमण अपने ऊपर झेल अवश्य सकती है।

लेकिन पुरुष का पहला शरीर “धनात्मक” है। इसीलिए वह स्त्री की बिना इच्छा के, बिना उसके आमंत्रण के उसके साथ बहुत कुछ कर सकता है, क्योंकि उसके पास आक्रमण करने वाला शरीर है। ऋणात्मक का मतलब शून्य अथवा अभाव नहीं है। विज्ञान की भाषा में ऋणात्मक का मतलब होता है संग्राहक यानी संग्रह करने वाला। अतः स्त्री का जो पहला शरीर ऋणात्मक है उसमें संग्रह करने का गुण विद्यमान होने के कारण उसमें एक विशेष प्रकार की शक्ति संरक्षित अथवा संगृहीत रहती है हमेशा। मगर वह शक्ति सक्रिय नहीं बल्कि निष्क्रिय रहती है। यही मूल कारण है कि कुछ भी सृजन नहीं कर पाती, किसी वस्तु का मौलिक निर्माण भी नहीं करा पाती। कोई नयी खोज भी नहीं कर पाती। क्योंकि सृजन, निर्माण और खोज के लिए आक्रामक होना आवश्यक है। स्त्रियाँ केवल प्रतीक्षा कर सकती हैं। प्रतीक्षा के अलावा उनके पास कुछ नहीं है।

जहाँ धनात्मक है वहाँ ऋणात्मक का होना भी आवश्यक है, तभी पूरा वृत्त बन

सकता है वरना नहीं। पुरुष का पहला शरीर धनात्मक है, तो उसका दूसरा शरीर ऋणात्मक है। इसी प्रकार स्त्री का पहला शरीर ऋणात्मक है, तो दूसरा शरीर धनात्मक है। स्त्री और पुरुष के अपने ये दोनों शरीर मिलकर एक विशेष प्रकार के विद्युत चुम्बकीय वृत्त का निर्माण करते हैं, जिसके फलस्वरूप जीवन का निर्माण होकर उसमें गति पैदा होती है, यही स्थिति स्त्री और पुरुष के अगले दो शरीरों की है। पुरुष का तीसरा शरीर फिर पुरुष का और चौथा शरीर फिर स्त्री होता है। इसी प्रकार तीसरा शरीर स्त्री का और चौथा शरीर फिर पुरुष का होता है। कहने की आवश्यकता नहीं, तांत्रिक गुह्य साधना भूमि में स्त्री-पुरुष के ऋणात्मक और धनात्मक शरीरों के समन्वय से उत्पन्न विद्युत चुम्बकीय शक्ति का भारी महत्व और उपयोग है।

प्रथम—पुरुष के धनात्मक शरीर और स्त्री के ऋणात्मक शरीर के संयोग से उत्पन्न शक्ति का साधना में कोई उपयोग नहीं है। उस शक्ति के फलस्वरूप केवल सृष्टि ही संभव है, क्योंकि वह मात्र वासनात्मक संयोग है।

दूसरे—पुरुष के ऋणात्मक शरीर और स्त्री के धनात्मक शरीर के संयोग से उत्पन्न शक्ति ही तांत्रिक साधना को प्राणवान और सक्रिय बनाती है। तांत्रिक मंत्रों का जागरण और तांत्रिक मंत्रों में काम करने की क्षमता इसी शक्ति से उत्पन्न होती है।

तीसरे—पुरुष के धनात्मक शरीर और स्त्री के ऋणात्मक शरीर से उत्पन्न शक्ति भाव राज्य से संबंध स्थापित कर वहाँ की आत्माओं को आकृष्ट करती है। वे आत्माएँ साधक के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्यों में सहायक सिद्ध होती हैं।

इसी प्रकार चौथे पुरुष के ऋणात्मक शरीर और स्त्री के धनात्मक शरीर के संयोग से उत्पन्न विद्युत चुम्बकीय शक्ति दैवी राज्य की मानवेतर शक्तिसम्पन्न दिव्य आत्माओं को आकर्षित करती है। ये दिव्य आत्माएँ साधक के लिए विशेषकर आध्यात्मिक क्षेत्र में बड़ी सहयोगी सिद्ध होती हैं। मगर उस शक्ति को प्राप्त करना अत्यंत कठिन है। बिरले को ही उपलब्ध होती है यह शक्ति। जिन्हें प्राप्त हो जाती है यह शक्ति उसके लिए एक विशेष सीमा तक कुछ भी असंभव नहीं। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि शक्ति के समष्टि रूप के ही ये चारों शक्तियाँ व्यष्टि रूप हैं। एक प्रकार से हम इन्हें क्रम से अपरा, परा-परा, परा और परमा शक्ति कह सकते हैं। इतना कहकर अवधूत महाशय मौन हो गये और आकाश की ओर शून्य में अपलक निहारने लगे। साँझ की स्याह कालिमा धीरे-धीरे फैल चुकी थी चारों ओर। सहसा अवधूत महाशय अपने स्थान से उठे और खड़ाऊँ पर खट्-खट चलते हुए अपने साधना-कक्ष में घुस गये। शायद उनकी पूजा-आरती का समय हो गया था।

○○○

संन्यासी ताराचन्द्र अवधूत ने तंत्र के जिस गूढ़ तथ्य का जिस प्रकार वैज्ञानिक विवेचन किया था उसे सुनकर एकबारगी दंग रह गया मैं। वे तंत्र के रहस्यमय गूढ़ विषयों के इतने बड़े ज्ञाता भी होंगे, इसकी कल्पना मैंने सपने में भी नहीं की थी। उसी प्रसंग के सिलसिले में अवधूत महाशय ने आगे बतलाया कि प्रत्येक शरीर की दो सम्भावनाएँ हैं। पहली है प्रकृतिप्रदत्त सम्भावना। और दूसरी साधनाप्रदत्त सम्भावना।

जब तक प्रकृतिप्रदत्त सम्भावनाओं का रूपान्तरण साधनप्रदत्त सम्भावनाओं में नहीं हो जाता? तबतक “आत्मज्ञान” और “आत्मतत्व” की उपलब्धि “आत्मसाक्षात्कार” आदि संभव नहीं।

वह रूपान्तर कैसे होता है। मैंने पूछा ?

साधना से। प्रत्येक शरीर की साधना है। साधना के बल पर वह रूपान्तरण होता है। जैसा कि मैं बतला चुका हूँ, प्रत्येक शरीर का अपना चक्र यानी बीज केन्द्र है। शरीर यदि साधना है, तो चक्र में निहित बीजतत्व साध्य वस्तु है। साधक, साधन और साध्य इन तीनों का एकीकरण होने पर वह रूपान्तरण सम्भव है।

पहला भौतिक शरीर है, इसका चक्र है “स्वाधिष्ठान चक्र इस चक्र की प्रकृतिप्रदत्त संभावना है—कामवासना। क्योंकि कामवासना से ही भौतिक शरीर का निर्माण होता है।

इसकी दूसरी संभावना है—“ब्रह्मचर्य” जो स्वाधिष्ठान चक्र भेदन की साधना से उपलब्ध होता है। ब्रह्मचर्य साधना प्रदत्त संभावना है।

दूसरा है—भाव शरीर। इसका चक्र है “मूलाधार चक्र”। इसकी प्रकृतिप्रदत्त संभावना है—भय, घृणा, क्रोध और हिंसा। ये चारो भाव शरीर के प्रकृतिप्रदत्त गुण हैं। इसकी दूसरी संभावना है—अभय, प्रेम, क्षमा और अहिंसा, जो मूलाधार चक्र के भेदन की साधन से उपलब्ध होता है। अभय, प्रेम, क्षमा और अहिंसा—साधनाप्रदत्त संभावना है।

तीसरा शरीर है—सूक्ष्म शरीर। इससे संबंधित चक्र है “मणिपूरक चक्र”। इस चक्र की प्रकृतिप्रदत्त संभावना है—सन्देह और विचार। ये दोनों सूक्ष्म शरीर के प्राकृतिक गुण हैं। इस चक्र की दूसरी संभावना है—श्रद्धा और विवेक, जो मणिपूरक चक्र के भेदन से उपलब्ध होता है। श्रद्धा और विवेक साधनाप्रदत्त संभावना है। चौथा है—मनःशरीर। इससे संबंधित चक्र है—अनाहतचक्र। इस चक्र की प्रकृतिप्रदत्त संभावना है—कल्पना और स्वप्न। इसकी दूसरी संभावनाएँ हैं—संकल्प और अतीन्द्रिय दर्शन जो अनाहतचक्र के भेदन से उपलब्ध होता है। संकल्प और अतीन्द्रिय दर्शन अथवा ज्ञान, साधनाप्रदत्त संभावना है।

कहने की आवश्यकता नहीं, इन चारों शरीर तक स्त्री और पुरुष का भेद है। और इन चारों शरीरों से संबंधित चक्रों तक है द्वैत भाव। इसके बाद पाँचवाँ शरीर है—“आत्म शरीर”। इस शरीर का चक्र “विशुद्ध चक्र” है। इस चक्र का भेदन होने पर द्वैत भाव तथा स्त्री-पुरुष का भेद समाप्त हो जाता है और उसी के साथ-साथ समाप्त हो जाती है “आत्ममूर्च्छा” भी। आत्ममूर्च्छा से जागृत होते ही “मैं कौन हूँ ?” का उत्तर साधक को स्वयं अपने आप मिल जाता है। आत्म शरीर अत्यंत तृप्तिदायी और आनन्दपूर्ण है। इस शरीर में अहंकार तो मिट जाता है लेकिन “अस्मिता” रह जाती है।

छठवाँ ब्रह्म शरीर है। उसका चक्र है—“आज्ञाचक्र”। इस चक्र की एक ही संभावना है—स्व का खो जाना और सर्व का हो जाना। जिस प्रकार पाँचवें शरीर में

आनन्द का अनुभव प्रगाढ़ होता है उसी प्रकार ब्रह्म शरीर पर “अस्तित्व” का अनुभव प्रगाढ़ होता है। “आज्ञाचक्र” के भेदन की सबसे बड़ी उपलब्धि है—दिव्यदृष्टि। यानी शिव के तीसरे नेत्र का खुलना। जो लोग इस शरीर को उपलब्ध होते हैं, वे दिव्य दृष्टिसम्पन्न होने के कारण त्रिकाल का ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्माण्ड का ज्ञान रखते हैं।

सातवाँ शरीर है—निर्वाण शरीर। इससे संबंधित चक्र है—सहस्रार चक्र। इस चक्र की संभावना भी एक ही है, वह है—अस्तित्व से अनस्तित्व में प्रवेश। वस्तुतः निर्वाण काया का मतलब है—“शून्य काया”। जहाँ हम होने से न होने में छलाँग लगा देते हैं। “न होना क्या है ? मिट जाना क्या है ? इसलिए सातवाँ शरीर जो है—वह “महामृत्यु” के सिवाय और कुछ नहीं है।

कहने की आवश्यकता नहीं, इस प्रकार तन्त्र के अनेक गूढ़, गोपनीय और रहस्यमय विषयों को अपने ढंग से अवधूत महाशय ने स्पष्ट किया था, जिससे स्पष्ट रूप से यही प्रतीत होता था कि वे तांत्रिक साधना-मार्ग के पूर्ण अनुभवी हैं।

मैं प्रायः दिनभर आश्रम में ही रहने लगा। बड़े आनन्द की अनुभूति होती मुझे अवधूत महाशय के सान्निध्य में। मैं भी अब उनके भक्तों में गिना जाने लगा था। उसके बाद पता नहीं कैसे ?—मानों एक बड़ी प्राकृतिक दुर्घटना ने सब उलट-पलट कर दिया। मुझे एक अति आवश्यक कार्य से कलकत्ता जाना पड़ गया दस-पन्द्रह दिनों के लिए और जब वापस लौटा और लौटने पर जो समाचार मुझे मिला उसे सुनकर एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं। मस्तिष्क झनझना उठा मेरा। काफी देर तक दोनों हाथों से सिर थामे बैठा रहा मैं। सुनने में आया कि एक रात पुलिस ने आश्रम को चारों ओर से घेर लिया था। आश्रम की तलाशी ली और तलाशी में ढेर सारे जाली नोट पाये गये थे। सौ-सौ के नोट में पूरे एक लाख रुपये थे। तुरन्त गिरफ्तार कर लिये गये बाबा जी। हाथों में हथकड़ी डालकर उन्हें थाने ले गयी पुलिस। दो दिन हवालात में बन्द रहे महाशय। काफी मार भी पड़ी थी उनपर। फिर जेल भेज दिया गया उन्हें। उसके बाद पता नहीं क्या हुआ ? उनकी भैरवी आरती कहाँ गयी इसका भी पता नहीं चला। पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ। लगा था कि कहीं कोई बड़ी भारी भूल हो रही है। मगर जब यह सुनने में आया कि पुलिस बाबा जी पर जालसाजी का केस चलाने वाली है और आरती को भी खोज रही है तब मैं दुविधा में पड़ गया। तो क्या यह सब सच है ? नहीं, तो वे छूटे क्यों नहीं ? उनकी जमानत किसी ने क्यों नहीं की ? आरती को पुलिस क्यों खोज रही है ? साधु के आश्रम में इतने जाली नोट आये कहाँ से ? उनकी भैरवी भी उन्हें भाग्य के भरोसे छोड़कर क्यों चुपचाप खिसक गयी ? तत्त्वज्ञान और अध्यात्म की इतनी ऊँची बातें करने वाले साधु महाराज का यह भी रूप देखने को मिलेगा मुझे, इसकी सपने में भी कल्पना नहीं की थी मैंने। तभी मुझे याद हो आयी उस रात की एक अनोखी और विचित्र घटना।

कार्तिक का महीना था, शुक्ल पक्ष की चाँदनी रात थी। आश्रम के वातावरण में एक अनिर्वर्चनीय शान्ति व्याप्त थी। उस दिन अवधूत महाशय नहीं थे। अपने परम

भक्त निमाई बाबू के साथ कहीं गये हुए थे सबेरे से ही। आश्रम में उस समय केवल आरती थी। आश्रम के सामने लगे कदम्ब एवं पारिजात के पेड़ों के नीचे बैठे हम और आरती “स्पर्शदीक्षा” पर आध्यात्मिक चर्चा कर रहे थे। प्रसंगवश मैंने आरती से पूछा— क्या एक योगी या साधक अपने स्पर्श से किसी को किसी प्रकार का पारलौकिक अनुभव करा सकता है ?

हाँ, क्यों नहीं ? आरती ने कहा। फिर क्षण भर रुककर बोली वह—क्या आप इस प्रकार का कोई अनुभव चाहते हैं ?

मैंने सिर हिला कर कहा—हाँ।

और तभी मुझे अपने सिर पर आरती के हाथ के स्पर्श का अनुभव हुआ। स्पर्श का अनुभव होते ही मेरी बाह्य चेतना एकबारगी लुप्त हो गयी और फिर किसी अज्ञात प्रदेश में धीरे-धीरे प्रवेश करता चला गया मेरा अस्तित्व। उस अज्ञात प्रदेश में गहरी नीरवता और गहरी निस्तब्धता छायी हुई थी। शून्य के सिवाय वहाँ और कुछ नहीं था। सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह थी कि उस स्थिति में मैं अपने पार्थिव शरीर को कदम्ब के नीचे बैठा हुआ देख रहा था। उस समय मैं किस शरीर में था, यह तो बतला नहीं सकता। मगर उस शरीर में मुझे एक अति विलक्षण शान्ति का अनुभव हो रहा था, एक ऐसी अनिर्वचनीय शान्ति का अनुभव जिसे मैं शब्दरूप नहीं दे सकूँगा। निश्चय ही वह कोई उच्च कोटि की आध्यात्मिक अनुभूति थी, इसमें सन्देह नहीं।

क्या वह सब भी धोखा था ? फरेब था ? नहीं-नहीं ऐसा कुछ नहीं था। उस परानुभूति को मेरी अन्तरात्मा झुठलाने को तैयार नहीं हो रही थी। उसे धोखा या फरेब मानने को तैयार नहीं हो रही थी। तो फिर ? खूब कष्ट भी हुआ था। साथ ही अपनी बुद्धि और विचार-शक्ति के प्रति आस्था भी बहुत कम हो गयी थी। हम लोग वास्तव में किसी मनुष्य को नहीं पहचानते। किसी के भीतर क्या है सो शायद भगवान ही जानते हैं। समय के साथ मैं भी अध्ययन-अध्यापन में डूबता चला गया। परिणामस्वरूप साधु कौन थे ? भैरवी कौन थी ? उन दोनों का अंजाम क्या हुआ ? उसे मैं धीरे-धीरे भूल गया।

उसके बाद अब यह अट्टारह वर्ष के बाद भेंट हुई है। वही सदा आनन्दमय परोपकारी सरल साधु जी यहाँ आकर एक भयंकर शराबी और बदमिजाज तांत्रिक के रूप में परिणत हो गये। शायद जेल से छूटकर यहाँ आ छिपे हैं। यह बस कुछ छद्म वेश है। खूब मजे में है। देखता हूँ कि इन्हीं सब पाखंडियों और ढोंगियों के पास दुनिया भर के भक्त और चेले आकर जुट जाते हैं। इन्हें रुपये-पैसे का भी अभाव नहीं होता। मगर एक समस्या फिर भी रह जाती है। जेल से ये महाशय छूटे कब ?

कल ही तो भवानी बाबू कह रहे थे कि साधु जी लगभग सत्रह-अट्टारह साल से यहाँ रह रहे हैं। हिसाब करके देखा पूरे अट्टारह साल हुए, जब उनसे मेरी अन्तिम भेंट हुई थी। ...तो वे क्या अन्त में छूट ही गये थे। क्या पुलिस केस न कर सकी थी ? तब भी ससम्मान आश्रम में वापस लौट जाना चाहिए था। यहाँ आकर क्यों जम

गये महोदय ? स्मृति और चिन्ता का विषय तथा विवरण कागज पर लिखने में बहुत समय लगता है। मन के भीतर वह क्षणभर में पूरा हो जाता है। सामने आकर विस्मय और आश्चर्य का धक्का सँभाल पाने के पहले ही उन्होंने आँखें खोलकर देखा नहीं, आँखें तो खुली ही थीं। केवल नजर मेरी तरफ घूम गयी।

मेरी ओर घूमकर सस्नेह और सहज भाव से बोले— “अरे शर्मा बाबू आओ, आओ ... मैं जानता हूँ कि तू पिछले शुक्रवार को आया है। नहीं, नहीं। योगबल से नहीं। तू कल रात को जब आ रहा था तभी मैंने देख लिया था। सोच रहा था कि तू इस शराबी, गँजेड़ी और बदमिजाज साधु को देखने एक बार अवश्य आयेगा। नहीं तो एक दिन बुलवा ही लूँगा। मैं पहले ही खबर भेजता। मगर मैंने किसी को भेंट करने के लिए बुलाया यह सुनकर ऐसा शोरगुल शुरू हो जाता कि तू भी त्राहि-त्राहि कर उठता। अच्छा चल भीतर चलें। जालसाज, पाखंडी और फरेबी साधु के आश्रम में जाने से तुझे घृणा तो नहीं होगी ? यह कहकर वे धीरे से हँसे। वही अभ्यस्त मीठी हँसी और वही सरल भाव। शराबीपन का कहीं कोई चिह्न तक नहीं था। बदमिजाजी तक की कहीं गंध नहीं थी। बात मजाक में कही थी या सत्य थी, समझ में नहीं आया। जो भी हो, इस सीधे आक्रमण से मेरा झंपना ही स्वाभाविक था। वही हुआ। हँसूँ या अफसोस करूँ या प्रतिवाद करूँ। सो ठीक न समझकर बेवकूफ की तरह जरा सा हंसकर मैंने कहा यहीं बैठे न। खूब एकान्त है यहाँ। उन्होंने तुरन्त गर्दन हिलाकर कहा— “अच्छी बात है यहीं बैठें। एक घण्टे के पहले होटल में किसी की नींद नहीं टूटेगी। चैंजर बाबू लोग भी नहीं उठेंगे। तबतक बातें हो लेंगी। ...तेरे पेट में तो अभी चाय भी न पड़ी होगी। शायद चाय मिलेगी तुझे जरा सब्र करा। भैरवी से तेरी बात कर रखी है। वह निश्चय ही तुझे पहचान गयी है कि तू वही है। अभी चाय भेजेगी।

किस भैरवी की बात आप कह रहे हैं ?— क्या आरती की ? मैंने कौतूहल वश पूछा।

हाँ-हाँ, उसी भैरवी की बात कर रहा हूँ। आरती के सिवाय भला कौन मेरी हो सकती भैरवी। अब तो वह साधना-मार्ग में काफी आगे भी बढ़ गयी है। पूरे चौबीस घंटे की समाधि लगाती है वह। आरती भी यही है। उससे भी भेंट होगी। भीतर ही भीतर खूब प्रसन्न हुआ मैं।

पाँच मिनट बाद ही अट्टारह-बीस वर्ष का अति सुन्दर लड़का नंगे बदन पर शुभ्र जनेऊ पड़ा था इसलिए ब्राह्मण समझने में दिक्कत नहीं हुई। आकर एक सुन्दर-सी ट्रे में चाय का सामान रख गया। मैंने समझ लिया कि यह वही लड़का है, जो घर से भागकर आया है। ऐसा लड़का घर-बार छोड़कर बिना वेतन के नौकर का काम कर रहा है। माँ-बाप के पागल हो जाने की बात है।

चाय का सामान भी कैसा ? कीमती सुगंधित चाय थी। साथ में कुछ नमकीन भी। मगर कप एक ही था। लड़के से मैं यह बात करने ही जा रहा था कि याद आया कि अवधूत महाशय चाय नहीं पीते। कम से कम पहले तो नहीं ही पीते थे। तब भी मैंने एक बार पूछा—“आप चाय नहीं पीयेंगे ? अब भी नहीं पीते क्या ?” अवधूत

महाशय मुस्कराए। बोले— “जानते नहीं, भयंकर तांत्रिक हूँ। पिशाच-सिद्धि है मुझे। दिन-रात शराब के नशे में डूबा रहता हूँ। सुना नहीं तूने ? चाय क्या पीयूँगा ? तू पी। तूने शायद सुना होगा कि साधु चाय पीता है। चाय का खूब शौक है उसे। कलकत्ता से खूब बढ़िया चाय मंगवाता है।” फिर थोड़ा रुककर उन्होंने पूछा— “बता आजकल करता क्या है तू ?”

“करूँगा क्या ?” हँसकर मैंने कहा— “वही खोज, शोध और लेखन-कार्य कर रहा हूँ, योगतंत्र पर। आजकल तांत्रिक साधना में नारी का महत्व और उपयोग विषय पर एक पुस्तक लिख रहा हूँ। उसी को पूरा करने इस एकान्त स्थान में आया हूँ।”

“अच्छा-अच्छा। समझा वही पुराना रोग पाल रखा है तूने अभी भी। चलो ठीक हैं। भैरवी तेरी सहायता करेगी इस व्यापार में।” इतना कहकर फिर हठात् बोले— “हाँ रे। निमाई के घर वाले कैसे हैं ? जानता है तू ? कोई अच्छा काम निमाई को मिला है ? व्याह किया है उसने ?”

“निमाई। कौन निमाई ?” क्षणभर के लिए मैं कुछ आश्चर्य में पड़ गया। जिसके साथ वे कई दिनों तक लापता थे, वही निमाई। बनारस के बंगाली टोला मुहल्ले में रहता था। साधारण गृहस्थ परिवार का था वह। घर में माता-पिता थे। कई भाई-बहन थे। काफी बड़ा परिवार था। आमदनी का जरिया सिर्फ एक मारवाड़ी की गद्दी की नौकरी। साधारण वेतन। इसीलिए चालीस के करीब उम्र हो जाने पर भी भाई, बहन के कारण उसने व्याह नहीं किया था। इस आदमी को अच्छी तरह याद रखने का कारण यह है कि मैंने माता-पिता के प्रति ऐसी भक्ति और किसी में नहीं देखी। रोज सबेरे माता-पिता को प्रणाम कर सूर्य को नमस्कार करता और भगवान का नाम घंटों जपता था मृगचर्म के आसन पर बैठकर। जब उसके पिता को “कैंसर” हुआ तो इतनी उम्रवाला व्यक्ति कैसा फूट-फूटकर रोया था बच्चों की तरह। जमीन थोड़ी ही थी मगर पिता की चिकित्सा के लिए निमाई कैसा पागल हो उठा था ? वह सब बेच-बाच देता अगर वह सम्पत्ति पिता के नाम न होती। वे किसी भी तरह हस्ताक्षर करने को राजी नहीं हुए। उन्होंने स्पष्ट ही कह दिया— “यह रोग तो अच्छा होने वाला नहीं है। खास तौर से जब पैसठ वर्ष की उम्र में उसने पकड़ा है। भाई-बहन को क्या खिलाओगे ? तुम्हारी माँ क्या खायेगी ? और किसी को अभी तो कोई काम भी नहीं मिला। जमीन तो इतना-सी है। फसल पूरी हो तो नौ महीने की खुराक मिलती है। उस पर से पूरे तीन साल से एक बार भी पूरी फसल नहीं मिल पायी। इस बार भी कैसे चलेगा उसमें। इलाज का खर्च क्या पूरा पड़ेगा ?”

बात युक्तिपूर्ण थी। मगर पिता के प्रति इतनी भक्ति होने पर भी या कहना चाहिए कि भक्ति के कारण ही यह युक्ति उसकी समझ में नहीं आयी। जमीन और मकान वह बेच नहीं सकता था पर इसके अलावा घर में थोड़ा-बहुत था बर्तन, बासन, चाँदी, सोने के दो-चार गहने सब बेच डाला। कर्ज का बोझ बढ़ने लगा। बस, यहीं तक मुझे मालूम था। साधु महाशय के गिरफ्तार होने के बाद सिर्फ एक बार गया था मैं निमाई

के घर। मगर कुछ मालूम नहीं हुआ आगे। फिर इतनी खोज-खबर लेने का न तो समय ही था और न मन ही।

चाय पीते-पीते मैंने ये सब बातें कहीं।

मगर इतना याद नहीं था। जब मैं उनसे कहने लगा तब सब याद आया। और यह भी याद आया कि साधु के गिरफ्तार होने के बाद उनके एक भक्त रिक्शेवाले ने बतलाया था कि सभी लोग उनके खिलाफ हो गये थे। उनकी निन्दा करने और उन्हें धिक्कारने लगे थे। जब निमाई आश्रम में जाकर खोज-खाजकर साधु बाबा की पुरानी खड़ाऊँ ले आया था। उसे अपने पूजा घर में एक ताक पर रखकर रोजाना फूल-चन्दन से उसकी पूजा करता था रामायण के भरत की तरह। रोज सुबह उठकर माता-पिता को प्रणाम करता था तब खड़ाऊँ को भी उसी तरह सिर नवाता था। यह सब भी मैंने बतलाया उन्हें।

सुनकर वे कुछ हँसे। बोले—“वे हमेशा का ऐसा ही पागल है।” उसके बाद कुछ देर तक शून्य की ओर देखकर बोले—“सच पूछो तो उल्टा चाहिये था। हम लोगों को ही उसकी पादुका की पूजा करनी चाहिए थी। इस युग में, इस युग में क्यों ? अपनी इतनी उम्र से किसी की माता-पिता के प्रति इतनी भक्ति और श्रद्धा नहीं देखी। माँ-बाप की ठीक तरह से सेवा नहीं हो पायेगी। बहू आकर पराया कर देगी। इसी डर-भय से ब्याह तक नहीं किया उसने। वही असली साधु है।”

फिर कुछ देर चुप रहकर बोले—“निमाई बहुत कृतज्ञ आदमी है। उसका कल्याण होगा। कम से कम वह शान्ति तो पायेगा। अकृतज्ञ और बेईमान आदमी शान्ति नहीं पाता।

हठात् मेरे मुँह से निकल गया—“अच्छा, तो वह क्या मामला था ? वह—मेरा मतलब है—वह पुलिस का हंगामा ?”

वे निःशब्द ही कुछ देर तक खूब हँसे। कौतूहलभरी हँसी थी वह। मेरी दुर्बलता पकड़ी गयी थी। जैसी आशा उन्होंने की थी उसी तरह कोई फँस गया है—इसी बात पर विजय और कौतूहलमिश्रित हँसी थी। बोले—“वह बात अभी भी याद है ? इसी मतलब से आया है शायद ? इतने दिनों का कौतूहल मिटाने ? मगर सुनने से लाभ होगा ? जाली नोट बनाता हूँ, यह तूने तो जान रखा है, यही तो अच्छा है। भक्ति की मुझे जरूरत नहीं है। यहाँ सब कोई मुझे शराबी और बदमाश ही समझते हैं, बदमिजाज भी। सो मैं एक तरह से बड़ी शान्ति से हूँ। ढेर सारे भक्त और शिष्य जुट जाने से एकदम गृहस्थ हो जाना होता है। संसार में फँस जाना होता है। तब वही लोग अपने सगे हो जाते हैं। उनके रोग, शोक, वेदना का अंश लेना होता है। वह बड़ी कष्टदायक स्थिति हो जाती है। सब को लेकर एक विराट परिवार बन जाता है। यह सब झंझट और अशान्ति ही करता रहूँ तो अपना काम कब करूँगा ? तब संसार छोड़ा ही क्यों ? ब्याह करके अपने बाल-बच्चों को लेकर भी तो रह सकता था।”

मैंने कहा—“इसीलिए क्या इतनी मारपीट कर बैठना— कहीं कोई खून-वून हो गया तो क्या होगा ?”

“तू यहाँ के इन शौकीन भक्तों की बात कह रहा है ? कल वे लोग तेरे यहाँ

से आये थे ना सच कहूँ तो वहाँ जो लोग आते थे उनकी बात फिर भी समझ में आती है। अशिक्षित देहाती लोग ठहरे। अपनी धारणा और विश्वास से चलते हैं। मगर इन शहराती भक्तों को देखकर सच कहता हूँ मेरे सिर में रक्त चढ़ जाता है, आग लग जाती है तन-बदन में। लगता है उन स्वार्थियों का खून कर डालूँ, टुकड़े-टुकड़े कर डालूँ। स्वयं कुछ नहीं करेंगे। किसी इन्द्रिय का दमन नहीं करेंगे और आशा करेंगे कि महापुरुष या साधुबाबा जिन्हें पकड़ रखा है, वे ही उनकी तरफ से सब कुछ कर देंगे। भाव यह होता है—तुम साधु हो, साधक हो, महात्मा हो और महापुरुष। हम तुम्हारी भक्ति करते हैं, यही बहुत है। अब तुम्हारा कर्तव्य है, हमको तार देना। हम बैठे-बैठे आराम करेंगे, भरपेट खायेंगे, विलास में डूबे रहेंगे, पाप, अन्याय, चोरी, बदमाशी सब करेंगे, तुम हमारे ३६ लोक की विपद-आपद काट दोगे। हमारे धन्धे में फायदा करा दोगे। हमारी नौकरी से पदोन्नति करा दोगे। लड़के की अच्छी नौकरी और लड़की का व्याह यह सब प्रबंध कर दोगे, उन्हें परीक्षा में पास करा दोगे, रोग-व्याधि भी अच्छी कर दोगे। साथ ही परलोक में भी एक अच्छा-सा मकान देख लोगे। ऐसी व्यवस्था कर दोगे कि वहाँ भी सुखपूर्वक हम लोग रह सकें। भगवान का दर्शन भी—इसी तरह—अगर हमें फुर्सत मिले, अपने काम धाम और भोग विलास के बाद तो तुम वह भी करा दोगे। समझा तू। इन लोगों के हर काम में इसी तरह का भाव रहता है। पाप ... पाप ... महापाप। इन लोगों का मुँह देखने से भी पाप लगता है। ये लोग जब दाँत निपोरकर इस तरह भोले-भाले बनकर सामने आ खड़े होते हैं तब मेरा सारा शरीर बिच्छू काटने की तरह जलने लगता है। ज्यादा देर इन लोगों का संग करने से आत्मा का अधःपतन होता है। साधन-भजन नष्ट हो जाता है। कहते-कहते साधु की दृष्टि आग की तरह जलने लगी। चेहरा सुर्ख हो गया। कुछ देर चुप रहकर एक अमानवीय चेष्टा से उन्होंने अपने आपको सँभाल लिया। भर्राये स्वर में बोले—इसीलिए इन्हीं लोगों के कारण मनुष्य के संसर्ग से मुझे घृणा हो गयी है। बनारस से जो चला आया—वह भी इसी जलन के कारण। इसी निमाई के कारण ही ... आना ही पड़ता सो बात नहीं थी। मगर उस घटना के बाद ही मेरी आँख खुल गयी। समझ गया कि इस तरह रहने से और भी फँस जाऊँगा और अपना काम धरा रह जायेगा। मगर निमाई के कारण ही यह बात मेरी समझ में नहीं आयी। उसके कारण क्या हुआ। मेरी बात सुनकर साधु ने एक बार चारों तरफ देखा और फिर बोले— अब आगे सुनने-सुनाने का समय नहीं है। देखो, अब लोगों का आना-जाना शुरू हो गया है। तू अब यहाँ से चला जा। कल इसी तरह सबेरे के वक्त आना तो आगे बातें होंगी। मैंने भी देखा कि सूरज निकल आया था और जागरण हो गया था। चुपचाप उठा, प्रणाम किया और वापस लौट आया होटल।

लगातार चार-पाँच दिनों तक अनवरत वर्षा होती रही। इसलिए कहीं बाहर निकलना न हो सका। अवधूत महाशय से दुबारा मिलने भी न जा सका मैं। अपने लेखन-कार्य में ही जुटा रहा मैं, एकाग्रचित होकर।

उस दिन सायंकाल का समय था। काले, भूरे बादलों से पटा पड़ा था आकाश।

रिमझिम वर्षा हो रही थी। खिड़की के पास कुर्सी-टेबुल लगाकर लिखने में लीन था मैं। और तभी कमरे का दरवाजा भड़ाक् से खुला। सिर घुमाकर देखा, दरवाजे के पास प्रौढ़ वय की एक महिला खड़ी मुस्करा रही थी। कद, काठी, रूप और चेहरा कुछ-कुछ जाना-पहचाना-सा लगा। फिर भी सन्तुष्टि के लिए हौले से पूछा—“कहिये ! कौन हैं आप ? ...किससे मिलना है आपको ?” अचकचाकर किये गये मेरे प्रश्नों को सुनकर वह महिला हँस पड़ी एकबारगी। हँसी बड़ी ही सुन्दर लगी मुझे। फिर कोमल स्वर में बोली वह—“आपने मुझे पहचाना नहीं। मैं ही संन्यासी ताराचन्द अवधूत की भैरवी ...आरती।”

“अरे आप ! पहचानूँगा क्यों नहीं। इतने लम्बे असें के बाद इस प्रकार अचानक भेंट होने पर थोड़ा भ्रम होना स्वाभाविक ही है।” फिर थोड़ा हँसकर बोला—“आपको भला मैं कैसे भुला सकूँगा। फिर आपमें किसी प्रकार का अन्तर भी तो नहीं आया है। सब कुछ वैसा ही है जैसा अट्टारह साल पहले था।

सचमुच कोई परिवर्तन नहीं हुआ था आरती में। वही रूप, वही रंग, वही स्निग्ध सौन्दर्य और वैसी ही घनी काली केशराशि। आयु का भी तो कहीं कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। जैसे पहले देखा था बस उसी तरह अब भी देख रहा था आरती को। कुछ क्षण तक अपलक निहारता रहा मैं उस अपरूप सौन्दर्य की ओर। लगा, जैसे उन सुनसान घाटियों से निकलकर कोई यक्षकन्या आ गयी हो मेरे कमरे में।

“इस वर्षा में आपका आना कैसे हुआ ?” मैंने पूछा।

“कल मालूम हुआ कि आप यहाँ आये हुए हैं। बाबा ने बतलाया मुझे। लोभ संवरण न कर सकी इसलिए चली आयी। सोचा, देखूँ कैसे हैं आप ? कहीं कोई अन्तर तो नहीं पड़ा है ?”

“क्या, कहीं कोई फर्क, भीतर या बाहर दिखलायी दिया आपको मुझमें” ? हँसकर बोला मैं।

“नहीं, वैसे ही हैं आप, जैसे पहले थे। वैसा ही रूप-रंग और वैसा ही स्वभाव कहीं कुछ बदला नहीं है।” फिर थोड़ा रुक कर रेशमी साड़ी का आँचल ठीक करती हुई आगे बोली आरती “आजकल क्या कर रहे हैं ? सुना है कि कोई पुस्तक पूरी करने के लिए यहाँ एकान्त-साधना कर रहे हैं आप। कौन-सा विषय है पुस्तक का ?”

“तान्त्रिक साधना में नारी का मूल्य और महत्व”^१ विषय पर लिख रहा हूँ। मैंने धीरे से कहा।

“सुन्दर, बहुत सुन्दर। अच्छूता विषय है। इस पर अभी किसी ने लेखनी नहीं उठायी है। आरती ने कहा “सच तो यह है कि बिना नारी के सहयोग के किसी भी प्रकार की तांत्रिक साधना में न सिद्धि मिलती है और न तो सफलता ही।”

“आप साधना-मार्ग की अनुभवी साधिका हैं। क्या इस विषय पर आप कुछ बतला सकेगी ? मैंने पूछा।

“आप तो जानते ही हैं—आरती ने हँसकर कहना शुरू किया—“भारतीय

१. यह पुस्तक शीघ्र प्रकाशित हो रही है। कृपया प्रतीक्षा करें —लेखक

साधना के चार स्तंभ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ये चारों पुरुषार्थ हैं। अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष है, लेकिन प्रथम तीनों पुरुषार्थों के पूर्ण होने पर ही वह संभव है। मानव-जीवन का सर्वोच्च पुरुषार्थ है “मोक्ष” जिसका एकमात्र साधन है—धर्म, अर्थ और काम। जहाँ भारतीय संस्कृति में एक ओर “काम” की महत्ता स्वीकार की गयी है और इस बात पर भी जोर दिया गया है कि पुरुषार्थ की साधना में “काम-साधना” एक आवश्यक आधार है, वहाँ दूसरी ओर इस तथ्य पर भी जोर दिया गया है कि “काम” केवल एक साधन है। किसी भी दशा में वह साध्य नहीं है। साध्य है मोक्ष जिसका सहयोगी है आध्यात्मिक सुख, न कि शरीर-सुख। शरीर-सुख का अपना महत्व है, लेकिन वह आध्यात्मिक सुख के मार्ग की केवल एक सीढ़ी है। शरीर-सुख वहीं तक वांछनीय है, जहाँ तक वह इन्द्रियलोलुपता को शान्त करने तथा आत्मा को प्रबुद्ध करके आत्मा को शरीरी बंधनों से छुड़ाने का एक उपकरण है। इसीलिए काम की आवश्यकता, महत्ता तथा वांछनीयता की कसौटी है “धर्म”। वही “काम” वांछनीय है जो धर्मोन्मुख हो। हिन्दू विचारधारा ने “काम” को वांछनीय माना है न कि काम लोलुपता को।

“काम” के साधनों में नारी का प्रमुख स्थान है और इसी कारण काम-धारणा-संबंधी विचार-परम्परा में नारी-सौन्दर्य और उसके रहस्य का काफी वर्णन है। नर-नारी के संसर्ग से उत्पन्न सुख का स्रोत विवाहित प्रेम के आदर्श में माना गया है। यही कारण है कि नारी के आदर्श सौन्दर्य का वर्णन पत्नी और माँ—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गदपि गरीयसी” के रूप में किया गया है।

“काम” का साधन क्या है— पूछा मैंने ?

हिन्दू विचारधारा में नर-नारी के नैसर्गिक आकर्षण को “काम” का साधन माना गया है। वह नैसर्गिक आकर्षण ही प्रेम है, जिसकी तीन प्रकार की अभिव्यक्ति मिलती है। पहली अभिव्यक्ति है दाम्पत्य जीवन जो गृहस्थाश्रम का आधार है। शकुन्तला-दुष्यन्त, मालती-माधवी, नल-दमयन्ती और शिव-शक्ति की कथाएँ इसका उदाहरण हैं। दूसरी अभिव्यक्ति है, सतत आध्यात्मिक अभिलाषा जिसका उदाहरण है—गोपीकृष्ण की लीलाएँ तथा विद्यापति और चण्डिकादास के गीत। इस सन्दर्भ में नर-नारी को आदिपुरुष तथा आदिप्रकृति के रहस्यात्मक प्रमेय समझा गया है। भारतीय संस्कृति-साधना और विचारधारा के अनुसार नर-नारी का संसर्ग शरीर तथा आत्मा के नैसर्गिक संसर्ग की लीला है। “काम” इसी रहस्य की आवश्यक अभिव्यक्ति है जिसकी व्याख्या कामशास्त्र और तंत्रशास्त्र में की गयी है। खजुराहो के मंदिर में बने कामाभिव्यक्ति के मूर्तिचित्र इसी रहस्य की कलात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। साहित्य में इसी रहस्य को श्रृंगारिकता की शैली में व्यक्त किया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं यही शैली आगे चलकर नायिकाभेद तथा नख-शिख वर्णन साहित्यिक परम्परा में प्रस्फुटित हुई। “गोपी” और तंत्र की “त्रिपुरसुन्दरी” इसी रहस्यात्मक अभिव्यक्ति से उत्पन्न धारणाएँ हैं।

बारिश तेज हो गयी थी। हाहाकार करती हुई पुरवा हवा का एक झोंका खिड़की से आकर कमरे में बिखर गया और उसी के साथ तड़तड़ाती हुई बिजली भी चमक

उठी आकाश में। आरती को मात्र केवल भैरवी समझता था मैं। उसमें कला, साहित्य, धर्मशास्त्र, तंत्रशास्त्र और भारतीय संस्कृति की विचारधाराओं का भी संगम होगा इसकी कल्पना तक नहीं की थी मैंने।

नर-नारी के नैसर्गिक आकर्षण की तीसरी अभिव्यक्ति क्या है ? मैंने पूछा।

आरती ने कहा भारतीय संस्कृति की विचारधारा के अनुसार शृंगारिक अभिव्यक्ति का एक आधार आध्यात्मिक है और दूसरा है इहलौकिक। जहाँ तक इहलौकिक शृंगारिक प्रेमाभिव्यक्ति का प्रश्न है तो उसका प्रतीक है गणिका। गणिका समाज की एक विशिष्ट अंग है। यही कारण है कि इसका अस्तित्व हर काल में और हर युग में रहा है। भारतीय संस्कृति में नारी के दो रूप हैं—एक पत्नी का और दूसरा गणिका का। गणिका नर-नारी के नैसर्गिक आकर्षण की तीसरी अभिव्यक्ति है। “गोपी” और “तंत्र की त्रिपुरसुन्दरी” यदि आध्यात्मोन्मुख प्रेमिका के धारणात्मक रूप हैं तो गणिका इहलौकिक रूमानी प्रेम की अभिव्यक्ति का साधन है।

गणिका की धारणा अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई है। आम्रपाली, नगरवधू, विषकन्या और देवदासी उसके मुख्य रूप हैं। गणिका का एक लम्बा इतिहास है, जिसका प्रारम्भ वैदिक काल से होता है। काँटिल्य ने भी गणिका को समाज का एक अंग माना है।

इस संदर्भ में भैरवी के रूप की अभिव्यक्ति कहाँ होती है ? प्रश्न किया मैंने।

आरती ने इस प्रश्न के उत्तर में कहा—हिन्दू विचारधारा में व्याप्त नारी के प्रति द्विविधापूर्ण विचारों को समझना होगा। वास्तव में नारी की स्थिति द्विविधापूर्ण है। नारी एक ओर पुरुष की पत्नी और अर्द्धाग्निनी है तथा दूसरी ओर है प्रेमिका।

प्रेमिका के रूप में एक ओर नारी प्रतीक है एक सतत रहस्यात्मक अभिलाषा की। पुरुष के प्रति सतत आकर्षित प्रकृति की या चैतन्य को आकृष्ट करने वाली माया की और दूसरी ओर गणिका अथवा इहलौकिक प्रेमिका की—वह प्रेमिका जो पुरुष के बौद्धिक उद्दीपन का संबल है। पत्नी के रूप में नारी त्याग और तपस्या की मूर्ति है। यदि भारतीय विचारधारा की दृष्टि से देखा जाय तो पत्नी और प्रेमिका अलग-अलग हैं। इस अलगाव के कारण ही जहाँ नारी पत्नी है वही वह प्रमदा भी है।

तंत्रशास्त्र ने नारी के प्रति द्विविधापूर्ण विचारों को महत्व नहीं दिया। उसने नारी के एक दूसरे से विपरीत रूपों को भी स्वीकार नहीं किया। तंत्रशास्त्र ने नर-नारी के नैसर्गिक आकर्षण को मिथुनजन्य माना और नारी के माता, पत्नी, प्रेमिका, गणिका और प्रेयसी के रूप को साधना के धरातल पर समन्वित किया। कहने की आवश्यकता नहीं, वही समन्वय “भैरवी” के रूप में अभिव्यक्त हुआ तंत्रशास्त्र में। नारी एक ही है लेकिन उसके प्रति भिन्न-भिन्न भाव होने के कारण उसके कई रूप हैं। जहाँ तक प्रश्न तंत्रशास्त्र का है, उसमें केवल वह महाशक्ति अथवा महामाया रूपा है जिसके प्रति दो भाव हैं—पूज्या और भोग्या। यही दोनों भाव महाभैरवी और भैरवी के रूप में अभिव्यक्त हैं।

अब रही भैरवी की उपयोगिता की बात। इस जगत की सारी व्यवस्था और सारे नियम “द्वन्द्वात्मक” है यानी द्वन्द्व पर आधारित है। कहने का मतलब यह कि “ऋण”

और “धन” के विरोध पर निर्भर है सारी व्यवस्था और सारे नियम। मानव-जीवन में भी लागू है वह। जीवन में जहाँ भी आकर्षण और खिंचाव है वहाँ सभी जगह “ऋण” और “धन” के बँटे हुए हिस्से काम करते हैं। स्त्री-पुरुष का विभाजन और “काम” का विभाजन— इसी बड़े विभाजन का एक हिस्सा है। “ऋण” के ध्रुव और “धन” के ध्रुव बड़ी तीव्रता से एक दूसरे को अपनी ओर खींचते हैं। स्त्री और पुरुष अपने बीच जो तीव्र आकर्षण अथवा खिंचाव का अनुभव करते हैं उसका कारण भी यही है।

योग-तांत्रिक साधना के फलस्वरूप पुरुष के चारों शरीरों और स्त्री के भी चारों शरीरों से निकलने वाली विद्युत चुम्बकीय ऊर्जाओं की मात्रा अत्यधिक बढ़ जाती है। उन ऊर्जाओं के रंग भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

वर्षा कम हो चुकी थी। सुनसान घाटियों के पीछे से चाँद निकल आया था। काले-भूरे बादलों के टुकड़े नीले स्याह आकाश में इधर-उधर बिखर गये थे। मैंने बेयरा को आवाज देकर दो कप कॉफी मँगवायी। विषय अत्यन्त गंभीर था। जिस ढंग से आरती विषय की विवेचना और व्याख्या कर रही थी वह निःसंदेह श्लाघनीय था। कॉफी का प्याला खत्म कर उसे टेबुल रखती हुई वह बोली— “षट्चक्र” भेदन के संबंध में बहुत-सी बातें बहुत-सी पुस्तकों में लिखी हुई हैं। मगर बहुत ही कम लोग जानते-समझते हैं कि षट्चक्रों का भेदन होता कैसे है ? भैरवी के रूप में एक स्त्री का स्थान साधना-भूमि में अति महत्वपूर्ण और विशिष्ट है। वह साधक की रक्षिका भी है और पथ-प्रदर्शिका भी। साधना-मार्ग में भैरवी का सर्वप्रथम सहयोग प्राप्त होता है षट्चक्र भेदन में। प्रथम चार शरीरों तक स्त्री और पुरुष के शरीरों के बीच फासला है। उन चारों शरीरों के केन्द्रभूत चार चक्रों के भेदन तक साधक के लिए भैरवी रक्षिका है। उसके बाद वह उसकी पथ-प्रदर्शिका है।

चक्रों के भेदन की प्रक्रिया में भैरवी का क्या सहयोग है ? मैंने सहज भाव से प्रश्न किया।

यही तो बताने जा रही हूँ—आरती ने कहा—विशेष योग-तांत्रिक क्रियाओं के आधार पर जब साधक और भैरवी के भौतिक शरीर की ऊर्जाएँ आपस में मिलती हैं तो उसके उत्ताप से मूलाधार चक्र का भेदन होता है। जब दोनों के भाव शरीर की ऊर्जा एवं आपस में मिलती हैं तो उसके उत्ताप से स्वाधिष्ठान चक्र का भेदन होता है। इसी प्रकार दोनों के सूक्ष्म शरीर और मनः शरीर के ऊर्जा ताप से मणिपूरक चक्र तथा अनाहत चक्र का भेदन होता है।

चारों चक्रों के भेदन होने पर उनसे संबंधित चारों शरीरों पर से प्रकृति का अधिकार समाप्त हो जाता है, जिसके फलस्वरूप साधक उन शरीरों का उपयोग करने में स्वतंत्र हो जाता है।

जैसे भौतिक शरीर का संबंध भौतिक जगत से है उसी प्रकार भाव शरीर का भाव जगत से, सूक्ष्म शरीर का सूक्ष्म जगत से और मनः शरीर का मनोमय जगत से संबंध समझना चाहिये। ये तीनों “लोक” अथवा “जगत” अत्यन्त सूक्ष्म हैं और उनमें मानवेतर शक्तिसंपन्न उच्च कोटि की आत्माएँ निवास करती हैं। चक्रभेदन के

फलस्वरूप साधक अपने भाव-शरीर, शूक्ष्म शरीर अथवा मनः शरीर के द्वारा उन जगतों में प्रवेश कर सकता है और वहाँ की आत्माओं से संपर्क भी स्थापित कर सकता है। तांत्रिक दृष्टि से इन दोनों का भारी महत्व है। अध्यात्मिक अथवा पारलौकिक लाभ तो उससे है ही उसके अलावा इहलौकिक लाभ भी है।

इहलौकिक लाभ क्या है ? मैंने पूछा।

पहला लाभ तो यह है कि चारों शरीरों की साधनाप्रदत्त जो भी संभावनाएँ हैं— वे साधक को प्राप्त हो जाती हैं। बहुत बड़ी उपलब्धि है। यहाँ पारलौकिक जगत की आत्माओं के साधक इच्छानुसार लौकिक कार्यों में सहायता भी प्राप्त कर सकता है— यह दूसरा लाभ है। तीसरा लाभ यह है कि इस संसार में जितनी भी महत्वपूर्ण घटनाएँ घटती हैं, आपको जानकर आश्चर्य होगा कि वे तमाम घटनाएँ बहुत समय पहले अतीत में उन तीनों जगत में घट चुकी होती हैं। इसी प्रकार मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन में भी महत्वपूर्ण घटनाएँ घटी हुई होती हैं। साधकों का उन तीनों जगत में प्रवेश होने के कारण वे संसार में घटने के पूर्व ही उन घटनाओं को जान-समझ पाते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि ऐसे साधकों के सामने सभी सांसारिक रहस्यों का पर्दाफाश हो जाता है। यही कारण है कि उच्चकोटि के योगी और साधकगण, मनस्वी, विरक्त, निस्पृह और उदासीन हो जाते हैं संसार के प्रति। यह चौथा लाभ है। मगर उस प्रसंग में आपको एक बात बतला दूँ। वह यह है कि पार्थिव शरीर से अन्य शरीर निकलने को तो निकल जाते हैं मगर वे स्वयं वापस पार्थिव शरीर में लौटने में असमर्थ हैं, उसके लिए विपरीत विद्युत देह आवश्यक है। जब भैरवी विशेष यौगिक क्रिया की सहायता से उस शरीर के केन्द्र का स्पर्श करती है तभी बाहर गया हुआ शरीर वापस पार्थिव शरीर में लौटता है। सच तो यह है कि मनुष्य के इतिहास में, मनुष्य के आंतरिक जीवन के संबंध में जितना तांत्रिकों ने प्रयोग किया उतना और किसी ने नहीं किया।

तांत्रिक साधना-भूमि में कुँवारी कन्या की आवश्यकता क्यों है ? मैंने प्रश्न किया।

आरती ने कहा कि तांत्रिक साधना में असाधारण स्त्री की उपस्थिति अनिवार्य है। सभी दृष्टि से असाधारण स्त्री ही अनिवार्य है क्योंकि साधना की सफलता, असफलता सभी कुछ नारी की विद्युत चुम्बकीय शक्ति ऊर्जा पर ही निर्भर है। इसीलिए उसका हर एक प्रकार से असाधारण होना आवश्यक है। आपको मालूम होना चाहिये कि जो स्त्री जितना पुरुष-संसर्ग में आयेगी, उतनी ही उसकी दैहिक ऊर्जा कम होती जायेगी। यही मुख्य कारण है कि नाथयुग, कापलिकयुग और शाक्तयुग में कुँवारी युवती कन्या के अक्षत शरीर का मूल्य तथा महत्व बढ़ गया साधना भूमि में। आज भी उतना ही मूल्य और महत्व है। उसके कारण और कुछ नहीं। कुँवारी युवती कन्या के अक्षत शरीर में दैहिक ऊर्जा पूरी मात्रा में रहती है जिसका विशेष उपयोग साधक की बाहर गयी चेतना को भीतर लौटाने के लिए किया जाता है।

जिन युगों की चर्चा मैंने की है उन युगों में ऐसी कुँवारी युवती कन्याओं को इतना संयम और पवित्रता रखनी पड़ती थी कि किसी भी अंग-प्रत्यंग से उनकी जो

दैहिक ऊर्जा, है वह बाहर न निकल जाया। योग और तंत्र में जितने भी आसन है, मुद्राएँ हैं वे सब दैहिक ऊर्जा बाहर न प्रवाहित हो, उसको ध्यान में रखकर निर्मित की गयी हैं। एक बात इस प्रयोग में और बता दूँ आपको। आरती ने कहा— वह यह कि पार्थिव शरीर नाशवान है तथा एक प्राकृतिक तंत्र के सिवाय और कुछ नहीं है, लेकिन उसी के माध्यम से अन्य शरीरों में चेतना का विकास संभव है। इसलिए अन्य किसी शरीर के साथ चेतना बाहर निकल जाती है तो उस समय स्थूल शरीर की रक्षा आवश्यक है। अतः इस रक्षा के लिए भी भैरवी की उपस्थिति अनिवार्य है। कहने का मतलब यह है कि भले ही कोई भी साधना-सम्प्रदाय हो उसमें किसी न किसी रूप में नारी की उपस्थिति, नारी का उपयोग, नारी का सहयोग अनिवार्य है। बिना उसके काम चलने वाला नहीं। खैर, तंत्र का साधनाशास्त्र “हरि अनंत हरि कथा अनंता” की तरह है। उसकी गंभीरता और गहनता को समझना बहुत ही कठिन है। इतना कहकर आरती बोली अच्छा अब मैं चली। रात अधिक हो गयी है।

सचमुच रात अधिक हो गयी थी। बादलों के टुकड़े इधर-उधर बिखर गये थे। नीला आकाश निर्मल हो गया था। चाँद भी काफी ऊपर आ गया था। खामोश घाटी और अधिक उदास, वीरान हो गयी थी। उस रात सो न सका मैं। पूरी रात विषय से संबंधित आरती के एक-एक शब्द, एक-एक वाक्य गूँजता रहा मेरे कानों में और थिरकता रहा मेरी आँखों के सामने अवधूत महाशय की भैरवी का तेजोमय मुखमण्डल।

○○○

साधु बाबा से अभी बहुत कुछ जानना-समझना था। तंत्र-मंत्र के विषय में नहीं, निमाई के बारे में। दूसरे दिन बिल्कुल तड़के पहुँच गया था उनके आश्रम में। देखा कि साधु महाशय आश्रम के सामने वाले पीपल के नीचे एक चबूतरे पर ध्यान लगाये बैठे हुए थे। करीब जाकर खड़ा हो गया मैं। थोड़ी देर बाद आँखें खुलीं महाशय की, मेरी ओर देखकर मुस्कराये। फिर बोल अब किस बात के लिए तेरा पेट फूल रहा है ? बिना किसी मतलब के तू आने वाला नहीं।

निमाई के कारण क्या हुआ था ? बस, यही जानना था मुझे। झंपते हुए बोला मैं। शायद मेरी आवाज में कुछ अधिक व्यग्रता प्रकट हो गयी थी। साधु की आवाज में उसी मात्रा में व्यंग्य और कौतुक था। बोले वह बात सुनने के लिए उसके भीतर का रहस्य जानने के लिए पेट फूल रहा है न ? औरतों की तरह इतना कौतूहल क्यों होता है बेटा ? तू तो पुरुष है।

उसके बाद कुछ रुककर, न जाने क्या सोचकर बोले तो सुन, तुझसे कह सकता हूँ। अब इस बात का प्रचार होने से भी निमाई का कोई अनिष्ट न होगा। कोई विश्वास न करेगा। आखिर तू भी किससे कहेगा। कोई खास बात नहीं।

निमाई, बाप की बीमारी की वजह से एकदम पागल हो गया था न। कितना मैंने समझाया कि शरीर की मृत्यु के लिए एक बहाना तो चाहिए। कृष्ण, बुद्ध, ईसा, कोई भी इस नियम को लांघ नहीं सका और उग्र भी तो काफी हो चुकी। अब उन्हें बचाकर ही क्या करेगा ? क्या ऐसा भोग-सुख दे सकेगा उन्हें ? और भोग करने की

शक्ति ही कहाँ है अब ? मगर कौन सुनता है। आदमी पागल होने पर क्या कोई युक्ति सुनता है ? या वह उसके दिमाग में प्रवेश करती है। पैसे के लिए पागलों की तरह घूमता फिरता था। उसी समय एक जालसाज आकर उसकी गर्दन पर सवार हो गया। उसने जाली नोटों के कुछ बण्डल निमाई के हाथों सौंप दिये। निमाई एक मारवाड़ी की गद्दी पर काम करता था और पोस्ट ऑफिस तथा बैंक में रोजाना रुपया ले जाता था। उसको सिखा दिया कि रोज एक दो जाली नोट मिलाकर चला देने से कोई पकड़ नहीं पायेगा। पकड़े जाने पर निमाई कहेगा कि वह कुछ नहीं जानता। चला सकेगा चार आना निमाई पायेगा। तब वह निमाई शायद तैयार न होता। मगर जालसाज उसके हाथ में दो सौ रुपये के नोट यानी असली नोट थमा गया। तब निमाई लोभ सँभाल नहीं सका। इसके पहले एक काण्ड और हो गया। रामस्वरूप की दुकान से निमाई दवा उधार लाया करता था। उस दिन उन लोगों ने कह दिया कुछ बकाया रुपया न देने पर दवा या इजेक्शन वे उधार नहीं देंगे।

जालसाजों ने सोचा था कि निमाई को सभी लोग प्यार करते हैं। सज्जन और धर्मभीरु आदमी हैं इसलिए उसपर कोई सन्देह नहीं करेगा मगर धर्म के घर में पाप सहन नहीं होता। यह बेटे लोग नहीं जानते थे। पहले ही दिन निमाई को दुर्बुद्धि या सद्बुद्धि से पाप का पैसा खाना नहीं पड़ा। सौ-सौ के चार जाली नोट लेकर गया और उसी में पकड़ा गया। बैंकवालों ने उसे डिटोन करके पुलिस को खबर दी। भाग्य से उसी समय जीवन बाबू भी बैंक गये थे। वे निमाई को बहुत प्यार करते थे। वे दौड़कर मेरे पास आये और सब बात बतायी। तभी सब मामला समझ में आ गया। एक दिन पहले ही रामस्वरूप की दुकान से निमाई ढेर सारी दवा ले आया था जब कि रुपये के कारण उसने दवा देना बन्द कर दिया था। मगर यह बात मुझे मालूम थी। जीवन बाबू को लेकर मैं निमाई के घर चला गया। वहाँ धान के बोरे के नीचे काला बॉक्स छिपा मिला। मैंने उसे खोलकर भी नहीं देखा। बस, जीवन बाबू से वह बॉक्स निकलवाकर आश्रम में ले आया और अपने कमरे में चौकी के नीचे रखवा दिया। जीवन बाबू को सिखा दिया कि वह यह कहे कि मैंने ही वे नोट भुनाने के लिए निमाई को दिये थे और निमाई चूँकि मेरा भक्त है इसलिए मेरा दोष छिपाकर अपने सिर ले रखा है। मैंने उनसे यह भी कहने को कहा कि जिस पिता के लिए वह इतना खतरा ले रहा है अगर उसे जेल हो जाय तो उस पिता का क्या होगा ? वह तो भूखों मर जायेगा। इसके अलावा पुलिस मुझे कुछ नहीं कहेगी। इसलिए निमाई चुप रहे। ज्यादा सत्यवादी बनने की कोशिश न करे।

इतना कहकर शायद थककर वे चुप हो गये। मगर मुझे धैर्य नहीं था। सो कुछ सहिष्णु होकर मैंने पृच्छा— “फिर”। “ठहर जा रे। जरा दम तो लेने दे। स्नेह के स्वर में मुझे उन्होंने डाँटा। फिर बोले— फिर क्या ? निमाई चुप रहा। वह असल अपराधी का नाम भी नहीं कहेगा। यह तो मैं जानता था। क्योंकि रुपया ले चुका था। बेईमानी नहीं करेगा। मेरा अन्दाजा सही था। पुलिस ने आकर जब बक्सा तोड़ा तो देखा कि सौ-सौ के जाली नोट उममें टूँस-टूँस के भरे हैं। कम से कम एक लाख के तो होंगे

ही। ...पुलिस पकड़ कर जब मुझे थाने ले गयी तो ओ. सी. मुझे देखकर अवाक् रह गया। बेचारे का मुँह कैसा हो गया था सो क्या बात बताऊँ ? वह मेरा परम भक्त था। उसकी पत्नी को पेट की बीमारी थी। काफी पैसा खर्च किया था उसने दवा-दारू में। मगर ठीक नहीं हुई थी। इसलिए वह मुझे ईश्वरतुल्य ही समझता था। हाथ जोड़कर बोला—महाराज जी। क्या बात है ? कृपा करके बतलाइये।

मैंने कहा—“मैं कुछ नहीं कहूँगा। “हाँ” भी नहीं कहूँगा और “ना” भी नहीं। कुछ कहने से ही मिथ्या कहना होगा। इस स्थिति में तुम्हारे कानून में जो हो वही करो। मेरा लिहाज करने की जरूरत नहीं।

“उसके बाद छूटे कैसे आप ?”— मैंने पूछा।

अरे ! मुझे कौन पकड़ सकता है रे। अगर मैं जेल में रहूँ तो माँ को नींद नहीं आयेगी। वह अपनी गरज से ही मुझे छोड़ा लायी। ...मगर भक्तों और शिष्यों से बचने के लिए ही यहाँ भाग आया। ...इसके बाद वहाँ रहने से और भी हजारों भक्त आ जुटते। पता नहीं, मामले की जादूगरी का किस तरह प्रचार हो गया था। हाकिम के सामने जब बक्स खोला गया तो सबने देखा कि वह एकदम खाली है। एक भी नोट उसमें नहीं है। ताला जैसा बन्द था वह ज्यों का त्यों था। सील भी नहीं टूटी थी। थाने के गोदाम में रखा गया था। तब मुझे किस वजह से रोके रहते ? हाँ ! असल कल्पित कौन है, वह मुझे बाद में पता लगा था। ओ. सी. को मैंने चुपचाप बता दिया था। छापने की मशीन सहित वे लोग पकड़े गये थे। मेरे कारण ओ. सी. बेचारे की बदनामी हो सकती थी। नौकरी की भी खींचातानी हो सकती थी। वह बच गयी। ...मगर अब यहाँ नहीं। दो। एक आदमी दिखाई दे रहे हैं। अब भीतर चला उठकर चलते-चलते अब मेरा विश्वास भी बहुत बढ़ गया था मैंने पूछा — आप तो भक्तों को आने नहीं देते। तो फिर चलता कैसे है ? खर्च तो कम नहीं है।”

जिसकी गरज है और जिसका आश्रम है वह चलाती है। माँ चलाती है। कहाँ-कहाँ से रुपया आता है। किसी दिन भी खोज मैंने नहीं की। आज ही क्यों खोज करने जाऊँ। रुपये की खोज अगर लेने लगूँ, आमदनी की चिन्ता करूँ। तो साधु कहाँ रहा बेटा।”

मगर ये दो भक्त सेवक हैं। इनके आने में आपने बाधा क्यों नहीं दी ? ये लोग किस आशा में पड़े हुए हैं ? और यह युवती भैरवी ही किस आकर्षण से आपके पास है ?

अचानक साधु हो-होकर हँस पड़े। बोले—यही जानने के लिए और भी छटपटाकर मरा जा रहा है न’। ...अरे गधे। उस युवती भैरवी की उम्र जितनी कम तू समझ रहा है, उतनी कम नहीं है। इसके अलावा समझ ले कि यह भी जन्मान्तर का संबंध है। पिछले जन्म में भी वह मेरी भैरवी थी। माँ की कुछ मजाक करने की इच्छा थी इसी से वह छिटककर दूसरी जगह जा पड़ी थी। ...मगर और नहीं। इसी जन्म में उसका शरीर धारण करना समाप्त हो जायगा। उसे माँ की कृपा और प्रसाद मिल गया है। ऊँचे मार्ग की साधिका है वह। सुनकर तू अवाक् रह जायेगा। पर मैं

रोज फूल-चन्दन अर्पण कर उसकी पूजा करता हूँ।

और ये दो लड़के ?

वह भी निश्चय ही पूर्वजन्म के संस्कारी हैं। नहीं, तो वे ही भला इस तरह क्यों पड़े रहते ? और मैं भी उन्हें क्यों भगा पाता ? निश्चय ही वे पिछले जन्म में उन्नति कर चुके हैं। इसी से माँ ने उन्हें मेरे सिर पर थोप दिया है। ...असल बात क्या है ? जानता है ? मैं यह सब लेकर कभी सिर नहीं खपाता। माँ के आश्रम में रहता हूँ। खूब आनन्द से निश्चिंत होकर। इतनी बातें जानने की जरूरत ही क्या है ? दरवाजे के सामने खड़े-खड़े उन्होंने अन्तिम बातें कहीं थीं, फिर चारों ओर देखकर बोले—
“अच्छा। अब तू लौट ही जा। भीतर जाकर बैठने की जरूरत नहीं। अभी कोई देख नहीं रहा है। मगर बाद में तुझे निकलते हुए कोई देख लेगा, तो पीछे पड़ जायगा।”

कहते-कहते उन्होंने स्वयं भीतर घुसकर और विदा देने की बात भी कहने की चेष्टा बिना किये ही मेरे मुँह पर ही खट्ट से दरवाजा बंद कर दिया।

उसके बाद मैं फिर नहीं गया आश्रम में। जाना बेकार था। लेकिन हाँ! आरती की प्रतीक्षा करता रहा मैं बहुत दिनों तक। मैं उनसे और बातें करना चाहता था। विशेष कर साधना के विषय में। मगर वह भी नहीं आयी। बहुत दिनों तक साधु महाशय का क्रोध से तमतमाया चेहरा और गुडहल के फूल की तरह लाल-लाल आँखें याद आती रहीं। बहुत दिनों बाद मालूम हुआ कि अवधूत महाशय ने फिर समाधि ले ली और अब आश्रम में कोई नहीं रहता। किसी मरघट की तरह उदास और वीरान हो गया है वह। यह सब सुनकर मन को न जाने कैसा लगा एक बार। मगर फिर धीरे-धीरे भूल ही गया सारी कथा मैं। हाँ, अन्त में आरती के संबंध में बतला दूँ। वह वाराणसी में ही पिछले चार-पाँच साल से काशीवास कर रही है। अवस्था तो उनकी बहुत हो गयी है, लेकिन देखने में अभी भी युवता-सी लगती हैं। भगवान जाने कौन-सी साधना के बल पर काल के प्रभाव को रोक रखा है उन्होंने।



ज्योतिषी का रहस्य

मेरे एक परम मित्र हैं। नाम है रामअवतार पाण्डेय। ज्योतिषशास्त्र में उनकी गहरी रुचि है। फलित, गणित दोनों में काफी अच्छा प्रवेश है उनका। समान अधिकार रखते हैं ज्योतिष के इन दोनों पक्षों पर। पहले तो बनारस में ही रहते थे, मगर अब पश्चिम भारत के एक प्रमुख शहर में अपने बड़े लड़के के साथ रहते हैं। काफी लम्बे अरसे के बाद आज एक पत्र आया है रामअवतार पाण्डेय का।

उन्होंने लिखा है—“मेरे शहर में एक बहुत बड़े तांत्रिक ज्योतिषी रहते हैं। नाम है नरेश मण्डला। आयु बस यही है लगभग ६०-६५ वर्ष। उनका रूप-रंग और भेष-भूषा देखकर प्राचीन ऋषियों की याद आ जाती है। अपनी विद्या में पारंगत हैं। काफी यश, कीर्ति है उनकी। बड़े-बड़े विद्वान और ज्योतिषी उनके पास आते हैं। राजा-महाराजा तक हाथ जोड़ते हैं। यह अवसर मत छोड़िये। आप पत्र पाकर तुरन्त अपने आने की सूचना दे।”

योगी, तांत्रिक और ज्योतिषी, मेरी दुर्बलता रहे हैं और मेरी इस दुर्बलता से रामअवतार पाण्डेय परिचित थे। मैंने उसी समय अपने आने की सूचना तार से दे दी पाण्डेय जी को।

मेरी एक सहयोगिनी हैं। नाम है उषा तिवारी। पिछले कई सालों से मेरे निकट हैं। योग, तंत्र और ज्योतिष में काफी गहरी रुचि उनकी भी है। जब उषा जी को यह समाचार मिला, तो वह उत्साहित ही नहीं, उत्तेजित भी हो उठीं। अब तक कम-से-कम ४०-५० ज्योतिषियों को वह अपना हाथ दिखा चुकी थीं। चिट्ठी लिख-लिखा कर कई बार वी० पी० से वर्षफल मँगवा चुकी थीं। कभी कोई भविष्यवाणी सही नहीं उतरी थी पूरी-पूरी। फिर भी उनका उत्साह कम नहीं हुआ था। वह आग्रहपूर्वक कह उठीं—“मैं भी चलूँगी। मुझे भी ले चलिये आप।” मैं उषा जी के आग्रह को टाल न सका। तीसरे दिन उनको साथ लेकर मैं रवाना हो गया।

पाण्डेय जी मेरी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। साथ में उषा जी को देख कर गद्गद हो गये। रात १२ बजे तक मण्डल महाशय की ही चर्चा करते रहे वह। “फीस कितनी है उनकी ?” उषा जी ने पूछा। “बहुत ज्यादा तो नहीं है ...।” नहीं, नहीं। फीस वे चाहे जितनी लेते हों। मुझ पर विशेष स्नेह है उनका। मेरे से कोई ज्यादा फीस लेना ही नहीं चाहते वे। आप जो कुछ ठीक समझें, प्रणामी के तौर पर दे दीजिएगा, बसा।” पाण्डेय जी आगे कहने लगे—“फिर भी आज उनसे मुलाकात हो सकेगी या नहीं, कुछ कह नहीं सकता। बड़े ही मूडी आदमी हैं। मूड न हो, तो चाहे जितनी फीस दी जाये, कुछ नहीं बताते। अलग-अलग दिन, अलग-अलग मूड, रहता है। सायं के बाद किसी को अपने घर में घुसने ही नहीं देते। स्वयं कभी-कदा ही बाहर निकलते हैं। कभी सड़कों पर घूमते-फिरते हैं, कभी किसी सुनसान स्थान पर जाकर बैठ जाते

हैं। कभी-कभी तो कब्रिस्तान या श्मशान में जाकर भी बैठ जाते हैं, महाशया।” उनके इस अटपटे स्वभाव की बात सुनकर उषा जी की भक्ति और भी बढ़ गयी। पाण्डेय जी को टोक कर उन्होंने कहा—“यहीं से फोन कर पता लगा लीजिये कि कल किस वक्त भेंट हो सकेगी उनसे।”

मैंने देखा, उत्तेजना से उषा जी की आँखें चमक रही थीं। मगर तभी मुझे एक खटका हुआ। मैंने पूछ लिया—“पाण्डेय जी। क्या नाम बतलाया आपने ? नरेश मण्डल ...।

“क्यों इस नाम के कोई व्यक्ति आपकी जान-पहचान के हैं क्या ?” उषा ने पूछा। “हैं नहीं, थे कभी। पर यह वहीं है या नहीं।”

पाण्डेय जी बोले, “पहले उनकी शक्ल-सूरत कैसी थी, यह तो मैं नहीं जानता। पर जब से मैं देख रहा हूँ, लम्बे और दुबले-पतले हैं वे। दाढ़ी-मूँछें बढ़ाये हुए हैं। पर भाई शर्मा जी, हैं बड़े गन्दे आदमी। यह मैं अभी से बता दूँ।”

“गन्दे। तब यह वह नहीं हो सकते। कॉलेज में इसी नाम का एक युवक मेरे साथ पढ़ता था। संस्कृत की परीक्षाएँ पास करके कॉलेज में आकर भरती हुआ था। बी० ए० की परीक्षा एकसाथ ही पास की थी हमने। फिर मैंने एम० ए० किया। नरेश स्कूल-मास्टरी करने लगा था। एक अच्छे स्कूल में हेड पण्डित हो गया था वह। फिर मैंने सुना कि वह ज्योतिष का अध्ययन करने लगा था। एक दिन उससे मेरी भेंट हो गयी। मैंने मजा लेने के लिये ही उससे कहा—“तुम तो ज्योतिष पढ़ रहे हो आज कल। बताओ तो, मेरी शादी कब तक होगी, और कैसी पत्नी मिलेगी मुझे ?”

उसने मेरे चेहरे की ओर ताक कर कहा—“तुम शादी कभी नहीं करोगे शर्मा। तुम जिस युवती से प्रेम करते हो, वह ऐसी ही है। मगर वह तुमको धोखा देगी। तुम टूट जाओगे और फिर कभी भी शादी न करने की कसम खा लोगे।”

आप सब विश्वास नहीं करेंगे, उसके बाद मेरी प्रेमिका का उसने बिल्कुल ठीक-ठीक वर्णन कर दिया था। उसके रूप-रंग, स्वभाव, व्यवहार आदि सब कुछ का। कुछ ही दिनों बाद नरेश की यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। बिना मुझको बतलाये मेरी प्रेमिका अमेरिका चली गयी और वहीं शादी कर ली। एक अमेरिकन के साथ और मैंने कसम खा ली कि जीवन में कभी भी शादी के सम्बन्ध में न सोचूँगा। यह घटना सन् १९४८ की है।

“अच्छा” उषा जी चौंक पड़ीं।—“बड़ी ही विलक्षण बात है। यह तो फिर... फिर कहाँ गये आपके वे मित्र ?”

उसके बाद फिर नरेश से मेरी भेंट अब तक नहीं हुई। हाँ, एक खबर अवश्य मिली कि वह मास्टरी छोड़ कर कहीं चला गया।”

“जब फिर यह नरेश मण्डल वह नहीं है, तब कैसे कह दिया आपने ?” पाण्डेय जी ने कहा।

एक बात नहीं मिलती। इसीलिये कहा। मैं जिस नरेश को जानता हूँ वह बहुत ही साफ-सुथरा रहता था और शौकीन किस्म का युवक था। सफाई की सनक थी उसका।

कॉलेज की बात छोड़िये। मेरे घर पर भी कभी कुछ खाता-पीता नहीं था वह। पानी तक नहीं पीता था कहीं। उसे शक रहता था कि शायद घड़ा ढँक कर न रखा गया हो या कि गिलास ठीक से धुला हुआ न हो। बहुत से लोग जूठे गिलास को ही घड़े में डुबोते रहते हैं। यही सब सन्देह रहते थे उसे। सफाई की झक थी उसको। कपड़े-लते के मामले में भी यही बात थी। एक दिन के पहने हुए कपड़ों को वह दूसरे दिन नहीं पहनता था। हर रोज अपने हाथ से कपड़े धोकर पहनता था वह। ऐसा सफाईपसन्द व्यक्ति भला कभी गन्दा रह सकता है। आदमी का स्वभाव इतना भी बदलता है कहीं। कम से कम मैंने ऐसा होते तो नहीं देखा।”

पाण्डेय जी फिर कुछ नहीं बोले।

दूसरे दिन सबेरे ही फोन करने नीचे चले गये पाण्डेय जी। पाँच मिनट बाद जब वे लौट कर आये, तो उनका चेहरा दमक रहा था। वह बोले—“भाग्य प्रबल है आप सबका। नरेश मण्डल को इतनी जल्दी राजी होते कभी नहीं देखा मैंने। आज ही मिला जा सकता है ज्योतिषी महाशय से। उन्होंने कहा है कि कभी भी मिला जा सकता है उनसे। पूरा दिन है हम सब के लिये उनके पास।” यह समाचार सुनकर उषा जी सबसे अधिक प्रसन्न हुईं। जल्दी-जल्दी तैयारी करने लगीं वह चलने के लिये।

सकरी-सी गली में एक बड़ा-सा मकान। मकान को देखते ही सबसे पहले उसकी विशिष्टता पर ध्यान जाता था। हर तरफ सत्राटा। अन्धी गली। गली के दोनों तरफ के मकान भी ऐसे वीरान पड़े थे, जैसे काफी दिनों से खाली पड़े हों। कोई इन्सान जैसे कभी रहता ही न रहा हो उनमें, पर ऐसा क्यों। दोनों मकानों पर बड़े-बड़े ताले झूल रहे थे। तालों पर भी लगभग आधा इंच मोटी धूल की तह जमी हुई थी।

मेरे कुछ पूछने के पहले ही पाण्डेय जी बोले—“ये दोनों मकान भी उन्हीं के हैं। कुछ साल पहले खरीदे हैं। पड़ोसियों के गुल-गपाड़े से शान्ति भंग न हो, इसी कारण खाली ही रख छोड़े हैं ये मकान उन्होंने। हाँ, इनके भी ऊपरी हिस्सों में किताबें संगृहीत कर रखी हैं उन्होंने। पुस्तकों का बड़ा अच्छा संग्रह है उनका। पर किताबें रखने का तो यों ही बहाना है, असल में शान्ति और निर्जनता चाहिए उन्हीं।”

मकान में बिजली तो थी मगर “कालिंग बेल” की व्यवस्था नहीं थी। दरवाजे पर ताला लगाने के लिए जो कड़े लगे थे, उनको जैसे ही पाण्डेय जी ने घुमाया, अन्दर कहीं टन्-टन् कर के एक घंटा बज उठा। घंटा बजने के बाद भी लगभग एक-दो मिनट तक कोई जवाब नहीं मिला। फिर एकाएक हमारे सिर पर ही जैसे कोई बोल उठा—“कौन है ?” गम्भीर स्वर था वह। कुछ जड़ता भी थी उसमें। जैसे नींद से जाग कर बोला हो कोई।

मैं चौंक पड़ा, पाण्डेय जी हँसे। उन्होंने मुझे दिखाया कि दीवार में ठीक हमारे सिर के ऊपर एक गड्ढा था, जिसमें एक चोंगा फिट था। उसी से आयी थी आवाज। मेगाफोन जैसी कोई चीज थी वह।

पाण्डेय जी ने जोर से चिल्ला कर जवाब दिया, “हम लोग आ गये हैं। मैं हूँ पाण्डेय ...।

“अरे आओ।” फिर उसी चोंगे में से आवाज आई। फिर गड़गड़ाहट की एक जोरदार आवाज हुई। भीतर की सिटकनी खुल गयी और वह बड़ा-सा दरवाजा आहिस्ता-आहिस्ता अपने आप ही खुल गया। अन्दर कोई नहीं था, मगर फिर भी दरवाजा खुल गया था। डरने जैसी ही बात थी, पर इससे ज्यादा नहीं डरा मैं, क्योंकि इस तरह ऊपर से रस्सी खींच कर सिटकनी खोलने का ढंग प्रचलित देखा था मैंने। दूसरे कई मकानों में भी ऐसी व्यवस्था देख चुका था मैं। मुझे डर लगा भी, तो उसका कारण दूसरा था और वह यह कि नीचे की मंजिल एकदम निर्जन थी। चारों तरफ गहरा सत्राटा था। यों मकान के अन्दर पहली मंजिल में भी काफी सामान था, कीमती फर्नीचर था। बारीक कलात्मक काम वाली वस्तुयें थीं। जगह-जगह किताबों के ढेर लगे हुए थे। कहीं आलमारी में, कहीं तख्त पर और कहीं दालान के फर्श पर। पुराने ढंग का बड़ा-सा मकान था। कमरे, आँगन के चारों तरफ बने हुए थे। सभी कमरे बड़े-बड़े थे और सब के दरवाजे खुले हुए थे। सभी कमरे निर्जन थे और धूल की मोटी पर्त बिछी हुई थी उन पर। दरवाजा खुलने के लगभग एक मिनट बाद हिम्मत कर हम लोग भीतर घुसे। कुछ देर शायद और लगती, अगर उसी समय ऊपर से यह आवाज न आती—“कौन है ? अन्दर आओ। पाण्डेय जी। बाहर का दरवाजा उढ़का देना।”

मजबूरन अन्दर घुसना ही पड़ा। घर के अन्दर धूल ही धूल जमी हुई थी। फर्श पर, किवाड़ों पर, सामानों पर, किताबों पर भी। कहना कठिन था कि कितने दिनों में जमा हुई थी इतनी धूल। शायद साल भर या इससे भी लम्बे अरसे से घर में झाड़ू नहीं दिया गया था। आँगन में कूड़ों का विराट ढेर लगा था। बरसात में शायद घास-पात उग आया था वहाँ। अब जाड़े में घास-पात तो नहीं रह गया था, पर उसके निशान बाकी थे। किसी ने उन सबको फेंकने की तकलीफ गवारा नहीं की थी। दरवाजा खुलने से जो हवा अन्दर आयी उससे किवाड़ और फर्श पर की धूल थोड़ी उड़ी। हम लोग नाक पर रूमाल लगा कर सीढ़ियों पर चढ़े। चौड़े पत्थरों की सीढ़ियाँ थीं। ऊपर का बरामदा भी काफी बड़ा था। किसी जमाने में वह किसी सम्पन्न व्यक्ति का घर रहा होगा यह स्पष्ट ही था। पर इस वक्त बेहद गन्दा और अस्त-व्यस्त दिखायी पड़ रहा था पूरा मकान। चारों तरफ कितनी गन्दगी और कितना कूड़ा था इसका ठीक अन्दाज भी कोई नहीं लगा सकता था बिना उस दृश्य को देखे।

पाण्डेय जी हमें रास्ता दिखाते हुए एक खुली छत पार करके एक बड़े से कमरे में ले गये। उस कमरे में एक तरफ एक बड़े पलंग पर चटाई बिछाये ज्योतिषी महोदय बैठे हुए थे। कीमती साज-समान का इस कमरे में भी अभाव नहीं था। कमरे में जो तैल-चित्र, झाड़ू-फानूस और गिलट के फ्रेम वाले बड़े-बड़े आइने थे इन सबके दाम ही कई हजार रुपये रहे होंगे। किताबों की कई बड़ी-बड़ी आलमारियाँ थीं। तीन-चार आलमारियाँ तो आबनूस की लकड़ी की भी थी। इनमें से एक-एक बुककेस हजार से तीन-तीन हजार रुपये तक बिक सकता था। पर इन सबकी भी जो हालत हो रही थी, उससे उनको पहचाना जाना भी कठिन था। बिस्तर की चादर और तकियों के गिलाफ शायद दो साल से बदले नहीं गये थे। चादर और गिलाफ किसी जमाने में

सफेद रहे होंगे, यह अनुमान लगाना भी कठिन था। फर्श पर हर तरफ हर तरह का कूड़ा-करकट पड़ा हुआ था, फलों के छिलके, आम की गुठलियाँ, किसी जमाने का सूखा भात, फटे हुए कागज और व्यवहृत दातूनें। क्या नहीं था वहाँ। एक तरफ टूटा हुआ कप और जूटे बर्तन रखे हुए थे। शायद दो-तीन दिनों से जमा हो गये थे बर्तन और अभी तक साफ नहीं किये गये थे। चाय के कप की भी वही हालत थी। उसी जगह धूल पर, एक जल का काला पड़ा लोटा रखा था। एक कपड़ा भी पड़ा था वही। उस लोटे में शायद चाय का पानी गरम किया जायेगा और उसी गन्दे कपड़े से फिर चाय छानी जायेगी।

यह सब तो ठीक ही था। पर कमरे में बदबू भी बहुत थी। क्या यह उस गन्दे बिस्तरे की थी। इतनी तेज बदबू कि कमरे में घुसते ही हम लोग एकबारगी सिहर उठे। बड़ी कठिनाई से मिचली पर तो काबू पाया मैंने, पर सिर में दर्द हो ही गया। उषा जी की ओर ताका मैंने। उनका चेहरा भी विवर्ण हो उठा था। फागुन का महीना था, फिर भी पसीने की बूँदें उभर आयीं उनके चेहरे पर। किन्तु सँभाले रहीं वह अपने आप को। शायद इतने बड़े ज्योतिषी को हाथ दिखा पाने के आग्रह और उत्साह से ही सब तरफ से ध्यान हटा लिया था उन्होंने अपना या शायद इस अस्वाभाविक वातावरण को देख कर ही फिर बढ़ गयी थी उनकी श्रद्धा।

तख्त के सामने लकड़ी की एक बेंच पड़ी थी। जैसे ही हम लोग अन्दर घुसे, ज्योतिषी जी ने हाथ उठा कर उसी बेंच की तरफ इशारा कर दिया। गनीमत थी कि वह बेंच थी वहाँ पर। वहीं एक ऐसी चीज थी कमरे में, जिस पर धूल नहीं जमी हुई थी। शायद इसलिये कि भविष्य जानने वाले अक्सर ही आकर उस बेंच पर बैठते रहे होंगे। तख्त पर जो चटाई बिछी थी, वह तेल, मैल और धूल से ऐसी हो गयी थी कि चटाई जैसी ही नहीं लग रही थी।

तख्त पर बैठे ज्योतिषी जी का चेहरा दरवाजे पर से साफ नजर न आया। पश्चिम की ओर खुलने वाली जिस एकमात्र खिड़की से प्रकाश अन्दर आ सकता था उसके किवाड़ बन्द थे उस समय। उसके अलावा कमरे में रोशनी आने के दो ही रास्ते थे—एक तो वह दरवाजा, जिससे हम लोग अन्दर आये थे और दूसरा एक छोटा गेशनदान।

ठीक से न देख पाने पर भी मैं अन्दाज से समझ गया कि वही व्यक्ति ज्योतिषी होगा। तख्त पर दोनों तरफ लाल रंग के मोटे कपड़े में बँधी कुछ पोथियाँ और किताबें रखी हुई थीं। सामने ही एक कीमती लेंस रखा था। एक टॉर्च भी थी, जो शायद हाथ देखते वक्त काम आती थी। इसके अलावा कई बहीखाते, दवात, कलम और बादामी कागज रखे हुए थे। वे कागज शायद जन्मपत्रियों के थे।

हम लोग ज्योतिषी जी को साफ नहीं देख पा रहे थे, पर वे शायद बखूबी हमें देख पा रहे थे। लगभग एक मिनट तक दरवाजे पर ही रुके रहे हम। फिर अपने को सँभाल कर पाण्डेय जी के पीछे-पीछे उस लाजवाब बेंच की तरफ बढ़े। तभी भारी आवाज में हल्के से कौतुकसहित ज्योतिषी जी कह उठे—“अच्छा चक्रपाणि तुमने मुझे

ढूँढ ही लिया।” मैं चौंक पड़ा जोर से। अनजाने में ही मेरे मुँह से निकल गया—
‘अरे नरेश तुम!’

गलती होने की सम्भावना बिल्कुल नहीं थी। मेरा उपनाम ‘चक्रपाणि’^१ था और इसी उपनाम से पहले मैं लेख तथा निबन्ध आदि लिखा करता था। काफी लम्बे असें के बाद भी नरेश मेरा उपनाम नहीं भूला था। हँस कर बोला—“हाँ भाई चक्रपाणि। मैं ही हूँ। आओ। मेरी भविष्यवाणी सत्य निकली ना। प्रेम-प्रपंच में नारी से धोखा खा ही गये तुम। शादी भी अब तक नहीं की है तुमने ना।” ...“हाँ, नरेश। तुम्हारी भविष्यवाणी सचमुच सत्य सिद्ध हुई। अब तो मेरा मार्ग ही बदल गया है। शादी-विवाह करने का प्रश्न ही नहीं है, इस मार्ग में।”

पाण्डेय जी जैसे बूत बन कर रह गये। उन्होंने शायद ज्योतिषी जी को कभी इस प्रकार बातें करते हुए देखा-सुना नहीं था। मैं भी ठगा-सा रह गया था। पर इसका कारण दूसरा था। मुझे आश्चर्य हो रहा था नरेश को देख कर। यह क्या वही नरेश था, जो हमेशा साफ-सुथरा रहा करता था और बेहद शौकीन और विलासी था। पहले वह रोज शेव किया करता था। मगर अब ...। बढ़ी हुई दाढ़ी मूँछ। बाल रूखे थे उसके और जटा-जूट से हो गये थे। शायद काफी दिनों से उसके सिर पर पानी और तेल नहीं पड़ा था। आँखें गढ़ों में धँस गयी थीं। उसकी लम्बी-चौड़ी देह अब थोड़ा सामने की ओर झुक गयी थी। सबसे ज्यादा आश्चर्य मुझे उसके कपड़े देख कर हुआ। एक धोती और जीन का कोट पहने था वह। धोती शायद छः महीने से और कोट शायद एक साल से पहने हुए था वह।

थोड़ा पास जाने पर पता चला कि कमरे में फैली बदबू में नरेश की पोशाक का भी कुछ कम अंश नहीं था।

नरेश निर्विकार और प्रसन्नतामिश्रित स्वर में बोला “आओ बैठो।”

फिर उषा जी की ओर उंगली उठा कर पूछा—“यह कौन है ?”

मैंने उत्तर दिया—“यह है उषा तिवारी। मेरे साहित्य-क्षेत्र में सहयोगिनी हैं। इतिहास और अर्थशास्त्र में एम० ए० किया है। अध्यात्म में भी काफी गहरी रुचि है, इनकी। तुमसे अपना भविष्य जानना चाहती हैं।”

नरेश हँसने लगा। फिर बोला—“ठीक है। ठीक है। आओ उषा जी तुम भी बैठ जाओ बेंच पर। आराम से बैठो तुम सब। पाण्डेय, मेरे पास इस चौकी पर बैठ जायेगा, उसे ज्यादा घृणा नहीं होती है इस गन्दगी से। आदी हो गया है वह। है न पाण्डेय! फिर मेरी ओर मुखातिब हो कर वह बोला—“पाण्डेय ने मुझे जब फोन किया था, तभी पहचान गया था तुमको। सच तो यह है कि इधर कुछ दिनों से मैं तुम्हारी प्रतीक्षा ही कर रहा था। इसी समय के आस-पास मेरी और तुम्हारी मुलाकात का योगायोग है। मेरे जीवन में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन होने वाला है, जिसमें तुम्हारा भी कुछ हाथ होगा, किस प्रकार का यह तो मैं भी नहीं जानता। पर होगा अवश्य। मैंने बिल्कुल ठीक गणना कर ली है।”

१. ध्यान रहे, किसी नये लेखक ने भी इस समय अपना उपनाम ‘चक्रपाणि’ रख लिया है। —लेखक !

मेरा कौतूहल बाँध तोड़ने लगा। ढेरों सवाल मन में मँडराने लगे। शिष्टता का ध्यान रखते हुए नियन्त्रण रखा मैंने अपने पर। पर शायद नरेश मेरे मनोभाव को समझ गया। मेरे कुछ कहने के पहले ही वह बोल उठा—“नहीं, नहीं। आज नहीं। तुम कल सबेरे किसी वक्त आओ और अकेले ही आना उस वक्त। आज इतनी बातें नहीं हो सकतीं। मैं समझ पा रहा हूँ कि उषा जी ज्यादा देर यहाँ बैठ न पायेंगी। तुम कल आ जाना। प्लीज। बहुत-सी बातें करनी हैं तुमसे। ...पाण्डेय! तुम बुरा न मानना। ये बातें काफी महत्वपूर्ण हैं, इसीलिये चक्रपाणि के अलावा और किसी को नहीं बतला सकता।”

मुझसे भी ठहरा नहीं जा रहा था वहाँ। उठ खड़ा हुआ मैं। पर उषा जी कह पड़ी—“मेरा हाथ नहीं देखियेगा। बड़ी आस लेकर आयी थी।”

“देखूँगा उषा जी ! पर यों बगैर हाथ देखे ही बताये देता हूँ कि तुम्हारा जीवन एकाकी है। तुम हृदय का काम मस्तिष्क से और मस्तिष्क का काम हृदय से लेती हो। यही तुम्हारी अशान्ति का कारण है। तुम्हारा सम्पूर्ण जीवन संघर्षमय है। तुम सभी का साथ दोगी, मगर तुम्हारा साथ विरला ही कोई देगा। ...नरेश की बातें बिल्कुल सत्य थीं। मैंने उसकी ओर एक बार देखा और फिर नाक पर रूमाल रख कर कमरे के बाहर निकल आया।

नरेश मण्डल इतना गन्दा क्यों था। उसे इतनी गन्दगी क्यों पसन्द थी। उसके जीवन में कौन-सा महत्वपूर्ण परिवर्तन होने वाला था। कौन-सा ऐसा रहस्य था, जिसके कारण वह इतना परेशान था। यह एक रोंगटे खड़ी कर देने वाली रहस्यमयी, किन्तु आश्चर्यजनक कथा है, जिसे आप “डाकिनी विद्या” शीर्षक कथा संग्रह में पढ़ेंगे।

○○○

तांत्रिक साधना की कई दिशाएँ हैं। मगर इन्हें मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त किया गया है। पहला भाग तामसिक तंत्र-साधना का है, जो मंत्रयोग पर आधारित है। दूसरा भाग राजसी तंत्र-साधना का है, जो राजयोग पर आधारित है। इसी प्रकार तीसरा भाग सात्विक तंत्र-साधना का है, जो ज्ञानयोग पर आधारित है। मंत्रयोग पर आधारित तामसिक तंत्र-साधना का मुख्य विषय है—भूत, प्रेत, पिशाच, वेताल, डाकिनी तथा पिशाचिनी आदि की सिद्धि और उस सिद्धि के बल पर उनकी शक्तियों का मानव-जीवन में उपयोग। लेकिन यहाँ एक बात समझ लेना चाहिये कि यदि सिद्धि प्राप्त करने में किसी प्रकार की गड़बड़ी हुई तो वह शक्ति लाभदायक अथवा फलदायक न होकर साधक के लिये घातक ही सिद्ध होती है।

जब मैं दूसरे दिन निश्चित समय पर उसके यहाँ गया तो वह मेरी प्रतीक्षा ही कर रहा था। मुझे देखते ही एकबारगी न जाने क्यों उत्तेजित-सा हो उठा वह। काँपते हुए स्वर में बोला—“शर्मा। तुम ही एक ऐसे व्यक्ति हो, जो मुझे इस भयानक विपत्ति से उबार सकते हो। मेरी प्राण-रक्षा भी कर सकते हो।”

किस प्रकार की विपत्ति में फँस गये हो। विस्तार से समझा कर बतलाओगे, तभी तो मैं कुछ कर सकूँगा तुम्हारे लिये। मैंने अपना हाथ उसके कंधे पर रखते हुये

सहानुभूति भरे स्वर में कहा।

मेरी बात सुनकर नरेश मण्डल ने मेरी ओर एक अजीब दृष्टि से देखा। समझ न सका कि उस दृष्टि में क्या था। फिर मेरा हाथ पकड़ कर मुझे बगल वाले कमरे में ले गया वह। कमरे में अंधेरा था। जब मैं भीतर गया तो देखा—कमरे में एक कोने में सरसों के तेल का एक दीप जल रहा था और उसकी रहस्यमयी पीली रोशनी कमरे में आहिस्ते-आहिस्ते फैल रही थी। काफी रहस्यमय लगा मुझे वह कमरा। सामने की दीवार पर गेरू पुता हुआ था और उस पर लाल सिन्दूर से कुछ अजीब से तांत्रिक मंत्र लिखे हुए थे। उसी दीवार से लग कर जमीन पर एक चबूतरा बना था। काले पत्थर का था वह चबूतरा, जिसके दोनों ओर जंगली भैंसे की खोपड़ी रखी हुई थी, जिसपर सिन्दूर और काजल के टीके लगे थे। चबूतरे के बीच में मनुष्य के हाथ और पैर की हड्डियाँ आड़ी-तिरछी करके रखी थीं, जिसके ऊपर मनुष्य की ही एक खोपड़ी टँगी थी। पूरे कमरे में एक विचित्र-सी श्मशानी नीरवता छाई हुई थी और उसी के साथ बिखरी हुई थी एक असहनीय दुर्गन्ध भी।

मेरा जी मिचलाने लगा। मगर किसी प्रकार अपने को संयत कर मैंने पूछा—
“यह सब क्या है नरेश। मेरे ख्याल से यह सब अघोरपन्थियों का ...।

मेरे वाक्य को उसने पूरा न होने दिया। बीच में ही बोल पड़ा—“ठीक ही समझा तुमने चक्रपाणि। अघोर तांत्रिक-साधना की यह पद्धति को अपनाकर मैंने जीवन को नरक बना डाला है।”

“तो क्या तुम अघोर साधक हो ?” सकपका कर पूछा मैंने और उसी के साथ एक बार देखा उसकी ओर।

“हाँ। चक्रपाणि। मैं अघोर साधक हूँ।

बिल्कुल अघोरी। तभी तो इतनी गन्दगी में रहता हूँ मैं। यह सब गन्दगी ही मेरी जिन्दगी है, शर्मा। वर्ना, मैं कभी का मर चुका होता। वह राक्षसी न जाने कब की खा गयी होती मुझे।”

काफी रहस्यमयी लगी मुझे नरेश मण्डल की बात। मैं कमरे के बाहर निकल आया और आकर दालान में रखी एक कुर्सी पर बैठ गया।

“वह राक्षसी कौन है ?” मैंने पूछा।

राक्षसी शब्द सुनते ही एकबारगी नरेश चौक-सा पड़ा। ऐसा लगा, मानों नींद से अचानक जग गया हो। फिर फुसफुसाहट के स्वर में बोला—“बतलाता हूँ। सब कुछ बतलाना ही पड़ेगा तुमको। ...तुम तो जानते हो ही कि मैं ज्योतिष में रिसर्च करना चाहता था और मैंने रिसर्च किया भी। काफी मनोयोग से मैंने खोज और शोध-कार्य किया है ज्योतिष में। ज्योतिष से संबंधित ढेर सारी पुस्तकें एकत्र कीं मैंने। योग-तंत्र-ज्योतिष से संबंधित पुस्तकों और दुर्लभ पाण्डुलिपियों का संग्रह जैसा मेरे पास, है वैसा बिरले ही किसी के पास होगा। मगर चक्रपाणि, इन सब के बावजूद मुझे कभी-कभी ऐसा अनुभव होता था कि मेरा ज्ञान अधूरा है। मेरी खोज भी अधूरी है। जब कभी मैं ऐसा सोचता था उस समय मेरी मानसिक स्थिति एक प्रकार से पागलों-सी

हो जाती थी।”

थोड़ा रुक कर नरेश आगे बोला—“एक दिन ऐसी ही स्थिति में काशी के अहिल्याबाई घाट की सीढ़ियों पर गालों पर हाथ धरे मौन साधे बैठा हुआ था, तभी मेरी दृष्टि एक महात्मा पर पड़ी। लम्बी-चौड़ी काठी के थे वे महात्मा। काफी प्रभावशाली व्यक्तित्व था उनका। गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए थे। पैरों में खड़ाऊँ पहने थे और हाथ में कमण्डल था। सिर पर जटा-जूट था और काफी लम्बी दाढ़ी थी। गले में रुद्राक्ष की कई मालायें भी पहने थे वह।

जब मेरी नजर उन पर पड़ी तो ऐसा लगा कि वे मानों मुझको काफी देर से निहार रहे हों। मेरी नजर उनसे मिली, तो उन्होंने सिर्फ मुस्करा दिया। बड़ी ही रहस्यमयी थी वह मुस्कराहट। फिर धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़कर वे मेरे करीब खड़े हो गये और गम्भीर स्वर में मैं बोले—“तुम ज्योतिषी हो न!” मैंने हाथ जोड़कर कहा—“हाँ महाराज। अनुमान सत्य है। काफी समय से ज्योतिष का अध्ययन और चिन्तन-मनन कर रहा हूँ मैं।”

“मगर बेटे।” महात्मा बोले—“बिना इष्ट-सिद्धि के ज्योतिष अपना कार्य नहीं करता। फिर कलियुग में ज्योतिष विद्या भी तो अधूरी ही है। “आपका कहना ठीक है महाराज। मगर इष्ट-सिद्धि कैसे प्राप्त होगी। कौन-सा इष्ट करना चाहिये मुझे, यह कैसे ज्ञात होगा मुझे।”

“मेरी बात सुन कर महात्मा कुछ क्षण मौन रह कर बोले—“तू बेटा, इष्ट-सिद्धि करेगा।”

“हाँ महाराज। मैं इसके लिये तैयार हूँ। आप मुझे आज्ञा दें।”

“अच्छा ठीक है। तू डाकिनी विद्या की सिद्धि कर—महात्मा बोले—“इस विलक्षण सिद्धि के द्वारा ज्योतिष-गणना के आधार पर तू जो भी बोलेंगा, जो भी कहेगा और जो भी भविष्यवाणी करेगा वह सब सत्य होगा। कहीं कोई त्रुटि न होगी।” महात्मा की यह बात सुन कर चक्रपाणि मेरा मन-मयूर एकबारगी नाच उठा। नये उल्लास से भर गया मेरा चित्त। लपक कर मैंने महात्मा के दोनों चरणों पर अपना माथा टेक दिया और फिर उनके साथ उसी समय चल दिया मैं।”

“महात्मा का नाम क्या था, यह तो तुमने बतलाया ही नहीं।” उत्सुकता से पूछा मैंने।

“दिव्यानन्द। स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती था नाम उनका।”

नरेश ने जवाब दिया।

“ऐ दिव्यानन्द ! एकबारगी चौंक पड़ा मैं। दिव्यानन्द से मैं भली-भाँति परिचित था। कुछ समय तक उनके सम्पर्क में रह भी चुका था मैं। मगर यह बतलाया नहीं मैंने, नरेश मण्डल को फिर क्या हुआ ? पूछा मैंने।

“स्वामी जी के साथ मैं दो-तीन साल तक तो तीर्थयात्रा करता रहा। फिर वे मुझे आसाम ले गये। वहाँ एक पहाड़ी इलाके में उनका अपना एक छोटा-सा आश्रम था, जिसके एक तरफ ऊँचे-ऊँचे पहाड़ थे और सामने की तरफ जंगलों का सिलसिला

था। जंगल के बीचोबीच एक पहाड़ी नदी बहती थी। काफी सुन्दर और शान्त स्थान था वह। मेरा मन रम गया। मैं आश्रम में रहकर तांत्रिक विधि से डाकिनी साधना करने लगा। स्वामी जी निस्सन्देह उच्च कोटि के योगतंत्र-साधक थे। निश्चय ही उन्हें कई दुर्लभ सिद्धियाँ प्राप्त थीं। वे प्रायः ध्यान-मग्न रहा करते थे। उनके साथ मेरे अलावा एक युवती भी रहती थी, नाम था योगेश्वरी। सचमुच, वह योगेश्वरी ही थी। आयु अधिक नहीं थी। बस समझ लो, यही लगभग १८-२० वर्ष की रही होगी वह। अत्यधिक आकर्षक और अनिन्द्य सुन्दरी थी वह। हमेशा उसके घने, काले बाल खुल कर बिखरे हुए रहते थे पीठ पर। जब वह ध्यान लगा कर आसन पर बैठती, उस समय उसका मुखमण्डल दिव्य यौगिक आभा से दमकने लगता था। एक दिन स्वामी जी के यहाँ वैसी ही सुन्दर और आकर्षक चार-पाँच नवयुवतियाँ आश्रम में न जाने कहाँ से आ गयीं। उन सभी युवतियों का रंग-रूप और आयु समान थी। वे युवतियाँ कौन थीं और कहाँ से आयी थीं, यह समझ में नहीं आया मेरे। मगर जब स्वामी जी ने बतलाया कि वे सब युवतियाँ डाकिनी हैं, तो यह सुन कर एकबारगी मेरा सारा शरीर रोमांचित हो उठा भय से। मगर फिर भी विश्वास नहीं हो पा रहा था कि वे युवतियाँ डाकिनी हैं। बार-बार मेरे मन में यही प्रश्न उठता था कि डाकिनी तामसिक लोक की सूक्ष्म शरीरधारिणी प्राणी होती हैं। वे कैसे इन युवतियों के रूप में यहाँ आ सकेंगी। पर चक्रपाणि बाद में विश्वास करना ही पड़ा मुझे। पूरे दिन तो स्वामी जी न जाने किस भाषा में उन युवतियों से वार्तालाप करते रहे। जब साँझ हुयी तो उन्होंने मुझसे चने का दाल-भात और मछली पकाने को कहा। मैं असमंजस में पड़ गया। सारे समान तो थे, मगर मछलियाँ नहीं थीं। उन्हें कहाँ से लाता मैं। अभी मैं यही सोच रहा था कि तभी एक युवती बोल पड़ी—“अरे नरेश। तू काहे को परेशान होता है। नदी में तो काफी मछलियाँ हैं जाकर ले आ।” “अगर नदी में मछलियाँ होतीं तो मैं कभी का न ले आया होता।” मैंने कहा।

युवती हँस पड़ी, मेरी बात सुनकर। फिर बोली—“पहले जा कर देख तो ...” मैं झोला लेकर नदी पर गया, तो देखा—सचमुच काफी संख्या में पानी के ऊपर मछलियाँ तैर रही थीं। खैर, मछलियों को पकाया और सारा भोजन तैयार हो गया, तो एक पंक्ति में सभी युवतियाँ बैठ गयीं और उनके सामने पत्तल पर भोजन परोस दिया गया। वे सभी एकसाथ खाने लगीं। कभी दाल-भात खातीं, तो कभी मछली को चबर-चबर चबातीं। खाने का उनका ढंग विचित्र था।

उस समय मैं घोर आश्चर्य से भर उठा जबकि मैंने देखा कि वे सभी युवतियाँ भोजन समाप्त होते ही अपने-अपने स्थान पर बैठी-बैठी ही अचानक गायब हो गयीं। अब मुझे पूरा विश्वास हो गया कि वे सब डाकिनी ही थीं। इतनी सारी कथा सुनाने के बाद नरेश बोला—“आओ मेरे साथ।” यह कहकर वह उठ खड़ा हुआ और मुझे लेकर एक दूसरे कमरे में गया। उस कमरे में भी गहरा अंधकार छाया हुआ था। नरेश ने जेब से माचिस निकाल कर कोने में रखा तेल का दीपक जलाया, जिसकी स्याह पीली रोशनी में सबसे पहले मेरी नजर जिस वस्तु पर पड़ी वह थी एक लम्बी-चौड़ी

चौकी। कीमती लकड़ी की थी वह चौकी, जो ऊपर से लाल मखमली चादर से ढकी हुई थी। लगा मानों कोई उस मखमली चादर को ओढ़े इत्मीनान से गहरी नींद में सो रहा हो। नरेश मुझे लेकर धीरे-धीरे उस चौकी के करीब पहुँचा। फिर बोला— “चक्रपाणि। यही मेरी अघोर साधना का रहस्य है, जिसे मैं तुझको बतलाना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम तंत्र की कई रहस्यमयी साधनाओं से परिचित हो और तिब्बत भी हो आये हो इसी सिलसिले में। मगर मैं तुमको जो रहस्य बतलाऊँगा वह सर्वथा विलक्षण और आश्चर्यजनक होगा। हो सकता है इस रहस्यमयी कथा पर सहसा कोई विश्वास ही न करे। इतना कह कर नरेश ने आहिस्ते से उस मखमली चादर का एक हिस्सा हटा दिया।

हे भगवान ! यह तो लाश है। किसी सद्यः युवती की लाश।” एक प्रकार से चीखते हुए बोला मैं। एकबारगी भय से रोमांचित हो उठा मेरा सारा शरीर। केवल सिर का भाग ही दिखलायी दे रहा था। लाश के चेहरे पर किसी प्रकार की विकृति नहीं थी। आँखें बंद थीं। घने काले बाल खुलकर नीचे की ओर बिखरे हुए थे। चेहरे पर लालिमा थी और होंठ भी गुलाबी थे। ऐसा लगता था मानों युवती किसी मधुर सपनों में खोई हुयी गहरी नींद में सो रही है।

मेरा भय शनैः-शनैः कम होता जा रहा था। नरेश ने हाँले से चादर को और नीचे की ओर सरका दिया। लाश पूरी तरह नग्न थी। अब मैं लाश की कमर तक का हिस्सा देख रहा था। सचमुच युवती अत्यधिक सुन्दर और कमनीय थी। उसके मधु-कलश जैसे उभरे हुए वक्ष और उसकी सुगठित देह-यष्टि को देख कर भला कौन कह सकता था कि वह मर चुकी है और काल का ग्रास बन चुकी है। काफ़ी देर तक अपलक निहारता हुआ मैं उस मृत सौन्दर्य का रसपान करता रहा। तभी मुझे नरेश का भाव-विह्वल स्वर सुनाई दिया। वह कह रहा था— “यह जीवित शव है चक्रपाणि।”

अरे ! ऐसा क्या कहा तुमने चौक कर आश्चर्य-भरे स्वर में बोला मैं।

“हाँ चक्रपाणि, मैं सत्य बोल रहा हूँ। यह जीवित शव है।” फिर थोड़ा रुक कर आगे कहा उसने— “जानते हो। किसका शव है यह ? योगेश्वरी का है।” कहीं तुम पागल-वागल तो नहीं हो गये नरेश। यह सब कैसे सम्भव है।” मैंने कहा।

“मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह पूर्ण सत्य है चक्रपाणि। यह योगेश्वरी है। स्वामी दिव्यानन्द की महाभैरवी।”

मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। मैं मुँह बाये देखता रहा नरेश की ओर। नरेश कहता गया— “यह सच है कि योगेश्वरी की मृत्यु हो चुकी है। जब मैंने पहली बार दिव्यानन्द के आश्रम में उसे देखा था उसके पहले ही वह मर चुकी थी। उसकी आत्मा से उसका संबंध टूट चुका था। जब योगेश्वरी की अवस्था सोलह वर्ष की थी, तभी दिव्यानन्द ने उसको भैरवी तांत्रिक दीक्षा दी और उसके गुह्यांगों की पूजा की। तत्पश्चात् उन्होंने योगेश्वरी पर किसी भयानक डाकिनी का आवाहन किया। आवाहन करते ही डाकिनी का प्रवेश हो गया योगेश्वरी की कंचन काया में, मगर वह डाकिनी के भार को वहन न कर सकी। योगेश्वरी की आत्मा भी सहन न कर सकी डाकिनी की

तामसिक शक्ति को। परिणाम यह हुआ कि योगेश्वरी मर गयी, मगर उस डाकिनी ने योगेश्वरी की देह को नहीं छोड़ा। वह हमेशा के लिये उसी में रह गयी।

“फिर क्या हुआ ?”

“होगा क्या। एक रात जब दिव्यानन्द साधना में बैठे हुए थे, योगेश्वरी के शरीर में प्रविष्ट डाकिनी ने उनका गला दबा कर मार डाला। हत्या कर दी उसने दिव्यानन्द की। यह घटना मेरे सामने घटी थी। योगेश्वरी मर चुकी है और उसकी मृत काया में डाकिनी का वास है।”

अपने निर्णय-अनुसार अमावस्या की साँझ को मैं पहुँच गया नरेश मण्डल के घर पर।

वह अखबार का कागज जलाकर केतली में चाय बना रहा था उस समय। मुझे देखकर एकबारगी चौंक पड़ा। बोला—“इस समय तुम कैसे आये।”

“आना ही पड़ा। मगर क्यों आया हूँ, यह तुमको नहीं बतलाऊँगा मैं। बस इतना समझ लो कि आज की पूरी रात तुम्हारे साथ ही रहने का निर्णय किया है मैंने।” मेरी बात सुनकर एकबारगी चेहरा पीला पड़ गया नरेश मण्डल का। हकलाते हुये बोला—“तुम ...तुम ...मेरे साथ रहोगे ...आज की रात ...।”

“हाँ” संक्षिप्त सा उत्तर दिया मैंने।

“मगर तुम तो जानते हो कि ...”

“जानता हूँ, तभी तो आया हूँ। क्या तुम मुक्त नहीं होना चाहते उस डाकिनी से।”

मेरी बात सुनकर नरेश आगे कुछ बोला नहीं। चुपचाप चाय बनाने लगा। मैं उसके बगल से होकर ऊपर उस कमरे में चला गया, जहाँ योगेश्वरी की लाश रखी थी। कमरे के वातावरण में गहरी शान्ति छायी हुई थी। मैंने कुछ क्षण खड़ा रहने के बाद लाश पर की चादर धीरे से हटा दी। सिर पर हाथ रख कर देखा वह गर्म था। मेरा अनुमान सही निकला। डाकिनी का प्रवेश होने ही वाला था—योगेश्वरी की काया में। दूसरे क्षण मैंने लाश के पैरों के अँगूठे को एक दूसरे से सटाकर काले धागे से बाँध दिया कस कर। लाश के मुँह से एक जोर की चीख निकली। चीख काफ़ी भयानक थी, जिसे सुनते ही नरेश दौड़ा हुआ कमरे में आ गया। जोर-जोर से हाँफ रहा था वह। जैसे ही उसने कमरे में प्रवेश किया उसी क्षण अँगड़ाई लेती हुई योगेश्वरी उठ बैठी। ऐसा लगा, जैसे वह गहरी नींद से जाग कर अलसायी हुई उठी हो और उठते ही उसने मेरी ओर जलती हुई आँखों से देखा और बँधे हुए अँगूठे की ओर फिर देखकर कहा “इसने तो मुझे मंत्र से बाँध रखा है” और इतना कहकर झट से धागे को तोड़ दिया उसने एक झटके के साथ।

अब जमीन पर खड़ी हो गयी योगेश्वरी। अपने सामने एक युवती की सर्वांग जीवित लाश को देखकर रोमांचित हो गया मैं। एकबारगी सन-सन-सा उठा तन-मन। एक बार फिर से हँसी योगेश्वरी और फिर दौड़ कर लिपट गयी नरेश के शरीर से। नरेश भी उन्मत्त-सा हो गया उस समय तक। मेरी उपस्थिति का जैसे आभास ही नहीं

रहा उसे। योगेश्वरी के देह को आलिंगन बद्ध कर रति-क्रिया में लीन हो गया वह। काफी देर तक सम्भोग-लीला चलती रही और होता रहा काफी देर तक काम-यज्ञ।

उस समय मैंने काम का जो विलक्षण व्यापार देखा, वैसा किसी मनुष्य के द्वारा कदापि सम्भव नहीं। कोई पारलौकिक शक्तिसम्पन्न तांत्रिक ही कर सकता है वैसा सम्भोग। अन्त में मैंने देखा—नरेश मण्डल शिथिल होकर एक ओर लुढ़क गया था और उसके मुँह से खून मिला हुआ सफेद झाग निकल रहा था और योगेश्वरी की जीवित लाश फिस्-फिस् कर हँसती हुई अपने स्थान पर आकर लेट गयी थी।

अब मैं एक क्षण विलम्ब नहीं करना चाहता था। लपक कर मैं लाश के करीब पहुँचा और पहले से ही हाथ में ली हुई कैंची से उसके सिर के सारे बाल कच-कच कर काट डाले और जलती हुई आग में डाल दिया उसे। बालों के जलते ही, कमरे में एक भयानक चीख गूँज उठी। वह डाकिनी की चीख थी, इसमें सन्देह नहीं।

सबेरा होने वाला था। मैंने देखा—योगेश्वरी की लाश धीरे-धीरे विकृत होने लगी थी। सारा शरीर काला पड़ने लगा था और उसी के साथ कमरे में सड़ी हुई लाश की दुर्गन्ध भी फैलने लगी थी। डाकिनी का संबंध हमेशा के लिये टूट चुका था योगेश्वरी के पार्थिव शरीर से। नरेश मण्डल भी हमेशा के लिये मुक्त हो गया था उस भयंकर डाकिनी के चंगुल से।

मैं तुरन्त जाकर पाण्डेय जी को बुला लाया और उनकी सहायता से नरेश को अस्पताल पहुँचाया। पूरे पन्द्रह दिनों तक बेहोश रहा वह। काफी इलाज हुआ, अन्त में बच ही गया उसका प्राण। मगर उसकी प्राण-रक्षा करने में मेरी जो शक्ति व्यय हुयी, उसकी पूर्ति आज तक नहीं हो पायी है।

वास्तव में तंत्र की साधना, शक्ति-साधना है और उस साधना के बल पर साधक को अवश्य पारलौकिक शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं, मगर उन शक्तियों से कैसे काम लेना चाहिये, यह भी जानना आवश्यक है। जो साधक यह नहीं जानता, उसकी वही गति-मति होती है जैसी नरेश मण्डल की हुई थी। रही मेरी बात। मैं शक्ति-साधक अवश्य हूँ, मगर मेरा मार्ग योगपरक तंत्र का मार्ग है। यही कारण है कि अदृश्य आत्माओं और तमोमयी पारलौकिक शक्तियों की ज्वालामुखी के बीच रहते हुए भी मैं और मेरी आत्मा सदैव अप्रभावित ही रहती हैं।

“आजकल नरेश मण्डल कलकत्ता में हैं। कालीघाट के एक मकान में एकान्त-वास कर रहा है और ज्योतिष पर पुस्तक लिख रहा है। पिछले साल दिसम्बर में जब मैं कलकत्ता गया था, तो उससे मिला था। जब मैंने मासिक पत्रिका सच्ची कहानियाँ की प्रति उसको दी, तो वह एकबारगी चौक पड़ा अपने संबंध में पढ़कर। फिर बोला—“यह सब तो ठीक है, मगर मेरा पता किसी को मत देना, वरना मेरी शान्ति भंग हो जायेगी। कलकत्ता में तुमको हजारों लोग जानते हैं। वे लोग आकर मुझसे तरह-तरह के प्रश्न करने लग जायेंगे यह सब मैं नहीं चाहता।”^१

१. नरेश मण्डल अब इस संसार में नहीं हैं। उसका मकान और उसकी सारी पुस्तकें एक धार्मिक संस्था को दे दी गयी हैं—लेखक !

मैं छली गयी

सन् १९४२ ई०। बंगाल और आसाम का सीमांत प्रदेश। जब मैं बगल में कैमरा लटकाये और हाथ में अटैची लिये इंटर क्लास के कंपार्टमेंट से उस छोटे से रेलवे स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर उतरा तो उस समय दिन के दो, बजे थे। सावन-भादों का महीना था। स्याह आकाश में काले-भूरे बादल छाये हुए थे। छोटी-मोटी बूँदें गिर रही थी। पुरवा हवा के लय पर पेड़-पौधे झूम रहे थे। स्टेशन मास्टर से पूछने पर मालूम हुआ कि वहाँ से लगभग ३०-३५ मील दूर है हमीरपुर। रास्ता पथरीला है। केवल घोड़ा-गाड़ी ही जा सकती है वहाँ तक और कोई साधन नहीं है सवारी का।

लगातार ४० घंटे की लंबी यात्रा के कारण शरीर क्लान्त और चित्त अप्रसन्न हो गया था मेरा। स्टेशन मास्टर बंगाली सज्जन थे। नाम था विपिन बाबू। ४५-५० की आयु, काला भुजंग रंग और थुल-थुल शरीर, कोहड़े जैसा गंजा सिर। गँजेड़ियों जैसी रक्ताभ आँखें, मझोला कद। कुल मिलाकर विपिन बाबू का व्यक्तित्व हास्यास्पद ही था। मेरी अवश दशा देखकर शायद उनके मन में मेरे प्रति दया उपज आयी। अतः उन्होंने एक रात मेरे ठहरने की व्यवस्था स्टेशन से लगे अपने छोटे से क्वार्टर में कर दी। फिर शाम को कोचू-डांटा की सब्जी-भात खाकर जो सोया तो बस सवेरे ही नींद खुली मेरी। लेकिन जब चलने की तैयारी करने लगा तो आकाश में अचानक बादल घिर आये और उद्दाम हवा के साथ झूम-झूमकर बारिश होने लगी। फिर तो पूरे दिन घनघोर बारिश होती रही। पानी बंद होने का नाम ही नहीं ले रहा था। विपिन बाबू ने बतलाया—इधर इसी तरह वर्षा होती है। शुरू होती है तो जल्दी बंद होने का नाम ही नहीं लेती।

लाचार होकर फिर रुकना पड़ा मुझे। विपिन बाबू की ड्यूटी उस दिन रात में थी। शाम को खाना खाकर वे स्टेशन चले गये। इन चौबीस घंटों में ही उनके साथ बड़ी घनिष्ठता स्थापित हो चुकी थी। ड्यूटी पर जाते समय वह अपनी पत्नी को मेरी देखभाल के लिये सहेज गये थे। मगर अभी तक उनकी पत्नी से मेरा साक्षात्कार नहीं हुआ। शायद पुराने विचारों की गृहिणी थी वह।

विपिन बाबू के चले जाने के बाद मैं इत्मीनान से आराम कुर्सी पर बैठकर शरतचंद्र का एक बँगला उपन्यास पढ़ने लगा। पास ही विपिन बाबू का लड़का बाटुल खेल रहा था। थोड़ी देर बाद मुझे प्यास लगी तो मैंने बाटुल से एक गिलास पानी लाने के लिये कहा। वह अंदर गया और फौरन ही लौट भी आया। जब मैंने पूछा कि पानी नहीं लाये बेटा तो बच्चे ने जवाब दिया कि माँ ला रही है। मैं फिर तन्मय होकर पढ़ने लगा। थोड़ी देर बाद आहट पाकर मैंने सिर झुकाये नीचे ही नीचे ताका तो धीरे-धीरे निकट आते दो कोमल पैरों पर दृष्टि पड़ी। गोरी-गोरी सुन्दर उँगलियाँ और उन पर झूलता साड़ी का लाल किनारा। दोनों कोमल पैर पास आकर रुक गये।

फिर सामने मेज पर दो सुन्दर कोमल हाथ दिखायी पड़े। एक हाथ में पानी से भरा गिलास और दूसरे में छोटी-सी तश्तरी में बँगला मिठाई। कलाइयों में सोने की चूड़ियाँ और शंख के बलय।

फिर कानों में एक मधुर स्वर गूँजा—पानी पीजिये। मैंने सिर उठाकर देखा—सामने एक सुन्दर युवती सिर झुकाये खड़ी थी। पहली ही दृष्टि में मुझे जिसने आकृष्ट किया—वह था उसका रूप-सौन्दर्य। जिसमें यौवन की चंचलता नहीं थी। वैसा कोई उत्ताप भी नहीं। बल्कि उसमें एक कुलीन गृहलक्ष्मी का गांभीर्य, माधुर्य, कमनीयता व लावण्यता थी। साड़ी के लाल चौड़े पाद का अँचल सिर के बाल तक था। चौड़े ललाट पर लाल सिन्दूर का गोल टीका चमक रहा था। और दमक रही थी दप-दप करती माँग में लाल सिन्दूर की रेखा। एकाएक मन में श्रद्धा उमड़ पड़ी।

मिठाई खाकर पानी पी लिया मैंने। लेकिन उसके बाद फिर मन पढ़ने में नहीं लगा मेरा। एक हास्यास्पद व्यक्तित्व वाले साधारण और अधेड़ उम्र के मामूली से स्टेशन मास्टर की पत्नी ऐसी असाधारण रूपसी होगी इसे मैंने भाग्य का चमत्कार ही समझा। गृहलक्ष्मी का नाम था शुचि। सचमुच यह शुचि ही थी—पवित्र, निश्चल और निर्विकार। वह रुकी नहीं, चली गयी। मैंने उन्हें एक शिक्षित और असाधारण महिला पाया। उनको जाते हुए देखता रहा। जैसे वे एक देवी की तरह चली गयी थीं। थोड़ी देर बाद फिर आयीं वे कमरे में। सामने वाली कुर्सी पर बैठ गयीं। फिर वार्तालाप का सिलसिला चल पड़ा। तो मैंने स्पष्ट अनुभव किया कि उस गांभीर्य के पीछे शुचि के मन पर कोई गहरी वेदना छापी हुई है।

मैंने पूछा—आप लेखिका हैं। साहित्यिक हैं ?

उन्होंने पूछा—क्यों, ऐसा ख्याल आपको कैसे आया ?

मैं बोला—आपकी बोलचाल की भाषा से। ऐसी भाषा लेखक और कवि को छोड़कर और कौन भला व्यवहार में लाता है ? उन्होंने हामी भरी। बँगला साहित्य में एम. ए. किया था। कुछ कविता जरूर करती थी, लेकिन घर-गृहस्थी के चक्कर में काफी कुछ नहीं हो पाता। पिता संस्कृत और बँगला के विद्वान थे। इसलिये इतनी पढ़ सकी थी। और आगे भी कुछ पढ़ने की लालसा थी। पर पिता ने शादी कर दी। कुछ-कुछ लिखने भी लग गयी थी। मासिक पत्रिकाओं में कुछ कवितायें प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

उन्होंने भी मेरी सब बातें पूछ लीं कहाँ रहता हूँ ? परिवार में कौन-कौन हैं ? वहाँ क्यों और किसलिये आया हूँ ?

मैंने सब कुछ बतला दिया। और अंत में यह भी बतला दिया कि पिछले १०-१२ साल से योग और तंत्र के कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर व्यक्तिगत रूप से रिसर्च भी कर रहा हूँ मैं। बड़ा ही कठिन कार्य है यह। लेकिन विश्वास है कि सफलता अवश्य मिलेगी कभी न कभी।

उन्होंने कहा—ये दोनों शास्त्र हैं भी अत्यन्त रहस्यमय। सच पूछा जाये तो भारतीय संस्कृति की महिमा इन्हीं शास्त्रों में निहित है। और जब उन्हें यह मालूम हुआ

कि मुझे हमीरपुर जाना है तो वे अचकचा कर पूछ बैठीं, क्यों, किसलिये जाना हो रहा है वहाँ ?

क्यों, आप किसलिये पूछ रही हैं— हँसकर बोला मैं ?

क्योंकि मैं हमीरपुर की ही लड़की हूँ। मेरा पूरा परिवार अभी भी वहीं रहता है—उन्होंने कहा। अच्छा, तब तो आपने राय चौधरी राजा गंगा नारायण का नाम अवश्य सुना होगा। हमीरपुर के बहुत बड़े जमींदार वही थे। अंग्रेजों के समय उनका काफी प्रभाव था।

हाँ, उनका नाम सुना है। मगर अब तो न जमींदारी रह गयी है और न तो अब रह गया है राय चौधरी साहब के खानदान, में कोई चिराग जलाने वाला ही। कभी किसी जमाने का आलीशान महल खँडहरों में बदल चुका है और बदल गया है सब कुछ श्माशान में। कभी वहाँ का वातावरण राग-रंग में हमेशा डूबा रहता था। मगर अब वहाँ गहरी नीरवता और मन, प्राण को शून्य कर देने वाली गहरी उदासी के सिवा और कुछ नहीं रह गया है।

सुना है, छोटी विधवा रानी के भयानक शाप से ही उन उदार और सभ्य राजवंश का सर्वनाश हुआ है ?

मगर इन सब बातों से आपका क्या मतलब ?

मतलब न होता तो बनारस से चलकर इतनी दूर क्यों आता मैं ? थोड़ा हँसकर जवाब दिया मैंने।

क्या वह मतलब मैं जान सकती हूँ—उत्सुक होकर बोलीं वो।

आप सपनों में विश्वास करती हैं ?

हाँ, करती हूँ। कभी-कभी कोई सपना सच भी हो जाता है। मेरा एक सपना है जिसका संबंध हमीरपुर के उसी राजवंश से संबंधित है। मेरा वह सपना कितना सच है, कितनी वास्तविकता है उसमें—यही जानने-समझने के लिये हमीरपुर जा रहा हूँ मैं।

क्या आपको अपने उस सपने पर इतना विश्वास है ?

हाँ, मुझे पूरा विश्वास है। और उस विश्वास की साक्षी है मेरी आत्मा, जिसके आधार पर मेरा पागलमन मुझे इतनी दूर खींचकर ले आया है।

वे मेरी ओर अपलक निहारती हुई बड़े ध्यान से मेरी बातें सुन रही थीं। बोलीं, क्या आप अपना वह सपना मुझे भी बतलायेंगे ?

मैं थोड़ा रुका। एक सिगरेट सुलगायी। फिर बोला—आज कौन-सी तिथि है ?

शायद अष्टमी होगी कृष्णपक्ष की। जिस विधवा रानी के शाप की चर्चा आपने की है, पिछले एक साल से हर अमावस्या की रात में उनकी अशरीरी आत्मा मुझे सपने में दिखलायी देती है।

आपने यह कैसे जाना कि वह आत्मा हमीरपुर के राजवंश की विधवा रानी की ही है ?

उसने स्वयं बतलाया है कि वह हमीरपुर के राजवंश की विधवा रानी राज-

लक्ष्मी हैं।

राजलक्ष्मी का नाम सुनते ही एकबारगी चौंक पड़ीं वो। मुँह बाये मेरी ओर वह इस तरह से देखने लगी मानों मेरी बातों पर उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा हो। बोलीं—हाँ ठीक कहा आपने। यही नाम था विधवा रानी का। पूरे डेढ़ सौ वर्ष हो गये। मगर आज भी सुना है उनकी दुःखी और अतृप्त आत्मा भटक रही है उन खँडहरों में। रात की खामोशी में आज भी उनका आर्तनाद और करुण क्रन्दन सुनाई पड़ता है लोगों को। इतना ही नहीं, कभी-कभी किसी को उनकी भटकती हुई आत्मा भी दिखलायी दे जाती है वहाँ। ...मगर एक बात मेरी समझ में नहीं आयी। वह यह कि आपसे विधवा रानी की अतृप्त आत्मा का सम्पर्क कैसे हो गया ? कैसे दिखलायी पड़ने लग गयी वह आपको सपनों में ?

यह सुनकर हँस पड़ा मैं। बोला—मैंने जिसे सपना कहा है, वह वास्तव में सपना नहीं, बल्कि एक विशेष अवस्था है, जिसे समाधि की अवस्था कहा जा सकता है। कैसे प्राप्त हुई वह अवस्था आपको ?

साधना से। मैंने रिसर्च के अलावा योग और तंत्र के रहस्यमय, गूढ़ और गोपनीय तथ्यों की वास्तविकता से भली-भाँति परिचित होने के लिए जीवन-मरणदायिनी, कठोर योग-तांत्रिक साधना भी की है और उसी साधना-बल से मुझे वह अवस्था प्राप्त हुई है। मैंने कुछ आगे बतलाना चाहा लेकिन तभी बाटुल कमरे में आ गया। बोला माँ, तुम यहाँ हो। पिताजी तुम्हें बुला रहे हैं। बातों-बातों में रात के ग्यारह बज गये। समय का ख्याल ही नहीं रहा।

विषण्ण मन से वे उठीं और भीतर चली गयीं। न जाने कैसा लगा मुझे। विपिन बाबू के प्रति न जाने क्यों मेरे मन में बेमतलब घृणा उत्पन्न हो गयी। काला आदमी बहुत काला और तोंदिया। शरीर का कालापन और तोंद ही विशेष रूप से नज़र आती थी। फिर आँखें लाल सुर्ख, रक्त वर्ण, जैसे कोई गहरा नशा किये हुए हों। उम्र से साफ हो गया कि शुचि देवी उनकी दूसरी पत्नी हैं। पहली पत्नी विवाह के दूसरे वर्ष ही चल बसी थीं। उनसे एक लड़की थी जिसका अब विवाह हो चुका है और वह पिता के पास बहुत ही कम आती-जाती है। लेकिन न मालूम क्यों मुझे यह बड़ा नागवार गुजरा कि ऐसी सुन्दर बुद्धिमती विदुषी स्त्री का पति ऐसा बदसूरत, नशेबाज, रक्त चक्षु और तोंदिल आदमी है।

दूसरे दिन भी मौसम काफी खराब रहा। इसलिये विवश होकर उस दिन भी रुकना पड़ गया मुझे। शुचि देवी ने कहा—बड़ा अच्छा हुआ। इसी तरह मौसम और दो-चार दिन रहे तो अच्छा रहेगा।

क्यों ? मैंने पूछा।

आपका मधुर सान्निध्य तो रहेगा उतने दिनों। हँस कर जवाब दिया शुचि देवी ने।

सचमुच अगले चार-पाँच दिनों तक लगातार बारिश होती रही। पूरा इलाका जल-समाधि में मग्न रहा। मुझे भी प्रसन्नता हुई। चलो कुछ समय और रह लूँगा उस विदुषी

महिला के सम्पर्क में। कहाँ मिलता है बार-बार ऐसा अवसर ? भोजन के समय आग्रह से बुला ले जातीं शुचि देवी मुझको। फिर पास बैठ कर परोस कर खिलातीं। और यह खाइये, वह खाइये करके मुझको बहुत-सा खिला दिया करतीं, जैसे घर पर मेरी भावज या दीदी खिलाया करती थीं। खाने के बाद पानी पीने की आदत मुझे नहीं थी। इसका जब उन्होंने मज़ाक उड़ाया तो मैंने कहा—वैसे तो मैं तीन घंटे बाद पानी पीता हूँ। लेकिन अब तो जगह भी नहीं है। इतना खा लिया है। एक दिन मुझसे रहा नहीं गया। मैं पूछ ही बैठा, आपके पति क्या गाँजा पीते हैं ?

मधुर हँसी के साथ उन्होंने कहा—नहीं। गाँजा नहीं अफीम बहुत खाते हैं। दिन में दो बार। और भारी मिकदार में। मेरे यह पूछने पर कि अफीम से आदमी की तोंद क्या बहुत बढ़ जाती है। उन्होंने कहा—नहीं दूध जो रोज़ ढाई सेर पीते हैं, उसी से तोंद बढ़ी है। आफिस में बैठे रहते हैं। कसरत नहीं करते हैं। इससे भी मोटा होना स्वाभाविक है। उनके उत्तर में किसी किस्म की तित्कता का लेश-मात्र आभास नहीं था। पूर्ण रूप से स्नेह-प्रेम और अपनेपन का आभास था।

दो-तीन दिनों के भीतर ही शुचि देवी मेरे कुछ नज़दीक आ चुकी थीं। एक स्टेशन मास्टर की पत्नी को मैं इसी नाम से पुकारने लगा था। बात यों हुई कि साहित्य और योगतंत्र से संबंधित विषयों की आलोचना के दरमियान एक दिन मैं एकाएक पूछ ब... आपको क्या कह कर पुकारा करूँ ? वह बड़ी सरलता से बोली, जो आपकी इच्छा हो।

मैंने इस पर कहा, अगर आप को बुरा लगे तो। उन्होंने फौरन कहा नहीं, ऐसी उम्मीद नहीं करती मैं आपसे। मैं जानती हूँ कि आप ऐसी बात करेंगे ही नहीं जिससे मुझे ठेस लगे।

मैंने कहा—आपका-मेरा परिचय ही कितने दिनों का है और आप मुझे जानती ही कितना है कि मैं कैसा आदमी हूँ—भला या बुरा ? इतना भरोसा ठीक नहीं।

उत्तर मिला—भगवान ने औरतों को अन्तर्दृष्टि दी है। जो चीज़ पुरुषों को दिखती नहीं वह स्त्रियों को साफ नज़र आ जाती है। यही मेरे भरोसे की बुनियाद है।

मैंने पूछा—अच्छा, तो ऐसी अन्तर्दृष्टि वाली स्त्री को मैं दीदी कह कर पुकारूँ तो ?

फौरन उत्तर मिला—यह नहीं चलेगा। मैंने आपसे पूरे तीन साल बाद इस संसार को देखा है। आपकी दीदी होने लायक नहीं हूँ। इससे अच्छा होगा कि आप मुझको मेरे नाम से पुकारे सिर्फ़ शु— कह कर।

मैंने कुछ सोच कर संकोच व्यक्त किया और कहा—यह कुछ अटपटा लगेगा। यहाँ कौन आपको आपके नाम से पुकारता है।

उत्तर मिला—एक आदमी पुकारता है उसी नाम से। मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। पूछा—कौन ?

उन्होंने हँसते हुए उत्तर दिया—क्यों, मेरे पति।

मुझे ठेस-सी लगी। उनके पति को मैं देख चुका था। तो क्या मेरा मन उनका अस्तित्व ही अस्वीकार करने लग गया था। नहीं, तो यह सत्य—पति अपनी पत्नी

को उनके नाम से पुकारता ही है—मैं कैसे भूल गया। मैं इसी उधेड़बुन में पड़ गया। इतने में उनकी आवाज़ फिर मुझको उस प्रश्न पर लौटा लायी। तो फिर आप मुझको मेरे नाम “शु” के साथ-साथ मेरे मन के सामने आने लगा—उनका पति नशेबाज़, रक्त चक्षु, तोंदिल, काला भुजंग।

उन्होंने कुछ खुशी के साथ कहा—चलिये। यह भी ठीक है।

पूरा नाम लेना भी अच्छा ही है। और तब से उन्हें मैं शुचि देवी कहने लगा।

शुचि देवी घर-गृहस्थी का काम निबटा कर अक्सर मेरे पास आकर बैठ जाती थीं। उनकी कई कविताएँ बँगला मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थीं। मैं उनसे कहानी लिखने पर जोर दे रहा था। कुछ उन्होंने लिखा भी। इन विषयों पर बातचीत करते-करते दुनिया की बहुत-सी बातों की आलोचना कर चुके थे। आलोचना के विषयों में यह भी था—पुरुष का प्रेम-स्त्री का प्रेम। प्रेम में त्याग और बलिदान मनुष्य को कहाँ तक ऊँचा उठाता है और कहाँ तक इन्सान को गिरा भी सकता है इत्यादि विषयों पर हम ऐसे आलोचना करते थे जैसे दो मित्र करते हैं। इसके अलावा छोटी-छोटी बातों में वह जिद्द करती थीं। ऐसा अपनापन उनके व्यवहार से टपकता था कि मुझे अपनी माँ, दीदी और भावज की याद आ जाती थी कभी-कभी। निःसंदेह वह इतनी करुणामयी, ममतामयी, दयामयी और उच्च विचार की महिला थीं कि दीर्घ अन्तराल के बाद आज इस कथा को तैयार करते समय बरबस उनकी कोमल मधुर छवि मेरे मानस-पटल पर उभर कर आ रही है बार-बार, खैर।

उस दिन रेलवे विभाग की ओर से चेकिंग होने वाली थी। विपिन बाबू की ड्यूटी कड़ी थी। वह दोपहर का भोजन कर स्टेशन चले गये थे। पूरी रात उनके आने की सम्भावना नहीं थी।

दिन भर बूँदा-बाँदी होती रही। लेकिन साँझ होते ही श्यामल आकाश का वक्ष जलाती हुई बिजली चमकी। जलते पारे जैसी तीखी रेखा—और छोरहीन—आसमान के एक कोने से दूसरे कोने तक काँध गयी। हजारों मैग्नीशियम के तारों जैसे प्रखर आलोक से उद्भासित हो गया सारा विस्तार। वातावरण को मथती विद्युत-वाणी गरज कर शान्त हो गयी। फिर बारिश का एकरस शोर। अंधेरे की छाती पर जुगनुओं के जलते-बुझते रहने का खेल। अपने गर्जनों से धरती को कँपाती हुई बिजली फिर कौंधी।

राशि-राशि बिखरे अन्धकार में धुंधले-उजाले का दायरा एक बार सिमट कर फैला और फिर फैलता ही गया। और तभी—हमेशा की तरह कब और किस पल सहज समाधि की उस अवर्णनीय अवस्था में चला गया, पता न चला मुझे और फिर उसी स्थिति में मेरे सामने धीरे-धीरे वही दृश्य उभरने लगा, जिसे मैं कई बार देख चुका था। काफी घने सिवार से भरा विशाल सरोवर जिसके जल में कुछ झड़ कर गिरे कमल के फूल पड़े थे। साथ में कमल के नाल, पत्ते, कमलगट्टे और दो-चार अधखिले फूल भी पड़े हुए थे। सरोवर के पूर्वी-दक्षिणी किनारे पर पतली ईंटों के बने एक मन्दिर का ध्वंसावशेष था। टूटे-फूटे मन्दिर को जहाँ-तहाँ से घेरे हुए थे उसके दोनों तरफ खड़े बरगद और पाकड़ के पेड़। मन्दिर के ठीक पीछे ही हरे, बेल, आंवला,

नीम और कदम्ब के पेड़ थे।

मन्दिर के चारों ओर बँधा हुआ पक्का चबूतरा था। एक तरफ दीवार फोड़ कर पेड़ की जड़ बाहर निकली हुई थी किसी कूबड़ की तरह। टूटे-फूटे चबूतरे के दोनों तरफ काले पत्थर पर खोद कर बनायी हुई दो नारी मूर्तियाँ थीं। चबूतरे के ऊपर भी पेड़ की मोटी जड़ के पास ही एक और मूर्ति थी। देखने से पता चलता था जैसे किसी ने तज धार के अस्त्र से उसे तोड़ दिया था।

फिर आया मेरे सामने पंचवटी आसन। सूखे पत्तों की भरमार। उसी पंचवटी आसन पर मैंने देखा—बैठी हुई हमरीपुर की विधवा रानी, राजलक्ष्मी को। बिना पलक झपकाये मुझे निहार रही थीं वह। क्लान्त चेहरा, राख जैसा रंग और अजीब सम्मोहन से भरी वो निगाह। क्या था उस दृष्टि में, कह नहीं सकता। लेकिन उसे देखकर यह अवश्य लगा कि जैसे वे बड़ी बेसब्री से मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं। मुझ पर दृष्टि पड़ते ही उनके चेहरे का भाव बदल गया और सम्मोहन से भरी आँखों में ध्रुव तारे जैसी चमक आ गयी। उसी के साथ बिखर गयी हल्की-सी मुस्कराहट भी गुलाबी होठों पर।

आ गये। तुम्हारा ही इंतजार कर रही थी। मुझे पूरा विश्वास था कि तुम अवश्य आओगे एक बार यहाँ। पल भर रुक कर बिल्कुल मध्यम और कोमल स्वर में आगे बोलीं वह—आसपास कोई गाँव नहीं है। यहाँ कोई नहीं रहता सिर्फ मैं ही रहती हूँ। पूरे एक सौ पचास वर्षों से रह रही हूँ मैं यहाँ, इस निर्जन-सुनसान और बियावान इलाके में और फिर अजीब से स्वर में हँसी वह। बड़ी भयानक और साथ ही बड़ी मर्मस्पर्शी लगी मुझे वह हँसी। एकाएक उनकी मुख-मुद्रा गम्भीर हो गयी। कुछ देर मौन रहीं। फिर बोलीं—सुनोगे ! पीड़ा में डूबी हुई, वेदना से भरी हुई मेरी व्यथा-कथा, बोलो कब सुनोगे तुम ? जानते ही हो मेरे जीवन की व्यथा-कथा एकमात्र ऐसी अतृप्ति की दारुण कथा है जिसके कारण मैं इतने वर्षों से भटक रही हूँ इस निर्जन सुनसान इलाके में। कोई तो सुनने वाला है नहीं तुम नहीं सुनोगे, नहीं समझोगे, तो सोचो क्या होगी मेरी परिणति ? इतने विचार और इतनी भावनायें इकट्ठी हो गयी हैं कि उनके बोझ से दबी जा रही हूँ मैं। प्राण अकुला उठे हैं मेरे। क्या तुम मेरी पुकार नहीं सुनोगे ?

मेरा जीवन शून्य तो है ही, मेरी आत्मा को जो आघात लगा है। जो चोट लगी है उसने ज्येष्ठ, बैशाख की रेगिस्तानी आँधी की तरह मेरे अन्तर को एकबारगी झुलसा दिया है, मेरी कामनाओं को और मेरी आकांक्षाओं को राख कर दिया है। चारों ओर शून्य ही शून्य के सिवाय और कुछ नहीं है। बाहर आयेगी कभी—इसकी आशा नहीं है अब मुझे। पहले भी नहीं थी। फिर भी मैंने उजड़े जीवन को अपनाते का संकल्प कर लिया था। जीवनरूपी जो अभिशाप मिला था उसे बिना प्रतिरोध के मैंने स्वीकार कर लिया था। मगर तभी अप्रत्याशित रूप से एक ऐसी घटना घट गयी, जिसने मेरे टूटे-बिखरे मन में एकबारगी हाहाकार उत्पन्न कर दिया। जानते हो बन्धु। यह अभिशप्त और दारुण जीवन उसी का परिणाम है। उसी का फल है क्या तुम मेरे इस अभिशप्त और दारुण जीवन से मुझे मुक्त नहीं करा सकते। यही कामना लेकर

मैं पहली बार तुमसे मिली थी। याद है ना बोलो, कहीं भूल तो नहीं गये हो मेरी याचना को ?

नहीं, मैं भूला नहीं था। भला भूल भी कैसे सकता था। उस दुःखी आत्मा की पावन पुकार को। पुकार का तिरस्कार करने की सामर्थ्य मैं कहाँ से लाता। उसकी भावना को मैंने अपनी आत्मा के इतने निकट और इतने समीप पाया कि हृदय विचलित हो उठा था।

उस दिन की तरह सावन-भादों के काले-भूरे बादल आकाश में छाये हुए थे। निविड़ कालिमामयी अमावस की रात। वातावरण में गहरी निस्तब्धता। केवल बारिश का एकरस शोर ही सुनायी दे रहा था। अराजकता-भरी रात के उस नीरव निस्तब्ध वातावरण में। एकाएक दिगन्त में कड़कड़ाती हुई बिजली कौंधी। काँप-काँप गया आकाश। सहसा मेरे कमरे का बन्द दरवाजा फटाक से खुला और गीली बरसाती हवा का एक तेज झोंका आया और ठण्डी हवा भीतर फैल गयी। उसी के साथ पूरे कमरे में बिखर गयी एक विशेष प्रकार की अवर्णनीय और अनिवर्चनीय सुगन्ध भी।

मैं उस समय बिस्तर पर लेटा कोई पुस्तक पढ़ रहा था। वह सुगन्ध इतनी तीव्र थी कि मेरा ध्यान टूट गया पढ़ने की ओर से। कैसी थी वह सुगन्ध ? कहाँ से आयी थी वह ? और तभी मेरी दृष्टि सामने दरवाजे पर पड़ी। देखा, वहाँ एक युवती खड़ी थी। बड़ी ही सुन्दर थी वह युवती। कमरे में जल रहे पच्चीस पावर के बल्ब के हल्के पीले प्रकाश में भी उसका रूप और अधिक उज्ज्वल हो कर जगर-मगर कर रहा था। सुध-बुध खोकर मैंने उसकी ओर जो देखा तो बस देखता ही रह गया। रसवन्ती देह—दूधिया ललाई लिये हुए। रंग—उग्र यौवन की दीप्ति से दप-दप करता हुआ तेजोमय मुखमंडल। काली भौराली आँखें, कोमल रक्ताभ होंठ, कुसुम कोमल गालों पर बिखरे लावण्य के कण, उन्नत उरोज और क्षीण कटि। कुल मिला कर अपूर्व सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा। हजार प्यालियों के नशे से मदहोश उन रतनारी आँखों में कौन-सा ऐसा आकर्षण था, कौन-सा ऐसा सम्मोहन था जिसने मुझे एकबारगी अवाक्, स्तब्ध और पाषाणवत बना दिया था उस समय। और कैसा था वह सौन्दर्य जिसने मेरी अन्तरात्मा को लक-दक उजले से एकबारगी उद्भासित कर दिया था उस भयानक बरसाती रात में। तभी वज्र स्वर में आसमान फट पड़ा और जोर-शोर से मूसलाधार बारिश होने लगी। पिशाचिनी जैसी काली रात और अधिक भयानक हो उठी।

अचानक फिर बिजली चमकी। दूर दिगंत तक चमकीली रेखा खिंच गयी और उसी के साथ मेरा सम्मोहन भी भंग हो गया।

कौन है यह इस अराजकता-भरी रात में ? भय, विस्मय और संशय के मिले-जुले भाव से भर गया मेरा मन। उस निविड़ काली, गीली रात में उस रूपांगना की इस तरह की उपस्थिति बड़ी ही विचित्र लगी मुझे।

पूछा—आप! कौन हैं आप ?

सहसा मस्तिष्क में कुछ कौंध-सा गया। फिर समझते देर न लगी मुझे। सब कुछ स्पष्ट हो गया मेरे सामने। वह हमीरपुर के राजवंश की विधवा रानी राजलक्ष्मी की

अशरीरी आत्मा थी, जो कुछ समय के लिये अपने पूर्व भौतिक शरीर में प्रकट हो गयी थी।

कहने की आवश्यकता नहीं कि वह मेरे लिये कोई नयी और आश्चर्यजनक घटना नहीं थी। उसके पहले भी इस प्रकार कई अशरीर आत्मयें अपने मनोबल से भौतिक शरीर में मेरे सामने प्रकट हो चुकी थीं और सुना चुकी थीं, अपनी व्यथा-कथा। उन सब की तरह राजलक्ष्मी की अशरीरी आत्मा ने भी भौतिक शरीर में प्रकट होकर सुनायी अपनी दारुण कथा मुझको उस रात। सचमुच बड़ी ही मर्मस्पर्शी और करुण कथा थी राजलक्ष्मी के जीवन की। आज की ही तरह उस बरसाती काली रात में भी उन्होंने अपनी मुक्ति की कामना व्यक्त की थी। और अन्त में उनकी काली भौराली आँखों में आँसू उमड़ आये थे। और वह फफक-फफक कर रो पड़ी थीं—दोनों हाथों से अपना चेहरा ढँक कर। खैर! और जब मैं अपनी उस विशेष अवस्था में उबरा और जब मेरी बाह्यचेतना वापस लौटी तो देखा—शुचि देवी मेरे सामने खड़ी भयमिश्रित आश्चर्य के भाव मेरी ओर देख रही थी अपलक। फिर उनके पूछने पर एक-एक कर सारी बातें बतलाई मैंने, जिन्हें सुन कर उनकी आँखें आश्चर्य से फैल गयीं। सहसा विश्वास नहीं हुआ उन्हें। अटक-अटक कर पूछा—क्या मैं राजलक्ष्मी को सशरीर अपनी आँखों से देख सकूँगी ?

हाँ। क्यों नहीं ?

तब तो आपको अमावस्या तक रुकना पड़ेगा यहाँ, अभी दो दिन हैं अमावस्या को।

नहीं, मैं यहाँ उस रात को नहीं ठहर सकता। अमावस्या के रोज हमीरपुर में रहना आवश्यक है मेरे लिये। राजलक्ष्मी को वचन दे चुका हूँ मैं। वे मेरी प्रतीक्षा करेंगी वहाँ।

अगर ऐसी बात है तो मैं भी आपके साथ चलूँगी हमीरपुर।

“मेरे साथ” ?

“हाँ, आपके साथ ही। क्या हर्ज है। हर्ज तो नहीं है। मगर आप अपने पति महोदय से भी तो पूछ लीजिये”—मैंने कहा। “चलिये, अभी पूछ लेती हूँ।” अन्दर वाले कमरे में ले जाकर उन्होंने अपने पति से कहा—“देखो, शर्मा जी के साथ मैं भी हमीरपुर जाना चाहती हूँ। तुम्हें कोई एतराज तो नहीं है ?” विपिन बाबू ने रक्त चक्षु खोल कर देखा। थोड़ी देर पहले ड्यूटी करके लौटे थे। खाने के बाद उन्हें झपकी-सी आ रही थी। विरक्त होकर कुछ नाराजगी से पूछा—क्या कहती हो ?

उन्होंने प्रश्न दुहराया। तब स्टेशन मास्टर महोदय ने हाथ हिलाकर और जबान से भी नहीं, नहीं कहा। मुझे कोई एतराज नहीं है। तुम जा सकती हो। दूसरे दिन पानी थम गया। मगर आकाश में बादल घिरे हुए थे। पुरवैया हवा बह रही थी, मौसम काफी सुहावना था। विपिन बाबू ने कहीं से बैलगाड़ी का इन्तजाम कर दिया था। एक पहर दिन चढ़े हम लोग रवाना हो गये हमीरपुर के लिये। बाटुल की पढ़ाई का हर्ज होगा। इसलिये वह नहीं गया हम लोगों के साथ। पूरे दिन चलती रही बैलगाड़ी। आलू, टमाटर

की सब्जी, अचार और पूड़ी बाँध कर लायी थीं शुचि देवी। दोपहर में रुक कर एक कुएँ पर हम दोनों ने एकसाथ खाना खाया फिर आगे बढ़े।

इतना लम्बा ऊबड़-खाबड़ रास्ता कब और कैसे पार हो गया, मालूम नहीं पड़ा मुझे। पूरे रास्ते एक अवश चेतना-सी छायी रही मुझ पर। पहुँचते-पहुँचते साँझ की कालिमा फैल गयी धरती पर और चारों ओर साँय-साँय करने लगा।

वह सामने जो आम्रकुंज है न, बस उसी के बाद हमीरपुर है। शुचि देवी ने हाथ के इशारे से बतलाया। दूर से वह आम्र-कुंज किसी अतृप्त अभिशप्त वासना का आखेट-स्थल-सा लगा मुझको। सामने एक-बड़ा सा नाला था। वहीं बैलगाड़ी से उतर पड़े हम लोग। किसी तरह नाला पार कर हमने हमीरपुर में प्रवेश किया। काल के विराट पदों से रौंदे हुए अलसाये धूल-धूसरित हमीरपुर की हतश्री बड़ी ही ग्लान और कातर-सी प्रतीत हुई।

छोटा-सा गाँव। चालीस-पचास घर। अधिकतर बंगाली ब्राह्मणों और कायस्थों के। चारों तरफ काफी दूर तक फैले हुए हरे-भरे खेत। खेतों के बगल से लम्बी कतारों में लगे नारियल के कार्फा ऊँचे-ऊँचे पेड़। गाँव को लगभग चारों ओर से घेरे हुए धूमिल आसमान को छूते से और एक-दूसरे से गुँथे हुए बाँस के झुरमुट। मटमैले पानी से भरे तीन-चार अधकच्चे पोखर और गाँव की सीमा से थोड़ा हट कर वक्राकार घूम कर बहती हुई एक पतली-सी नदी। नाम था रूपाक्षी।

गाँव में प्रवेश करते समय साँझ की कालिमा निविड़ अंधकार में बदल चुकी थी। सन्नाटा और भी गहरा हो गया था। सहसा उस गहरी नीरवता को भेदती हुई, भारी स्वर में किसी की आवाज़ सुनायी दी—“मुक्तकेशी मुक्ति पदाव माँ ...।”

कौन है ? किस की पुकार है यह ? मैंने सिर घुमाकर चलते-चलते रास्ते में पूछा शुचि देवी से। एक साधु-महात्मा हैं। नाम है तारानाथ ब्रह्मचारी। अति वृद्ध हैं। कम से कम ८०-९० वर्ष की आयु के तो होंगे ही। पिछले साठ-पैंसठ साल से रह रहे हैं इस गाँव में। रूपाक्षी के किनारे कुटिया है उनकी। माँ के उपासक हैं दिनभर कुटिया में रह कर भजन करते हैं। रात को निकलते हैं एक बार भिक्षा के लिये। सुना है कई तरह की तांत्रिक सिद्धियाँ प्राप्त हैं उन्हें। लेकिन किसी ने अभी तक उनका कोई चमत्कार देखा नहीं। मगर हैं बड़े सज्जन और दयालु साधु—शुचि देवी ने कहा। मगर महात्मा के स्वर में बड़ा दर्द है, बड़ी करुणा है। लगता है माँ के सच्चे उपासक हैं। भेंट होगी कभी उनसे ?

क्यों नहीं ? मेरे घर नित्य रोटी के लिये आते हैं। वहीं भेंट हो जायेगी आप से।

शुचि देवी के परिवार में केवल चार लोग थे। शुचि देवी की माँ, दो बड़े भाई और एक छोटी बहन। पिता को गुजरे हुए काफी लम्बा अरसा गुजर चुका था। माँ साक्षात्कार अन्नपूर्णा थी। सरल स्वभाव, मीठा स्वर और उदार व्यवहार। शुचि देवी ने अपने मकान में ही एक कमरे में मेरे ठहरने की व्यवस्था की थी। हाथ-मुँह धोकर खाना खाने के बाद मैं अपने कमरे में चला गया सोने के लिये। रात का पहला पहर बीत चुका था। मगर मेरे भीतर न जाने कैसी विकलता भर गयी थी उस समय। पूरी

रात करवटें बदलता रहा। नींद नहीं आयी। भोर होते ही तारानाथ ब्रह्मचारी की पूर्व परिचित आवाज़ सुनायी दी—मुक्तकेशी, मुक्ति पदाव ...माँ ...”

चारपाई से उठ कर तुरन्त बाहर निकल आया मैं। साधु बाबा दरवाजे पर खड़े मुस्करा रहे थे। पहली ही दृष्टि में एक उच्च कोटि के सिद्ध साधक लगे वह मुझको। हृष्ट-पुष्ट शरीर, गौर वर्ण, सिर पर जटा-जूट, लम्बी घनी दाढ़ी। चौड़ा मस्तक जिस पर त्रिपुण्ड लगा था और जिसके बीच में लगा था लाल सिन्दूर का गोल टीका। साधना के तेज़ से दप-दप करता हुआ मुख-मण्डल। बड़े-बड़े नेत्र जिसमें करुणा, दया और कृपा का मिला-जुला सागर लहरा रहा था। गले में रुद्राक्ष की मालायें और शरीर पर गेरिक वस्त्र। कुल मिला कर बाबा का व्यक्तित्व भव्य और आध्यात्मिक था।

रूपाक्षी जहाँ वक्राकार घूमती थी वहीं तट के ऊपर थी बाबा की कुटिया। किसी वैदिककालीन ऋषि के तपोवन जैसी थी वह कुटिया, जिसके चारों तरफ केला और कदम्ब के घने वृक्ष थे। सामने बाग था, जिसमें कृष्ण चूड़ा, केतकी, कुन्द और जवा के फूल खिले हुए थे। वातावरण बिल्कुल शान्त और गन्धमय था। जब मैं पहली बार कुटिया पर गया तो मेरे मन को और मेरी आत्मा को अनिर्वचनीय शान्ति मिली थी। बाबा को मेरे हमीरपुर आने के उद्देश्य का जब पता चला तो वे बोले—हमीरपुर राजवंश की कथा बड़ी लम्बी है। वास्तव में वह कथा असमय में हुई एक ऐसी विधवा तरुणी की अनबुझी प्यास की दास्तान है, जिसका इतिहास में कोई उल्लेख नहीं होता। सुलेखक जिन पर कुछ लिखते नहीं, विचारक जिस पर कुछ सोचते नहीं और लोग जिसे भुला देते हैं, याद रखते नहीं। समाज की दृष्टि से यदि देखा जाये तो यह राजवंश की महान कलंक कथा के अलावा और कुछ नहीं है।

कलंक कथा ? आश्चर्य से पूछा मैंने !

हाँ, कलंक कथा ही तो कहा जायेगा, राजकुल की एक विधवा युवती और तरुण सुदर्शन संन्यासी की प्रणय-कथा को। क्षण भर तक मेरे जिज्ञासु चेहरे की ओर ताक कर बाबा ने हाथ में लिये कमण्डलु और भिक्षा-पात्र को चबूतरे पर रखते हुए कहा—इस रूपाक्षी को देख रहे हो न। कितना शान्त और निर्मल जल है इस देव नदी का। इसमें अच्छी किस्म की मछलियाँ काफी होती हैं। अंग्रेजों का जमाना था। उन दिनों कमिश्नर साहब और पुलिस के बड़े-बड़े अफसर चारा डाल कर इसमें मछलियाँ मारने आया करते थे और सुबह के वक्त जंगली बत्तखों का शिकार करने वे लोग झील की तरफ चले जाया करते थे।

कौन-सी झील ?

यहाँ से चार-पाँच मील की दूरी पर है वह झील। उसी झील से यह रूपाक्षी निकली है।

अच्छा, तब ?

राय चौधरी गंगानारायण सिंह की कमिश्नर साहब से दोस्ती थी मगर वह दोस्ती बनावटी थी। भीतर ही भीतर वह अंग्रेज कमिश्नर राय चौधरी साहब से जलता रहता था।

क्यों ?

इसलिये कि राय चौधरी गंगानारायण सिंह के छोटे भाई जिनका नाम विश्व नारायण सिंह था, जूडो-कराटे के चैम्पियन थे। उन्होंने एक क्लब खोल रखा था जिसमें वे सैकड़ों युवकों को जूडो-कराटे का प्रशिक्षण देते थे और साथ ही साथ उन युवकों को अंग्रेजों के विरुद्ध भड़काते भी रहते थे।

एक बार कमिश्नर साहब शिकार पर आये हुए थे। हाथी पर हाँका करा कर नदी के उस पार वाले जंगल में शेर का शिकार करने वाले थे। विश्वनारायण को भी शिकार का शौक था। साहबों के साथ वे भी शिकार पर जाया करते थे। सबने मना किया और कहा कि अभी तुम्हारा गौना भी नहीं हुआ है शिकार पर जा ही कैसे सकते हो तुम ? किन्तु विश्वनारायण जिद्दी था। उसने किसी की न सुनी। अड़ा रहा जाने पर। राय चौधरी गंगानारायण सिंह ने भी उसे काफी समझाया। मगर वह फिर भी नहीं माना और चला गया शिकार पर कमिश्नर साहब के साथ हाथी पर बैठ कर।

पूरा दिन निकल गया। पूरी रात बीत गयी। दूसरे दिन भी शिकारी-दल नहीं लौटा। तब लोग चिन्तित हुए। दोपहर का भोजन कर राय चौधरी गंगानारायण सिंह दुमंजिला के जीने पर से उतर रहे थे। तभी सीढ़ी के ऊपर ही घुड़सवार बशीर से भेंट हो गयी। उसने पैर ठोक कर सलाम किया। राय चौधरी गंगानारायण सिंह ने पूछा— “क्या खबर है बशीर।” विशु के बारे में कुछ पता चला ? वे लोग अब तक शिकार पर से लौटे क्यों नहीं ?”

“महाराज!” कह कर बशीर ने सिर झुका लिया। “क्या बात है ? कुछ बताओ तो सही ? चुप क्यों हो गये तुम ?” राय चौधरी गंगानारायण सिंह उतावले हो उठे।

“हुजूर, छोटे महाराज”—बशीर करुण आर्तनाद कर भराए स्वर में बोला— “छोटे महाराज का इन्तकाल हो गया। कमिश्नर साहब ने गोली चलायी थी शेर पर। मगर लग गयी वह ...।”

“क्या कहाँ ? इन्तकाल हो गया ? गोली लग गयी ?” कह कर राय चौधरी गंगानारायण सिंह बेहोश होकर सीढ़ियों पर ही गिर पड़े।

बशीर उनसे तीन सीढ़ियाँ नीचे खड़ा था। जैसे ही वे गिरने लगे— उसने फुर्ती से आगे बढ़ कर उन्हें सँभाल लिया। सब लोग दौड़े आये। राय चौधरी गंगानारायण सिंह को पलंग पर लिटा दिया गया। राजवैद्य आकर उपचार करने लगे।

पूरे दो घंटे बाद राय चौधरी गंगानारायण सिंह की चेतना वापस लौटी। उस समय उनका चेहरा देखकर बड़ी रानी भी डर गयीं।

राय चौधरी ने पलंग पर बैठ कर एक बार चारों तरफ देखा और फिर आवाज लगायी “दयाराम, दयाराम!”

“हुक्म, हुजूर ?” दयाराम सामने आकर खड़ा हुआ।

“...ले आओ!”

दयाराम इसका मतलब समझता था। वह स्फटिक के पल्ले की अलमारी खोल कर बोतल और गिलास ले आया। बोतल खोल कर वह गिलास में शराब

उड़ेलने लगा।

“नहीं !” जोर की कड़कती आवाज़ से सारी हवेली काँप गयीं “मेरे गले में उड़ेल दे। सारी ज्वाला शान्त करनी है आज।” कह कर वे पूरी एक बोतल कड़ी विहस्की बगैर सोडा मिलाये गटगटा गये। दयाराम तौलिये से उनका मुँह पोंछ कर अगले आदेश की प्रतीक्षा करने लगा।

“सतीश ! सतीश खजांची कहाँ है ? उससे जाकर कहो कि तोशा-खाने में जाकर सब राइफलें निकाल दे। आज उन गोरे साहबों में से कोई बच कर नहीं जायेगा। मेरे साथ भारी धोखा हुआ है।”

ज़रा रुक उन्होंने फिर कहा—“बशीर !”

“जी सरकार ?”

“हाथी तैयार कराओ।”

“हाथी तो सब शिकार पर गये हैं हुजूर !”

“घोड़ा ? क्या घोड़े भी नहीं हैं ?”

बशीर अस्तबल में दौड़ गया। एक बड़े से अरबी घोड़े पर जीन कस कर ले आया। घोड़ा हवेली के पक्के आँगन में पैर पटक-पटक कर टापों की आवाज़ करने लगा। छह गोलियों वाला रिवाल्वर कमर में लटकाये राय चौधरी मुख्य दरवाजे पर आये। फिर थोड़ा रुककर बाहर निकले वह। उनकी बड़ी-बड़ी आँखें जवाकुसुम की तरह लाल थीं। उनके पीछे-पीछे दयाराम था।

घोड़े पर चढ़ने ही लगे थे राय चौधरी गंगानारायण सिंह की हवेली के सामने वाली सड़क के मोड़ पर उन्हें हाथी दिखायी पड़ा। शिकारी लोग लौट रहे थे। एक हाथी पर छोटे सरकार विश्वनारायण सिंह की लाश चादर में लपेट कर रखी हुई थी। साहब लोगों को देख कर घृणा से मुह बिचका लिया राय चौधरी ने। बशीर की ओर देख कर वे बोले—“बशीर ! इन लोगों को अभी जाने को कह दो। वर्ना गोली से उड़ा दूँगा मैं सबको।” यह कह कर क्रोध से काँपते हुए वे हवेली के भीतर चले गये।

थोड़ा रुक कर रूपाक्षी की ओर निहारते हुए बाबा आगे बोले—इस नदी के तट पर चिता जलायी गयी थी छोटे सरकार की। छोटी रानी माँ ने मुखाग्नि दी थी शव को। उस समय उनकी आयु १५-१६ साल से अधिक नहीं थी। जिन गोरे और कोमल हाथों की मेंहदी भी अभी नहीं छूटी थी, उन्हीं हाथों से अपने सुहाग को जलाना पड़ा छोटी रानी माँ को। कितना क्रूर विधान था विधि का ? पति की चिता की परिक्रमा करते समय उनके चेहरे पर किसी भी प्रकार का भाव नहीं था। न शोक का और न ही दुख का। आँखों में आँसू भी नहीं थे।

सात दिन बड़ी रानी भुवनेश्वरी देवी बहुत आग्रह-अनुरोध कर के बड़े सरकार को कुछ खाने के लिये मना पायीं। रानी बोलीं—उस मासूम लड़की का तो ख्याल करो। शादी के बारे में कुछ जानने-समझने के पहले ही विधवा हो गयी बेचारी राजलक्ष्मी।

“क्या ... ? विधवा ?” रो पड़े फफक-फफक कर राय चौधरी गंगानारायण सिंह, फिर बोले—“नहीं। राजलक्ष्मी पहले की तरह ही रहेगी।”

“ऐसा कहीं हुआ है ? हिन्दू विधवा ठहरी वह। उसे सामाजिक नियमों का पालन तो करना ही पड़ेगा।”— बड़ी रानी ने समझाया।

“नहीं-नहीं। मैं नहीं मानता ऐसा समाज और शास्त्र। राजलक्ष्मी और विधवा ? ऐसी सुन्दर गुड़िया-सी बच्ची आज आभूषण रहित हो जाये ? ऐसा नहीं हो सकता। होगा भी नहीं।”—कह कर राय चौधरी कमरे में चहलकदमी करने लगे। फिर उन्होंने आवाज़ लगायी—“दयाराम !”

“हुजूर !”

“सब खिड़कियाँ और दरवाजे बन्द कर दो ताकि राजलक्ष्मी मेरे सामने न पड़े।”

श्राद्ध आदि हो चुकने के बाद बड़े सरकार आकर कचहरी में बैठने लगे। आदेश दे दिया कि छोटी रानी राजलक्ष्मी का पर्चा आते ही फौरन उस पर अमल किया जाये। उनकी स्वीकृति लेने का भी विलम्ब उसमें न किया जाये।

विधवा के रूप में और विधवा के वेश में राजलक्ष्मी का सौन्दर्य वासन्ती पुष्प की तरह और खिल उठा। धीरे-धीरे उस अक्षत यौवना सुन्दरी विधवा को यह अनुभव होने लगा कि उसके जीवन में शून्य के सिवाय और कुछ नहीं है। वह अपने छोटे से पूजा-गृह में दान-ध्यान और पूजा-अर्चना में व्यस्त रहने लगी। सिंहवाहिनी और मदनगोपाल के मन्दिर में ही उसके दिन-रात बीतने लगे।

गाँवभर के लोग अवाक् रह गये। राजलक्ष्मी सचमुच ही पति-परायणा सिद्ध हुई। संयम से रहने लगी वह। दान-ध्यान, व्रत, उपवास और अतिथि-सत्कार में ही अपना सारा समय वह बिताने लगी। बारह मासों में तेरह उपवास और व्रत-अनुष्ठान करने लगी। सारा दिन मन्दिर में ही बीतने लगा। एकाग्र मन से वह पूजा का थाल सजाती, भोग लगाती और पूजा करती।

तुलसी की कोमल पत्तियों के साथ कदम्ब और पारिजात के फूलों की माला गूँथ कर मदनगोपाल के गले में डाल कर, अपलक दृष्टि से त्रिभंगी मुद्रा में खड़े वंशीधर को देखती रहती वह और फिर आंसुओं से भीगी उठती फूल-माला।

राय चौधरी गंगानारायण सिंह ने अंग्रेज अफसरों का अपमान किया था। इसलिये कमिश्नर साहब बौखलाए हुए थे। ब्रिटिश हुकूमत ने उन्हें बहुत सारे अधिकार दिये थे। उन अधिकारों को छीनने के लिये कमिश्नर साहब जोड़-तोड़ कर रहे थे। किसी समय कुछ भी हो सकता था। इसलिये बड़े सरकार चिन्तित थे। उस दिन सुबह से कचहरी लगी हुई थी। खूब भीड़-भाड़ थी। बड़े सरकार बैठे हुए थे।

जय शिव-शंकर महादेव ! बम, बम ! बम, बम ! की आवाज लगाते हुए, गेरुए वस्त्र पहने और हाथ में कमण्डल लिये, लम्बी जटा-जूटधारी एक संन्यासी ने पंचमुखी शंख की आवाज की।

संन्यासी तन कर खड़ा था। पंचमुखी शंख की गम्भीर ध्वनि से कचहरी और हवेली काँप उठी। सब लोग दौड़े आये। बड़े सरकार भी कचहरी से उठ आये। चंडी मंडप के सामने खड़े होकर संन्यासी बार-बार शंख-ध्वनि कर रहा था। दिव्य आभा थी उसके मुख-मंडल पर। लम्बी-चौड़ी देह, गौर वर्ण, जवाकुसुम की तरह लाल-लाल

आँखें, चौड़े मस्तक पर त्रिपुण्ड और उसके बीच में सिन्दूर का लाल गोल टीका। लाल-लाल आँखें जैसे दहक रही थीं। संन्यासी की ओर ताक कर बड़े सरकार भी क्षण भर स्तब्ध खड़े रह गये। फिर चंडी-मंडप के उसी धूल-धूसरित स्थान पर झुककर संन्यासी को साष्टांग प्रणाम किया उन्होंने। संन्यासी ने कमण्डल का जल उन पर छिड़क कर कहा—ओम् शान्ति ओम् शान्ति, ओम् शान्ति ! फिर हाथ पकड़कर बड़े सरकार को उठाते हुए उसने कहा—मन को शान्त रखो। छोटे भाई की अकाल मृत्यु, राजलक्ष्मी के असमय वैधव्य के दुख से तुम्हारा हृदय संतप्त है। मैं तंत्र-साधक हूँ। मेरा नाम कालिकानन्द कापालिक है। देवी का आदेश पाकर यहाँ आया हूँ मैं। म्लेच्छों का अपमान तुमने किया है। इसलिये तुम पर भारी विपत्ति आने वाली है। चारों तरफ तुम्हारे शत्रु है।”

इस तंत्र-साधक संन्यासी को ये सब बातें कैसे मालूम हो गयीं—आश्चर्य हुआ बड़े सरकार को। निश्चय ही यह संन्यासी कोई सिद्ध महापुरुष है। सिर झुकाकर विनम्र स्वर में उन्होंने कहा—आज्ञा दें। मुझे क्या करना होगा ?

संन्यासी गम्भीर स्वर में बोला, थोड़ी-सी भूमि दान करो। मैं देवी चामुण्डा की प्रतिष्ठा करूँगा। तुम्हारे मन को शान्ति प्राप्त होगी। और शत्रुओं का नाश होगा।

राजमहल के सामने की भूमि पर देवी चामुण्डा का मन्दिर बनना निश्चित हुआ।

दीपावली की महानिशा बेला में संन्यासी ने सारी रात जाग कर भूमि पर बैठ कर तांत्रिक-क्रिया की और वह भूमि देवी के नाम पर उत्सर्ग कर दी। दूसरे ही दिन से मन्दिर का निर्माण प्रारम्भ हो गया। मूर्ति-प्रतिष्ठा के पूर्व एक सौ एक बकरों की बलि दी गयी। ग्यारह दिन तक यज्ञ हुआ। यज्ञाहुति के अन्तिम दिन मन्दिर के गर्भ-गृह में माँ चामुण्डा की पाषाण-प्रतिमा स्थापित की गयी। फिर मन्दिर के दक्षिण ओर विशाल तालाब बनवाया गया। स्वच्छ निर्मल जल से भर गया तालाब। मन्दिर और तालाब के बीच में पंचमुण्डा आसन और उससे थोड़ी दूर पर पंचवटी की स्थापना हुई। तालाब, पंचमुंडा आसन और पंचवटी के चारों तरफ विभिन्न प्रकार के फल और फूलों के वृक्ष लगा दिये गये। अन्त में संन्यासी के आदेश से बड़े सरकार ने एक मास तक ब्राह्मणों और निर्धनों को भोजन कराया। फिर नवरात्रि में नौ दिन तक साधना करके संन्यासी ने साधना पीठ प्रस्तुत किया।

कापालिक संन्यासी कालिकानन्द थे कौन ? मैंने पूछा।

उसके संबंध में इतना ही बतला सकता हूँ कि वह कापालिक संन्यासी भयंकर तांत्रिक क्रियाओं के माध्यम से शव में विभिन्न प्रकार की आत्माओं का आवाहन कर उनसे अपना कार्य लिया करता था। काली का इष्ट तो था ही। अपनी इष्ट-सिद्धि के लिये कभी-कभी नर-शिशुओं की यज्ञाहुति भी दिया करता था वह संन्यासी।

फिर आगे क्या हुआ। प्रश्न किया मैंने ?

एक मास की कठोर साधना के उपरान्त अमावस्या की महारात्रि में मन्दिर में स्थापित देवी की पाषाण-प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा हुई। लेकिन देवी का जागरण नहीं हुआ। कहीं कोई त्रुटि तो नहीं हुई पीठ-साधना में ? मौन होकर सोचने लगा संन्यासी। तभी एकाएक छोटी रानी राजलक्ष्मी चाँदी के थाल में पूजा का सामान लिये वहाँ जा पहुँचीं।

बड़े सरकार विस्मित हुए। उस समय मध्य रात्रि थी। रानी राजलक्ष्मी इतनी रात गये सिर्फ एक परिचारिका के साथ ! छोटी रानी का चेहरा देख कर बड़े सरकार और भी चकित हुए। एकाग्रचित्त से शिव-स्तोत्र का पाठ करती हुई सीढ़ियों पर आगे बढ़ती आयी वह। पूजा की सामग्री लिये परिचारिका पीछे-पीछे चली आ रही थी।

मखमली आसान को खिसका कर संकेत द्वारा राजलक्ष्मी से उस पर बैठने को कह कर तंत्रसाधक ने रानी द्वारा लाये गये धूप, दीप, नारियल, पंचमुखी शंख व पुष्पों से देवी का आवाहन किया। अंजलि दी। फिर संन्यासी उल्लसित हो उठा। घूम कर राजलक्ष्मी के दोनों पैर पकड़ कर उसने कहा—तुम साक्षात् कात्यायनी हो। इस मन्दिर के द्वार तुम्हारे लिये हमेशा खुले हैं माँ। तंत्र-साधक के मन्दिर में नारी का प्रवेश निषिद्ध है। किन्तु समय व्यतीत हो जाने पर भी देवी की प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा न कर पाया मैं। जितनी बार भी माँ चामुण्डा का आवाहन करके मैंने पुष्पांजलि दी, हर बार अंजलि अस्वीकार हुई। मैं चिन्तित हुआ। एकाएक देवी रुष्ट क्यों हो गयीं ? तांत्रिक क्रियाओं और मंत्रों में कालिकानन्द संन्यासी से कभी कोई त्रुटि नहीं होती। फिर आखिर क्या गलती रह गयी ? मैंने ध्यान लगाया। तब देखा कि तुमने आज उपवास किया है। और देवी की अर्चना के लिये पुष्प चुन कर ला रही हो। देवी ने मुझे थोड़ी देर और ठहरने को कहा। और तुम्हारी लाई हुयी पूजन-सामग्री द्वारा आवाहन करते ही देवी की पाषाण-प्रतिमा हिल उठी। देवी में प्राण-प्रतिष्ठा हो गयी। उज्ज्वल आलोक-छटा देवी के मुख-मंडल पर छा गयी। राय चौधरी गंगानारायण सिंह की जमींदारी में देवी का आविर्भाव हो गया है। गंगानारायण, तुम अब निष्कंटक हो। परन्तु रानी राजलक्ष्मी के अतिरिक्त अन्य कोई नारी इस मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकेगी। पंचमुखी शंख की गम्भीर ध्वनि से निस्तब्ध प्रान्त गूँज उठा। पूजा समाप्त कर तंत्र-साधक ने बड़े सरकार और रानी राजलक्ष्मी के मस्तक पर यज्ञ का तिलक लगा दिया। भोर पहर में राय चौधरी और रानी राजलक्ष्मी महल में लौटे।

भाग्य द्वारा छली गयी रानी राजलक्ष्मी पर भाग्य मुस्कराया। राजलक्ष्मी दिन भर पूजा, दान व ध्यान करती रहतीं। और संध्याकाल होते ही परिचारिका मातंगिनी के साथ देवी चामुण्डा के मन्दिर में जा पहुँचतीं। संध्या की मंगला आरती के बाद वह हवेली में लौट कर आतीं। कालिकानन्द संन्यासी प्रतिदिन देवी चामुण्डा का चरणामृत उन्हें देता।

एक दिन चरणामृत ग्रहण करते समय रानी राजलक्ष्मी एकाएक तंत्र-साधक से पूछ बैठीं—गुरुदेव ! साधना का उद्देश्य और तात्पर्य क्या है ?

प्रश्न सुन कर शव-साधक संन्यासी एकबारगी चौंक पड़ा। रानी राजलक्ष्मी ऐसा भी प्रश्न करेगी। शायद इसकी आशा नहीं थी उसे। गम्भीर स्वर में वह बोला—साधना का उद्देश्य, तात्पर्य अथवा प्रयोजन है—साधक को साक्षी बना देना।

मतलब समझी नहीं।

हमारे मन में साधना के विषय में और साधना के संबंध में सबसे बड़ी भ्रान्ति यह है कि साधना भलाई को और शुभ को बढ़ाने वाली है। साधना हमें अच्छे मार्ग

पर ले जाने का एकमात्र साधन है। यह भावना भ्रामक है।

वास्तविकता तो यह है कि साधना का संबंध न बुराई को कम करने से है, न भलाई को बढ़ाने से है। न तो शुभ को बढ़ाने से है। साधना का संबंध तो भलाई-बुराई और शुभ-अशुभ दोनों का अतिक्रमण और दोनों के पार हो जाने से है। साधना न अंधेरे को मिटाना चाहती है और न प्रकाश को ही बढ़ाना चाहती है। वह तो साधक को अच्छाई-भलाई-बुराई, शुभ-अशुभ और अंधकार, प्रकाश—दोनों का साक्षी बनाना चाहती है।

इस संसार में तीन दशायें हैं मन की। पहली है बुरे मन की दशा। दूसरी है अच्छे मन की दशा और तीसरी है दोनों के पार अमन की दशा। साधना का एकमात्र प्रयोजन यही है कि साधक जब तक अच्छे-बुरे और शुभ-अशुभ दोनों से मुक्त नहीं हो जाता है तब तक मुक्ति का कोई अवसर नहीं है उसके लिये।

अगर आप अच्छे को पकड़ लेंगी तो अच्छे से बँध जायेंगी। बुरे को छोड़ेंगी तो बुरे के जो विपरीत है उससे बँध जायेंगी। लेकिन अगर दोनों को न स्वीकार करें तो वही परमसाधक की खोज है कि कैसे वह क्षण आ जाये जब मैं कुछ भी न स्वीकार करूँ, न चुनूँ। अकेला मैं ही बचूँ। मेरे ऊपर कुछ भी आरोपित न हो। न दुख, न सुख। न शुभ, न अशुभ। न अच्छा, न बुरा।

यह जो स्वभाव की सहज दशा है इसे न आप अच्छा कह सकती हैं और तो बुरा ही कह सकती हैं। वह दोनों के पार है। दोनों से भिन्न है। और दोनों के अतीत है। लेकिन साधारणतः हम साधना से सोचते हैं। अच्छा होने की कोशिश उसके कारण हैं ! उस भ्रान्ति से पीछे लम्बा इतिहास है।

समाज की आकांक्षा आपको अच्छा बनाने की है। क्योंकि समाज बुरे से पीड़ित होता है। समाज बुरे से परेशान है। इसलिये आपको अच्छा बनाने का प्रयास चलता है। समाज आपको साधना में ले जाना नहीं चाहता। समाज तो आपको बुरे बंधन से मुक्त करा कर अच्छे बंधन में बांधना चाहता है।

समाज यह भी नहीं चाहता कि आप पूर्ण स्वतंत्र हो जायें। क्योंकि परम और पूर्ण स्वतंत्र व्यक्ति तो समाज का शत्रु जैसा मालूम पड़ेगा। समाज चाहता है—रहें तो आप परतंत्र ही—पर समाज जैसा चाहता है उस ढंग के परतंत्र हों।

समाज आपको अच्छा बनाना चाहता है, ताकि समाज को कोई उच्छृंखलता, कोई अनुशासनहीनता, आपके द्वारा कोई उपद्रव, बगावत, विद्रोह न झेलना पड़े। समाज आपको धार्मिक भी नहीं बनाना चाहता। ज्यादा से ज्यादा वह आपको नैतिक बनाना चाहता है। और नीति और धर्म बड़ी अलग-अलग बातें हैं। नास्तिक भी नैतिक हो सकता है। और अक्सर जिसे हम आस्तिक कहते हैं उनसे अधिक नैतिक होता है। ईश्वर के होने की कोई आवश्यकता नहीं है आपको अच्छे होने के लिये। न मोक्ष की ही आवश्यकता है आपके अच्छे होने के लिये। केवल एक विवेक की आवश्यकता है। नास्तिक भी अच्छा हो सकता है, नैतिक हो सकता है। धर्म कुछ अलग ही बात है। धर्म को इतने से प्रयोजन नहीं है कि आप चोरी नहीं करते झूठ नहीं बोलते, किसी

प्रकार का पाप नहीं करते, बड़ी अक्ल बात है। लेकिन चोरी न करने, झूठ न बोलने और पाप न करने से कोई मोक्ष प्राप्त नहीं कर लेता। कोई मुक्ति को उपलब्ध नहीं हो जाता। जब चोरी करने, झूठ बोलने, पाप करने वाले को कुछ नहीं मिलता तो चोरी, झूठ और पाप से बचने को क्या मिल जायेगा ? जब धन एकत्र करने वाले को कुछ नहीं मिलता तो धन छोड़ कर क्या मिल जायेगा ? अगर धन एकत्र करने से कुछ मिलता होता तो शायद धन छोड़ने से भी कुछ मिल जाता। जब काम-भोग में डूबे रह कर कुछ नहीं मिलता तो उनको छोड़ कर क्या मिल जायेगा।

आप इस बात का ध्यान रखें। फिर जिस वस्तु से लाभ हो सकता है उससे हानि भी हो सकती है। जिससे हानि हो सकती है उससे लाभ भी हो सकता है। लेकिन जिस वस्तु से कोई लाभ ही नहीं होता हो उससे कोई हानि भी नहीं हो सकती।

धार्मिक व्यक्ति धन-संग्रह को मूढ़ता मानता है, बुराई नहीं। वह बाल-बुद्धि है। धर्म कामनावासना से डूबे व्यक्ति को पानी नहीं कहता। सिर्फ अज्ञानी कहता है। उसे ज्ञात नहीं कि वह क्या कर रहा है ? धर्म की कोई इच्छा नहीं है कि आप, जिन-जिन वस्तुओं को समाज बुरा कहता है उन्हें छोड़ देंगे तो आप मुक्त हो जायेंगी।

सज्जन पुरुषों का अभाव नहीं है। वे हमारे बीच हैं फिर भी मोक्ष उनसे उतना ही दूर है जितना दुर्जन से। उस दूरी में कोई फर्क नहीं पड़ता। मोक्ष की दूरी में तो तभी-कमी होनी शुरू होती है जब आप न दुर्जन रह जायें, न सज्जन। न साधु रह जायें, न असाधु। क्योंकि इन दोनों का द्वंद्व है। और जब तक द्वंद्व नहीं छूटता तब तक परमहंस अवस्था नहीं आती।

साधना का एकमात्र प्रयोजन है इसी परमहंस अवस्था की प्राप्ति। साधना का अर्थ है धीरे-धीरे बाहर की तरफ से भीतर की तरफ आना। अच्छाई भी बाहर है। बुराई भी बाहर है। अगर आप चोरी करती हैं तो भी आपके अतिरिक्त किसी और का होना आवश्यक है। अकेले आप चोरी कैसे कर सकेंगी ? अगर पृथ्वी का सब कुछ नष्ट हो जाये। केवल आप ही बची रहें तो आप चोरी कर सकेंगी फिर ! किसकी चोरी करेंगी ? तब चोरी का अर्थ ही क्या होगा।

अगर आप अकेली हैं तो चोरी नहीं कर सकतीं। झूठ भी नहीं बोल सकतीं। अगर अकेली हैं तो दान कर सकेंगी ? दान के लिये भी दूसरे की आवश्यकता है।

...तो चोरी हो या दान। नीति हो या अनीति। पुण्य हो या पाप। ये सब बाहर की घटनाएँ हैं। लेकिन सारी दुनिया नष्ट हो जाये और आप अकेले बचें तो भी ध्यान कर सकती हैं। ध्यान का दूसरे से कुछ भी संबंध नहीं है। ध्यान के लिये किसी दूसरे की आवश्यकता नहीं पड़ती। ध्यान आंतरिक घटना है। इसीलिए ध्यान भीतर ले जाता है।

पाप-पुण्य दोनों बाहर भटकाते हैं। अच्छाई-बुराई भी। इन सब से अन्तःस्तल का कोई संबंध नहीं। अन्तःस्तल का संबंध है केवल ध्यान से। इसीलिए साधना का अर्थ है ध्यान। साधना का अर्थ है अन्तर्मुखता। साधना का संबंध है स्वयं से। मैं उसे जान लूँ, जो मैं हूँ।

संन्यासी कालिकानंद कापालिक के प्रवचन का क्या प्रभाव पड़ा रानी राजलक्ष्मी

पर यह तो बतलाया नहीं जा सकता। लेकिन उस दिन से वह पहले से अधिक गंभीर रहने लग गयीं और उनकी ध्यान-धारणा का भी समय पहले से अधिक बढ़ गया।

थोड़ा रुक कर बाबा ने आगे बतलाना शुरू किया—धीरे-धीरे पूरे दस वर्ष का समय व्यतीत हो गया। जमींदारी उस समय भी ठाट से चल रही थी। रानी राजलक्ष्मी की आयु अब पच्चीस को पार कर चुकी थी। उनका रूप और यौवन पूर्ण परिपक्व हो चुका था। संन्यासी अब बहुत जीर्ण हो गया था। देवी की पूजा-अर्चना भी न हो पाती समय से अब।

वृद्ध तांत्रिक अपने एक युवा शिष्य को ले आया। युवक अत्यन्त सुन्दर था। उसका व्यक्तित्व आकर्षक था। कंधों तक लहराते घने काले घुंघराले बाल। बड़ी-बड़ी आँखें। गुलाब के फूल से रक्ताभ और कोमल होंठ। ऊँचा मस्तक। चौड़ी छाती। लम्बा कद। छरहरी देहा। गौर वर्ण। नाम था वीरेश्वर कापालिक। बाल्यावस्था में ही संन्यास ग्रहण कर तंत्र के कठोर साधना-मार्ग पर चल पड़ा था वीरेश्वर कापालिक। कई कठोर साधना की थीं उसने, भयंकर शव-साधना के बल पर भी उसने कई दुर्लभ सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। देवी चामुण्डा का परम भक्त था वह। उनकी पूजा-अर्चना के समय वह बिलकुल तन्मय और आत्मलीन हो जाता था कुछ समय के लिये।

उस दिन सायंकाल के समय भी एकाग्र मन से तन्मय होकर वह युवा संन्यासी सुगन्धित कपूर से आरती कर रहा था देवी चामुण्डा की। होश-हवास खोये हुए था। आरती समाप्त होने पर मंदिर में राजलक्ष्मी को देखकर भौंहेँ सिकोड़ीं उसने। कहा— इस मंदिर में नारी का प्रवेश तो निषिद्ध होना चाहिये।

क्यों ? मंदिर के कोने में बैठे वृद्ध तांत्रिक ने प्रश्न किया।

“गुरुदेव !” वीरेश्वर कापालिक ने मंदिर के द्वार पर हाथों में पूजा की थाली लिये खड़ी राजलक्ष्मी की ओर उपेक्षा से देखते हुए कहा—“आपने स्वयं ही तो शिक्षा दी थी कि तंत्र-साधना में नारी का कोई स्थान नहीं है। साधना-मार्ग से पतन होने की आशंका रहती है।”

“तुम ठीक कहते हो वीरेश्वर। मातृ-शक्ति के रूप में उसका चिंतन करने से ही निष्काम तंत्र की साधना होती है। तुम परीक्षा में उत्तीर्ण न हो पाये तो मैं समझूँगा कि तुम पूर्ण संन्यासी नहीं हुए हो। तुम्हारी साधना में अब भी कोई कमी है। रानी राजलक्ष्मी स्वयं कात्यायनी हैं। स्वयं मातृरूपा शक्ति का अंश हैं।

आपकी आज्ञा शिरोधार्य है गुरुदेव। पूजा समाप्त कर देवी चामुण्डा को साष्टांग प्रणाम करके संन्यासी वीरेश्वर कापालिक धीरे-धीरे चलकर मंदिर के बाहर निकल आया। उसने फिर रानी राजलक्ष्मी की ओर नहीं देखा।

रानी राजलक्ष्मी मंदिर-द्वार से बाहर जाते हुए गौर वर्ण और सुगन्धित देह के युवा संन्यासी को ताकती रहीं और मन ही मन अपने आपसे प्रश्न किया उसने— यह सुदर्शन युवक संसार से विरक्त हो संन्यास क्यों ले बैठा। यहाँ क्यों आया यह ? और मन्थर गति से मंदिर की सीढ़ियाँ उतर कर राजलक्ष्मी परिचारिका के साथ हवेली में लौट गयीं। उस रात नींद नहीं आयी उन्हें। पूरी रात जागती रहीं। बार-बार उसने

पर ले जाने का एकमात्र साधन है। यह भावना भ्रामक है।

वास्तविकता तो यह है कि साधना का संबंध न बुराई को कम करने से है, न भलाई को बढ़ाने से है। न तो शुभ को बढ़ाने से है। साधना का संबंध तो भलाई-बुराई और शुभ-अशुभ दोनों का अतिक्रमण और दोनों के पार हो जाने से है। साधना न अंधेरे को मिटाना चाहती है और न प्रकाश को ही बढ़ाना चाहती है। वह तो साधक को अच्छाई-भलाई-बुराई, शुभ-अशुभ और अंधकार, प्रकाश—दोनों का साक्षी बनाना चाहती है।

इस संसार में तीन दशायें हैं मन की। पहली है बुरे मन की दशा। दूसरी है अच्छे मन की दशा और तीसरी है दोनों के पार अमन की दशा। साधना का एकमात्र प्रयोजन यही है कि साधक जब तक अच्छे-बुरे और शुभ-अशुभ दोनों से मुक्त नहीं हो जाता है तब तक मुक्ति का कोई अवसर नहीं है उसके लिये।

अगर आप अच्छे को पकड़ लेंगी तो अच्छे से बँध जायेंगी। बुरे को छोड़ेंगी तो बुरे के जो विपरीत है उससे बँध जायेंगी। लेकिन अगर दोनों को न स्वीकार करें तो वही परमसाधक की खोज है कि कैसे वह क्षण आ जाये जब मैं कुछ भी न स्वीकार करूँ, न चुनूँ। अकेला मैं ही बचूँ। मेरे ऊपर कुछ भी आरोपित न हो। न दुख, न सुख। न शुभ, न अशुभ। न अच्छा, न बुरा।

यह जो स्वभाव की सहज दशा है इसे न आप अच्छा कह सकती हैं और तो बुरा ही कह सकती हैं। वह दोनों के पार है। दोनों से भिन्न है। और दोनों के अतीत है। लेकिन साधारणतः हम साधना से सोचते हैं। अच्छा होने की कोशिश उसके कारण है ! उस भ्रान्ति से पीछे लम्बा इतिहास है।

समाज की आकांक्षा आपको अच्छा बनाने की है। क्योंकि समाज बुरे से पीड़ित होता है। समाज बुरे से परेशान है। इसलिये आपको अच्छा बनाने का प्रयास चलता है। समाज आपको साधना में ले जाना नहीं चाहता। समाज तो आपको बुरे बंधन से मुक्त करा कर अच्छे बंधन में बांधना चाहता है।

समाज यह भी नहीं चाहता कि आप पूर्ण स्वतंत्र हो जायें। क्योंकि परम और पूर्ण स्वतंत्र व्यक्ति तो समाज का शत्रु जैसा मालूम पड़ेगा। समाज चाहता है—रहें तो आप परतंत्र ही—पर समाज जैसा चाहता है उस ढंग के परतंत्र हों।

समाज आपको अच्छा बनाना चाहता है, ताकि समाज को कोई उच्छृंखलता, कोई अनुशासनहीनता, आपके द्वारा कोई उपद्रव, बगावत, विद्रोह न झेलना पड़े। समाज आपको धार्मिक भी नहीं बनाना चाहता। ज्यादा से ज्यादा वह आपको नैतिक बनाना चाहता है। और नीति और धर्म बड़ी अलग-अलग बातें हैं। नास्तिक भी नैतिक हो सकता है। और अक्सर जिसे हम आस्तिक कहते हैं उनसे अधिक नैतिक होता है। ईश्वर के होने की कोई आवश्यकता नहीं है आपको अच्छे होने के लिये। न मोक्ष की ही आवश्यकता है आपके अच्छे होने के लिये। केवल एक विवेक की आवश्यकता है। नास्तिक भी अच्छा हो सकता है, नैतिक हो सकता है। धर्म कुछ अलग ही बात है। धर्म को इतने से प्रयोजन नहीं है कि आप चोरी नहीं करते झूठ नहीं बोलते, किसी

सामने वीरेश्वर कापालिक की गंभीर मुख-मुद्रा थिरक उठती थी।

यही दशा संन्यासी की भी थी। पूरी रात वह भी नहीं सो सका। बार-बार कौंध-सी जाती उसके मानस-पटल पर राजलक्ष्मी की रूपशिखा।

तन्मय होकर संन्यासी वीरेश्वर कापालिक आरती किया करता। पर किसकी आरती करता था वह ? वह देवी कालरात्रि चामुण्डा की कराल मूर्ति तो नहीं थीं। वह तो रानी राजलक्ष्मी दिखाई पड़ रही थीं उसे। बार-बार आँखे मल कर वह देवी की प्रतिमा को देखता। बार-बार रानी राजलक्ष्मी की मूर्ति आँखों के सामने आ जाती। न जाने क्या हो गया था उस युवा संन्यासी को। स्वयं भी वह समझ नहीं पा रहा था। पूजा-आरती समाप्त होते ही पंचमुण्डी आसन की ओर चला जाता वह। वहाँ एकांत में बैठकर चुपचाप रोता फूट-फूट कर। यह क्या हो गया ? देवी उसकी परीक्षा ले रही थीं या कि उसे छल रही थीं। आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले गुरु का श्रेष्ठ शिष्य था वह। उसका यह कैसा मानसिक पतन हो रहा था। फिर वह पंचमुण्डी आसन से वापस लौटकर अस्वस्थ गुरुदेव की शैया के पास जा बैठता। गुरु के चरणों को पकड़ कर वह रोता और कहता—गुरुदेव, इस मंदिर के गुरुतर उत्तरदायित्व से मुझे मुक्त कीजिये।

“ऐसा नहीं हो सकता वत्स। तुम्हें इस परीक्षा में उत्तीर्ण होना ही होगा। यदि परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये तो समझूँगा कि तुम सच्चे साधक हो। इतना जान लो कि राजलक्ष्मी के पुष्पर्य से देवी में प्राण-प्रतिष्ठा हुई है।”

“सब सुन चुका हूँ गुरुदेव। किन्तु मुझे मुक्ति दीजिये। मैं हिमालय स्थित उस निर्जन मठ में चला जाता हूँ।”

“ऐसा नहीं हो सकता वीरेश्वर।”

वीरेश्वर लौट आता। पंचमुण्डी आसन पर बैठ कर श्यामा संगीत छोड़ देता वह। धुपद गाता तो बीच में वसन्त हो जाता। अनजाने में ही वह विरह-कातर श्री राधिका का आवेदन गाता और फिर चंद्रावती की व्याकुलता। यकायक पैरों पर उष्ण जल का स्पर्श होता। और वह चौंक पड़ता। उसके पैरों को किसकी घनी काली केश-राशि घेरे हुए है ?

रानी राजलक्ष्मी संन्यासी के दोनों पैर सीने से लगाये रो रही थीं। संगीत की मूर्च्छा ने विह्वल बना दिया था राजलक्ष्मी को। उनके अंतर में सोयी एक चेतना को जगा दिया था उस गीत ने।

“रानी माँ चलिये अब। सवेरा हुआ जा रहा है।”

“चलती हूँ। लेकिन जाने से पहले एक बार फिर वही गीत सुना दो संन्यासी। कृष्ण के विरह से कातर राधा की व्याकुलता।”

वीरेश्वर चौंक पड़ा। क्यों आयी है राजलक्ष्मी उसकी साधना में विघ्न उपस्थित करने ? क्यों आ आती हैं यह बार-बार। तेज कदमों से वह मंदिर के अंदर चला गया। दरवाजा अंदर से बंद करके देवी चामुण्डा का आसन पकड़कर लोट-लोट कर रो पड़ा वह। अपना सिर माँ महामाया के चरणों पर पटक-पटक वह कहने लगा—“यह कैसी

परीक्षा ले रही हो माँ ! सर्व रिपुओं पर विजय प्राप्त करने वाले वीरेश्वर कापालिक को पराजित करके ही क्या तृप्ति होगी तुम्हें ? परम संन्यासी तंत्रसाधक कालिकानंद कापालिक का श्रेष्ठ मंत्र-दीक्षित शिष्य हूँ मैं।

उनको मुझे पर गर्व है। मुझे शक्ति दो जगज्जनी माँ।”

धीरे-धीरे गाँव में कानाफूसी शुरू हुई। बात बड़े सरकार के कानों तक भी पहुँची। किन्तु अविश्वास प्रकट करते हुए उन्होंने कहा, मैं विश्वास नहीं कर सकता इस पर। रानी राजलक्ष्मी देवी हैं। राज्यभर की इष्टदेवी हैं। बात मानी ही नहीं जा सकती।”

“घटना सत्य है महाराज। प्रतिदिन अर्द्धरात्रि के समय पंचमुंडी आसन पर ध्यानस्थ बैठे युवा संन्यासी के पैरों के समीप होती हैं रानी राजलक्ष्मी।”

“धर्मोपदेश लेती होंगी आत्मा की मुक्ति पर और कठोर वैधव्य के संयम भरे आचरण पर। ऐसी ही बातें वहाँ होती होंगी। हुजूर ! गीत गाये जाते हैं वहाँ। बसन्त-बहार, ललित और विहाग-राग। तो फिर कीर्तन करती होंगी वह धुपद और धमार में। रात को ईश्वर से प्रार्थना करती होंगी। ईश्वर का आह्वान करके जीव की मुक्ति की कामना करती होंगी वह।”

रात में नींद न आती बड़े सरकार को।

रानी राजलक्ष्मी की बदनामी। बात विश्वास के योग्य थी ही नहीं। युवा संन्यासी का आचरण बिल्कुल विनम्र और मधुर था। वृद्ध तांत्रिक का श्रेष्ठ शिष्य था वह। पिछले तेरह वर्षों से कठोर नियम-संयम का पालन कर रहा था वह। इसलिए और भी अविश्वसनीय थी सन्देह की बात। फिर युवा संन्यासी शिल्पी भी था। अवकाश के समय में काले पत्थर पर खुदाई करके देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी बना लेता था वह। मंदिर के अन्दर देवी के दशावतार की मूर्ति भी बनाकर स्थापित कर ली थी उसने। वृद्ध तांत्रिक के विषय में मन में कुछ सोचना भी पाप था। कुछ दिन पहले ही उसने अपने नश्वर शरीर का त्याग किया था। उस समय बड़े सरकार भी उस परम साधक की मृत्यु-शैया के निकट स्थित थे। उन्हें पास बुलाकर ...महातांत्रिक ने उनके कान में कहा था— गंगानारायण, मेरा समय आ गया। जब तक पूजा-अर्चना में व्यतिक्रम न पड़ेगा, देवी चामुंडा तुम्हारे राज्य में प्रतिष्ठित रहेंगी। मुझे आशा है कि मेरा श्रेष्ठ शिष्य और शव-साधक संन्यासी वीरेश्वर कापालिक देवी के पूजन में कोई त्रुटि न करेगा।

अमावस्या की घोर महानिशा बेला की गहन निस्तब्धता को भंग करता हुआ गीत दूर-दूर तक सुनाई पड़ रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे कीट-पतंग और पशु-पक्षी सभी सतर्क होकर एकाग्र मन से वह देव-दुर्लभ संगीत सुन रहे थे। रानी राजलक्ष्मी धीरे-धीरे आहिस्ता-आहिस्ता मंदिर की सीढ़ियाँ चढ़कर पंचवटी के चबूतरे के निकट पहुँची। पंचवटी के नीचे बने पक्के चबूतरे पर बैठा युवा संन्यासी गीत गाता चला जा रहा था।

उसके नेत्र मुँदे हुए थे। जैसे साधना में लीन था वह। रानी राजलक्ष्मी आकर संन्यासी के चरणों के निकट बैठ गयीं। उसकी दोनों आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित थी।

आत्म-सम्मोहित भाव भंग हुआ, वीरेश्वर की चेतना लौटी। उदात्त कंठ से उसने

उच्चारण किया—“हे माँ ! हे त्रिपुरारी शिवशंकर ! सहसा पैरों पर एक कोमल स्पर्श का अनुभव कर वह चौंक पड़ा। “यह क्या ? रानी राजलक्ष्मी तुम फिर आ गयीं ? मैंने कई बार मना किया कि तुम यहाँ मत आया करो।”

“किन्तु वह गीत और स्वर मुझे पागल बना देता है संन्यासी। उसे सुनकर मैं किसी तरह भी अपने को रोक नहीं पाती। तुम उसे न गाया करो तो मैं भी नहीं आऊँगी।” होंठ फड़क रहे थे। अश्रु-पूरित थी राजलक्ष्मी की आँखें। उठकर खड़ी हो गयी वह।

“कहाँ ? मैं गा ही कहाँ रहा हूँ ? गुरुदेव मना कर गये हैं मुझे गाने के लिए। इस विषय में चेतावनी भी दे गये मुझे।”

“तुम नहीं जानते। पंचवटी के आसन पर बैठकर रोज रात को तुम मधुर स्वर में गाते हो। और उसी गीत का आकर्षण मुझे यहाँ आने पर विवश कर देता है।”

“मैं तंत्र-साधक हूँ। पिशाच-सिद्धि है मुझे। तेरह वर्षों से लगातार शव-साधना करता आ रहा हूँ मैं। तुम मुझे पथ-भ्रष्ट करने पर तुली हुई हो।”

“तो फिर सुनो युवा संन्यासी। मैं तुम्हें आत्मसमर्पण कर चुकी हूँ। पूरे दस वर्षों तक विधवाओं के लिए उचित कठोर संयम-नियम का पालन करने के बाद जिस दिन मैंने पहले-पहल तुम्हारे मुख से नारी की अवज्ञा की बात सुनी, जाने क्या हुआ कि उसी दिन मैं तुम्हें पराजित करने की प्रतिज्ञा कर बैठी। युवा साधक सुन लो। तुम शक्ति के उपासक हो और नारी-शक्ति का साकार रूप है। इसलिए तुम्हारे मुँह से नारी की निन्दा शोभा नहीं देती। तुम्हें तो नारी की पूजा करनी चाहिए। नारी उपेक्षा की नहीं, प्रेम का पात्र है। पुरुष सृष्टा है, नारी प्रेमिका है। उस प्रेम का प्रतीक है, जो परमेश्वर के रूप में अभिव्यक्त है।”

“शान्त हो जाओ और मंदिर की सीमा के बाहर चली जाओ। नारी मनुष्य की अस्त-व्यस्तता है। अशान्ति है। तुम मेरे ध्यान, धारणा, समाधि, निष्ठा, आचार और साधन की च्युति का कारण बन रही हो। मेरी कठोर साधना और सिद्धि का तुम्हारी नारी-सुलभ सम्मोहन शक्ति से अधोःपतन होने जा रहा है। भोलेनाथ शंकर का भजन करता हूँ तो अनजाने में श्रीकृष्ण के विरह में कातर श्रीराधिका की मनोवेदना अभिव्यक्त होने लग जाती है। तुम सभी बातों में विघ्न डालती हो। तुम जाओ यहाँ से।” कहकर संन्यासी उठ खड़ा हुआ।

धीरे, शान्त और दृढ़ स्वर में रानी राजलक्ष्मी बोली—“संन्यासी महाराज, इसमें दोष किसका है ? मैंने तो तुमको पहले चाहा नहीं था। तुम यहाँ आये ही क्यों ? किसका इशारा था तुम्हारे यहाँ आने में ?”

“रानी राजलक्ष्मी ! मैं संसार त्यागी संन्यासी हूँ। संन्यासी का अर्थ होता है संसार के लिए शववत् और अपने लिए मृतवत्। मेरी आराधना का समय हो गया।” कहकर युवा संन्यासी तालाब के जल में उतर पड़ा। क्षणभर तक संन्यासी की ओर एकटक ताककर रानी राजलक्ष्मी उठ खड़ी हुई और धीरे-धीरे चलकर मंदिर की सीमा के बाहर हो गयीं।

सुबह शहनाई पर भैरवी बजती थी। सारी हवेली के लोग तन्द्रा छत्र स्थिति में

ही रामदास की रामकेलि सुनते थे। हरिनाम, राम-राम, सीताराम। साथ ही मंदिरों के घंटे-घड़ियाल भी बज उठते थे।

मँझली रानी सुचारु देवी नित्य प्रभात-काल में नहाने जाती थीं। उस दिन उठी तो रनिवास का मुख्य दरवाजा बन्द पाया। बाहर से ताला बन्द था। वे विस्मित हुईं। यह कैसी बात थी ? किसने रानियों के महल में ताला बन्द करने की हिमाकत की है। अपने पतिदेव, मँझले सरकार हेरम्बनारायण के पास पहुँचीं वे।

“क्या आज से सवेरे नहाना भी बन्द करना होगा ?” रानियों ने पूछा।

“क्यों ?” तन्द्राजड़ित स्वर में आश्चर्यमिश्रित दृष्टि से उनकी ओर ताकते हुए हेरम्बनारायण ने पूछा।

“रनिवास के मुख्य दरवाजे पर ताला बन्द है, अन्दर से।”

“ताला बन्द है !” क्या कह रही हो ? विस्मयपूर्वक हेरम्बनारायण बिस्तर पर उठ बैठे। “राय चौधरी परिवार की हवेली में कोई भी दरवाजा कभी बन्द नहीं हुआ और रनिवास का दरवाजा बन्द होना तो नितान्त असम्भव है।”

“जाकर स्वयं ही देख आओ न ?”

बिस्तर से उठकर कमर में शाल लपेटते हुए हेरम्बनारायण। बड़े भाई गंगा नारायण के कक्ष के सामने पहुँचे। दरवाजा बन्द था। हेरम्बनारायण लौट आये।

उन्होंने देखा दरवाजे पर ही दयाराम खड़ा था। उन्होंने पूछा, “बड़े भैया अब तक नहीं उठे दयाराम ?”

“नहीं मँझले सरकार।”

“पर रातभर वे जागते क्यों रहे ?

“यह मैं नहीं बतला सकता। काफी रात गये चामुण्डा के मंदिर की तरफ गये थे। लौट कर आये तो क्रुद्ध सर्प की तरह फुंकार रहे थे। गरजते-फुफकारते रहे लौटने के बाद।”

“कारण का अनुमान लगा सकते हो दयाराम।”

“हूँ !” कह कर हेरम्बनारायण सोचते-विचारते हुए जैसे ही मुड़े कि दरवाजा खुलने की आहट हुई।

“बड़े भैया, आपने रनिवास के दरवाजे और गुप्त दरवाजे पर ताला बन्द करने की आज्ञा दी है क्या ? आपकी तबीयत आज ठीक नहीं है क्या ?”

“तबीयत ठीक है और आज्ञा भी मैंने ही दी है।”

हेरम्बनारायण लौट आये। पहेली उनकी समझ में नहीं आ रही थी। पर कोई विशेष कारण न होता तो बड़े भाई ऐसी आज्ञा कदापि न देते। यह वे समझ गये।

रात बीत चली। रानी राजलक्ष्मी ध्यानपूर्वक गायन सुनती रहीं। राग वसन्त बहार शुरू हुआ। युवा संन्यासी का मीठा स्वर वायु लहरियों पर तिरता हुआ आकर रनिवास में रानी राजलक्ष्मी के शयन-कक्ष से टकराने लगा।

कपड़े बदल कर राजलक्ष्मी बाहर जाने को तैयार हुईं। लाल चन्दन और जवा

कुसुम भी साथ ले लिये उसने।

मातंगिनी ने बतलाया—“दीदी रानी ! आज तो सभी दरवाजों पर ताला बन्द है।”

“तो फिर मैं कैसे जाऊँ ?”

“सोचा तो था कि नहीं जाऊँगी। पर वह मधुर और कोमल स्वर मुझे और मेरी आत्मा को पागल बना देता है सखी।” “अब ऐसा सब कुछ करना छोड़ ही दीजिये दीदी रानी। काफी कानाफूसी हो रही है। अकारण ही बदनामी हो रही है आपकी और उस युवा संन्यासी की भी। बड़े सरकार को संदेह हो गया है। अमावस्या की रात के अलावा आप जाया न कीजिये मंदिर में। नहीं तो आप दोनों पर विपत्ति आ सकती है।”

“किन्तु मातंगिनी ! यह जीवन मेरे लिये असह्य हो उठा है। यह अभिनय मुझे अब अच्छा नहीं लगता है ! युवा संन्यासी ने मेरे मन को और मेरी आत्मा को पागल बना दिया है। जब मैं उसका संगीत सुनती हूँ, मेरा सारा शरीर झुलसने लगता है। क्या तू भी मेरे मन की बात नहीं समझती ?”

रानी राजलक्ष्मी मातंगिनी की गोद में सिर रखकर फफक-फफक कर रोने लगी।

“समझती हूँ दीदी रानी ! “मातंगिनी ने राजलक्ष्मी का सिर सहलाते हुए कहा आखिर मैं भी स्त्री हूँ। मेरे सीने में भी दिल है। किन्तु समाज के नियम तो मानने ही पड़ते हैं”

“समाज देह का ऊपरी आवरण देखता है उसके भीतर को नहीं देखता। संन्यासी का करुण आह्वान सुनो। अपने अनजाने में नित्य रात्रि को वह इसी प्रकार आह्वान करता है मातंगिनी अच्छा, तू मेरे बदले चली जा और क्षमा माँगकर कहना कि आज राजलक्ष्मी बन्दिनी है। किसी न किसी दिन वह आयेगी अवश्य। उस दिन की प्रतीक्षा करे वह।”

मातंगिनी को भेजकर राजलक्ष्मी जाकर खिड़की की छड़े पकड़ कर खड़ी हो गयीं और संन्यासी का गायन सुनती रहीं। युवा संन्यासी की विरह कातर आत्मा का करुण-क्रन्दन सुनकर राजलक्ष्मी की आँखों से झर-झर कर बहने लगे आँसू।

मातंगिनी ने संन्यासी के पास पहुँच कर प्रणाम किया और कहा- “महाराज !”

“कौन ! मातंगिनी !” “संन्यासी के स्वर में आकुलता फूट पड़ी। रानी राजलक्ष्मी आज संध्या की आरती में नहीं आयीं ?”

“नहीं, वे बन्दी हैं आज । उन्होंने निवेदन किया है कि अवसर मिलते ही आयेंगी।”

“उन्हें आने से मना कर देना मातंगिनी।” संन्यासी वीरेश्वर बोला। “वे कर्म में स्वयं को नियोजित करें। उसी से उन्हें मुक्ति मिलेगी। देवी चामुण्डा के मंदिर में आने का प्रयोजन नहीं।”

“यह संध्या आरती का सामान है महाराज !” कम्पित स्वर में मातंगिनी बोली—
“रानी राजलक्ष्मी ने चरणामृत मँगाया है।”

आरती करने के बाद, प्रसाद देकर मातंगिनी को विदा करते हुए विरक्त स्वर में संन्यासी ने कहा—“रानी राजलक्ष्मी से कह देना कि तुम्हारे द्वारा ही नित्य चरणामृत भेज दिया करूँगा।”

फिर एक दिन रानी राजलक्ष्मी एकाएक संन्यासी की गोद में आ गिरी। रोकर बोली—“मेरे लिये क्या आदेश है ?”

“शांत रहो। तुमने सोच लिया इस बीच ?” स्थिर, शांत और निर्विकार दृष्टि से संन्यासी ने राजलक्ष्मी की ओर ताका।

“हाँ, मैंने निश्चय कर लिया है। मेरे इस जीवन की कामना, वासना, साधना और आराध्य तुम्हीं हो। अन्तर्द्वन्द्व में मैं हार गयी हूँ। अब मुझसे रहा नहीं जाता। अगर तुमने मुझे स्वीकार नहीं किया तो सुन लो, मैं आत्महत्या कर लूँगी माँ महामाया के सामने।”

“क्या जाने देवी चामुण्डा की क्या इच्छा है ?” संन्यासी वीरेश्वर ने गहरी साँस लेकर कहा। फिर वह सोचने लगा। कौन-सा मार्ग चुने। इतने वर्षों की कठोर साधना क्षणभर में नष्ट हुई जा रही है।

रानी राजलक्ष्मी बोली— “सत्पथ कौन-सा है महाराज ! इसकी विवेचना आज तक कोई नहीं कर पाया है और नारी ही एकमात्र शक्ति है यह बात भी अस्वीकार नहीं की जा सकती।”

“जानता हूँ कि नारी शक्ति है। किन्तु उस शक्ति से तंत्र-साधना का सतत विरोध है। नारी सभी कार्यों में विघ्न उपस्थित करती है। साधना-मार्ग में भी वह बाधास्वरूप है इसलिए उसका आध्यात्मिक भूमि में न कोई स्थान है और न कोई महत्व।” विषण्ण भाव से बोला वीरेश्वर संन्यासी।

रानी राजलक्ष्मी यह सुन कर हँस पड़ी। फिर व्यंग्यात्मक स्वर में कहने लगी। “महाराज ! यदि नारी सभी कार्यों में बाधा ही बनती होती तो विधाता शायद उसकी सृष्टि ही नहीं करते। नर-नारी दोनों के समन्वय में ही सृष्टि का रहस्य और माहात्म्य है। इसलिये शक्ति के रूप में नारी का आह्वान किया जाता है। आप भी जिस देवी चामुण्डा की साधना- उपासना करते हैं, वह भी तो नारीरूपा एक महाशक्ति हैं इसे आप क्यों भूल रहे हैं ? नारी उसी महाशक्ति का एक महत्वपूर्ण और महिमामय अंश है।” थोड़ा रुक कर स्थिर दृष्टि से संन्यासी की ओर देखती हुई रानी राजलक्ष्मी ने आगे कहा—“नारी के दो ही मुख्य रूप हैं, माता और पत्नी। पहला पूज्यरूप है और दूसरा है भोग्या रूप। तांत्रिक-साधना मूर्ति में नारी के ये दोनों रूप श्लाघनीय हैं इसमें कोई सन्देह नहीं। क्योंकि आदिशक्ति के दोनों मूल तत्व मातृत्व और कुमारित्व इन्हीं दोनों रूपों का आश्रय लेकर प्रकट होते हैं इसलिये इनका तिरस्कार नहीं किया जा सकता और न तो नारी की अवहेलना ही की जा सकती है। इसका महत्वपूर्ण कारण है कि सर्वप्रथम कुमारित्व भंग होने पर मातृत्व की उपलब्धि होती है। भोग के बाद ही पूज्या भाव है। पहले भोग होने पर ही नारी को मातृत्व का स्थान प्राप्त होता है। यदि ऐसा न होता तो आपका, मेरा या किसी का भी अस्तित्व इस संसार में न होता। पत्नी के बाद ही नारी माता बनती है महाराज ! कहने की आवश्यकता नहीं, पत्नी महाशक्ति का भोग्या रूप है और माता है उसका पूज्या रूप। शायद आपको नहीं मालूम कि तांत्रिक साधना में यथा समय इन दोनों रूपों को ग्रहण किया जाता है। नारी के

प्रति तीन भाव हैं—पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव। साधारणजन अथवा निम्न कोटि के लोग पशुभाव से नारी का उपयोग करते हैं। साधना में इस भाव का कोई स्थान नहीं। नारी यहाँ बंधनकारक और मोहकारक है। साधक इस भाव से काफी ऊपर होता है। वह वीरभाव से नारी को भोग्या रूप में स्वीकार करता है। इस रूप में महाशक्ति उसकी सहचरी होती है, रक्षिका होती है। यही मायारूप है प्रकृति का। किन्तु इसका भेदन आवश्यक है। तभी आगे बढ़ा जा सकता है। जब उसका आत्म अंश आविर्भूत हो जाता है तो वही नारी यानी पत्नी उसके लिये पूज्या हो जाती है। यही मातृरूप है। पत्नी को मातृरूप में स्वीकार करना तांत्रिक साधना का सर्वोच्च भाव है और यही सर्वोच्च भाव दिव्यभाव है। इस रूप में महाशक्ति उसकी पथ-प्रदर्शिका होती है। यही महामाया राज है प्रकृति का। तभी तो रामकृष्ण परमहंसदेव अपनी पत्नी को माँ कहते थे क्योंकि उन्होंने दिव्यभाव प्राप्त कर लिया था। अंत में राजलक्ष्मी ने कहा— महाराज ! तांत्रिक साधना ब्रह्मचर्य आश्रम में शुरू होती है। गृहस्थाश्रम में परिपक्व होती है और ...संन्यासाश्रम में उपलब्ध होती है। सारे विश्व में निवृत्ति अपने को प्रवृत्ति के मार्ग में स्थापित करना चाहती है।

मिथुन के नाश के लिये यदि कोई साधन है तो वह मैथुन ही है। द्रुंद्र का नाश द्रुंद्र से ही हो सकता है। द्रुंद्र के रास्ते अद्वैत की ओर चलना पड़ेगा। जमीन पर गिरने पर उस जमीन के सहारे ही उसका त्याग किया जा सकता है।”

इतनी सारी कथा सुनाने के बाद तारानाथ ब्रह्मचारी मौन साध गये। ऐसा लगा मानों किसी गहरे विचार में डूब गये हों। थोड़ी देर बाद आकाश में शून्य की ओर निहारते हुए बोले—“बिलकुल उचित व शास्त्रसम्मत बातें कही थीं रानी राजलक्ष्मी ने।”

यह सच है कि आदिशक्ति का आदि विकास अथवा प्रधान विकास मैथुनविषयक अर्थात् आनंद के लिए है और है रति के लिए। यही विश्व वासना है। तुमको यह बतला दूँ कि जब तक उदात्त दार्शनिक दृष्टि समय क्रम को सर्वतोभावेन आवृत्त नहीं करती है तब तक सांसारिक जीवन प्राकृतिक प्राचीनतम मार्ग के अनुसार ही ‘क्षुधा’ और ‘काम’ से संचालित होगा। क्षुधा का बहुत महत्व है। किन्तु वह अपने आप ध्येय नहीं है। वह दूसरे के लिए है। काम के लिए है। काम के लिए जितने युद्ध हुए वे सभी प्रेम के लिए ही हुए। उतने आहार के लिए नहीं। अस्तित्व के लिए जितने कलह-संग्राम हुए, वे सब जीवनानन्द के लिए ही हुए।

तुमको यह ज्ञात होना चाहिए कि सृष्टि की उत्पत्ति “मैं हो जाऊँ” इस प्रकार के अस्तित्व की इच्छा से नहीं हुई बल्कि आनन्द से हुई है। जन्म में भी आनन्द है। जीवन में भी आनन्द है और मृत्यु में भी आनन्द है। आनन्द ही सब कुछ है। अन्य सभी वस्तुएँ आनन्द के उपकरण हैं। इसी से उसने दूसरे की कामना की। यह प्रथम कामना ही आदि प्रवृत्ति है जिसके मूल में रमण की इच्छा थी। आदि जीव को अपने अकेलेपन का बोध था। यदि बोध न होता तो उस आदि कामना, आदि प्रवृत्ति और रमण को आदि इच्छा का अविर्भाव ही न होता।

बाबा ने कहा, यही वह स्थान है, जहाँ से तंत्र का जन्म होता और आविर्भूत

होती है, तांत्रिक साधना। आदि जीव की रमणेच्छा की आदि प्रवृत्ति अथवा आदि "कामना" ही आदि शक्ति है। तंत्र में इसी को परमाशक्ति कहते हैं। यही मूल प्रकृति भी है। जब आदि जीव को अपने से पृथक् किसी के अस्तित्व का अनुभव हुआ तभी अपने अस्तित्व का भी बोध उसे हुआ। इसी संयुक्त भाव की कल्पना तंत्र में अर्ध-नारीश्वर के रूप में की गयी है।

निश्चय ही बाबा को तंत्रशास्त्र के मूल तत्वों का विशद ज्ञान था। बड़े सहज ढंग से वे समझा रहे थे। भाषा, विज्ञान के क्षेत्र में पहला बोध "हम" के रूप में और दूसरा बोध "तुम" के रूप में प्रकट होता है। दार्शनिकों के शब्दों में यही हम और तुम "अहं और एतत्" है। अहं और एतत् के बीच आकर्षण-विकर्षण है, जिसके मूल में वासना है। और उस वासना के मूल में है "काम"। इसीलिए "काम" को भारतीय संस्कृति में आदिदेव की संज्ञा मिली।

तांत्रिक साधना के कई मार्ग हैं लेकिन उनमें दो ही मार्ग प्रमुख हैं। पहला है शैवमार्ग, जिसमें शिव प्रधान है और शक्ति है गौण। दूसरा है, शक्तिमार्ग जिसमें शक्ति प्रधान है और शिव है गौण। इन दोनों साधना-मार्गों के अनुयायी सारे संसार के मूल में शिव-शक्ति का संबंध बतलाते हैं। उनकी दृष्टि में सारी सृष्टि मिथुनात्मक है। ऊपर का होंठ शिववाचक और नीचे का होंठ शक्तिवाचक है। दोनों के संयोग से ही शब्दों का प्रस्फुटन होता है। तांत्रिक दृष्टि में भूत, वर्तमान, भविष्य सभी काम से ही प्रवृत्त होते हैं। यह काम अस्तित्व का नहीं है। वह स्त्री-पुरुष-सम्बन्धात्मक है।

बाबा थोड़ी देर बाद आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की ओर निहारते हुए गंभीर रूप में कहने लगे, कापालिक वीरेश्वर संन्यासी तंत्र के इन तमाम गूढ़ रहस्यों को और उनके मर्मों को समझ न सका था। उसने केवल साधना की थी। पर साधना के तथ्यों से अपरिचित था। और यही सब कारण था कि वह अंतर्द्वंद्व में फँस गया था उस समय।

हाँ, तो उसके बाद फिर क्या हुआ। थोड़ा सहिष्णु होकर पूछा मैंने ?

होगा क्या ? जो होना था ऐसी स्थिति में वही हुआ। वीरेश्वर संन्यासी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा रानी राजलक्ष्मी की उन तमाम बातों का। उस समय उसकी मानसिक स्थिति डाँवाडोल थी। दोनों हाथों से रानी राजलक्ष्मी को हटाकर उठ खड़ा हुआ संन्यासी। उसका मन विक्षिप्त था उस क्षण।

पंचवटी के चबूतरे को वह छोड़कर मंदिर में चला गया। ...माँ! मुझे मार्ग दिखाओ, मुझे शक्ति दो माँ। देवी के चरण युगल को दोनों हाथों से पकड़कर बिलख-बिलख कर रोने लगा वीरेश्वर संन्यासी। ...मुझे निर्देश दो माँ। मैं आज इसी क्षण, इस राज्य को छोड़ कर अपने मठ में चला जाऊँगा। मैं जीवन भर की तपस्या और सप्त विभूतियों का विसर्जन कर दूँगा। तुम्हारे सामने अपनी बलि दे दूँगा। वह कुछ क्षण तक माँ महामाया के सौम्य, शांत और तेजोमय मुखमंडल की ओर निहारता रहा और फिर सहसा बलि देने वाला खड्ग उठा लिया उसने।

तभी मातंगिनी दौड़ती हुई मंदिर में प्रविष्ट होकर विह्वल स्वर में बोली,

“महाराज! जल्दी कीजिये। रानी तड़फड़ा रही हैं पंचमुण्डी आसन पर।”

यह सुनते ही संन्यासी के हाथ से बलि देने वाला भयंकर खड्ग छूट गया। तेज कदमों से वह मांतगिनी के पीछे-पीछे चल पड़ा। सचमुच रानी राजलक्ष्मी पंचवटी के चबूतरे के नीचे अचेत, मूर्च्छित पड़ी हुई थीं। सारा शरीर खून से लथपथ था। सांसों की गति धीरे-धीरे टूटती जा रही थी। तेज बरछी उसका वक्ष चीर कर काले पत्थर की मूर्ति को भी भेदती हुई चबूतरे में जा धँसी थी।

संन्यासी ने सहारा देकर दोनों हाथों से रानी राजलक्ष्मी की रक्त-रंजित देह उठायी। संन्यासी की गोद में रानी ने एकबार धीरे-धीरे आँखें खोलीं। बुझे स्वर में अटक-अटक कर बोली, “ईश्वर ने, धर्म ने, संसार ने, समाज ने, सभी ने, यहाँ तक कि भाग्य ने भी मुझे छला। मैं ... छली गयी मैं छली गयी।”

दूसरे क्षण रानी राजलक्ष्मी की निष्प्राण काया झूल गयी संन्यासी की गोद में।

“यह दुष्कार्य किसने किया है मांतगिनी ?” संन्यासी के अश्रु उमड़ पड़े। रानी के शव को अपने सीने से लगा कर वह बिलख-बिलख कर रो पड़ा।

मांतगिनी ने सिसकते हुए बताया, “बड़े सरकार के हुक्म से जनार्दन मवाली ने। यह विषाक्त बरछी उसी की है महाराज।” और तभी एक लक्ष्यभ्रष्ट तीर संन्यासी के कान के पास से सनसानाता हुआ जा निकला और पंचवटी के बेल के पेड़ में जा धँसा।

महाराज ! आप तुरन्त भाग जाइये। आपके प्राणों का भी संकट है। आप ... मांतगिनी का वाक्य अभी पूरा नहीं हुआ था कि उसी समय दूसरा बाण सनसानाता हुआ आकर उसकी पीठ में घुस गया। भलभलाकर खून निकल पड़ा दूसरे क्षण। ज़मीन पर लुढ़क पड़ी मांतगिनी। उसकी साँस उखड़ने लगी। फिर भी मरते-मरते उसने संन्यासी को बतलाया, “बड़े सरकार को संदेह हो गया था। पन्द्रह दिन पहले मंदिर में आकर वह आप दोनों की सारी बातें सुन गये थे।”

फिर मांतगिनी सदा के लिये मौन हो गयी। वीरेश्वर संन्यासी रानी का शव लिये हुए धीरे-धीरे सरोवर की ओर बढ़ चला। एक अनिर्वचनीय आनंद से उद्भासित हो उठा उसका उज्ज्वल मुखमंडल वह गुन-गुना कर गा उठा— “आज वसन्त आओल पिया, मुख हेरी।”

और फिर संन्यासी ने हौले से गर्दन झुका कर रानी के निष्प्राण होठों पर अपने होंठ रख दिये। रानी का निस्तेज चेहरा भीग उठा संन्यासी के आँसुओं से। अभी दोनों होंठ मिले हुए ही थे कि सहसा विष से बुझ हुई एक बरछी आकर संन्यासी की भी पीठ में धँस गयी। दूसरे क्षण रानी को गोद में लिये हुए ही सरोवर की सीढ़ियों पर औंधे मुँह गिर पड़ा वह। उसके बाद आपस में आलिंगनबद्ध से दोनों निर्जीव शरीर लुढ़कते हुए सरोवर के गहरे जल में डूब गये। उस समय भोर होने ही वाला था। पूरब के स्याह आकाश में शुक्रतारा उदय हो चुका था, जिसका प्रतिबिम्ब झिलमिला रहा था सरोवर के शान्त जल में।

काफी समय हो चुका था। तारानाथ ब्रह्मचारी इतना सब सुनाने के बाद अपने

स्थान से उठे और खड़ाऊँ पहन कर खट-खट करते हुए नदी की ओर चले गये बिना मुझसे आगे कुछ बोले।

○○○

मानव-मन की अन्तर्वेदनाओं में डूबी हुई वीरेश्वर संन्यासी और रानी राजलक्ष्मी की पीड़ामयी मर्म-स्पर्शी व्यथा-कथा सुनने के बाद मेरे मस्तिष्क में भावनाओं का तूफान उठ खड़ा हुआ था। उस रात भी सो न सका मैं। बार-बार रानी का विषाद भरा और करुणा में डूबा हुआ चेहरा मेरे मानस-पटल पर थिरक उठता था।

बिल्कुल भोर में जब पूरब का स्याह आकाश धीरे-धीरे सफेद हो रहा था, उठ कर चल पड़ा मैं हवेली की तरफ, चारों तरफ सन्नाटा था। गाँव के बाहर थोड़ी दूर जाने के बाद जहाँ रूपाक्षी अर्धचन्द्राकार घूमी थी, वहीं से दिखायी पड़ गया मुझे देवी चामुण्डा का मंदिर। और जब वहाँ पहुँचा तो एकबारगी स्तब्ध रह गयी मेरी आत्मा। समाधि की अवस्था में मैंने कई बार जो कुछ देखा था, जो दृश्य देखा था, वह सब मेरे सामने था उस समय, वही बरगद, पाकड़ और पीपल के पेड़, वही बेल, आँवला, हरे, नीम, कदम्ब आदि के झुरमुट और वही दीवार फोड़ कर निकली हुई किसी कूबड़ की तरह पेड़ की जड़...। मंदिर पूरी तरह खँडहर में बदल चुका था। मगर देवी चामुण्डा की मूर्ति अभी भी मंदिर में थी। लगभग पाँच फुट ऊँची काले पत्थर की बनी वह विकराल मूर्ति बड़ी भयानक और सजीव लगी मुझे। पंचमुण्डा आसन पर बलि देकर स्थापित की गयी देवी की उस पाषाण प्रतिमा में अभी भी तेज विद्यमान था और अभी भी दप-दप कर रहा था उनका मुखमंडल। माँ के चरणों पर न जाने कब की धूल की मोटी पर्त जमी थी। उसे हाथों से साफ कर जब मैंने चरणों पर माथा रखा, तो न जाने क्यों आँसू की कुछ बूँदें ढुलक कर माँ के चरणों पर बिखर गयीं। फिर न जाने कब तक मैं माँ महामाया के भुवनमोहिनी रूप की ओर अपलक निहारता रहा। ऐसा लगा मानों माँ के अविचल नेत्र अपनी मूक भाषा में मुझसे कह रहे हों, जिस भटकती हुई आत्मा की करुण पुकार सुन कर तुम यहाँ आये हो, उसकी अतीत का साक्षी हूँ मैं। और उसकी उन स्मृतियों की भी साक्षी हूँ जिन पर समय की धूल पड़ चुकी है। यह वही मंदिर है जहाँ उस आत्मा ने एक संसारत्यागी विरक्त संन्यासी के लिये प्रेमोन्माद के वशीभूत होकर अपने आपको उत्सर्ग किया था।

मंदिर के सामने पंचमुण्डा आसन था। कई जगह उसके पत्थर उखड़ गये थे। वहीं एक मरियल-सा कुत्ता बैठा ऊँघ रहा था। थोड़ी दूर पर पंचवटी भी दीख गयी, जिसके पेड़ों के पत्ते सूख कर न जाने कब के झड़ चुके थे। डालें टूँठ हो गयी थीं। पंचवटी के बगल में भव्य सरोवर था जिसके चारों ओर की सीढ़ियाँ टूट कर आड़ी-तिरछी हो गयी थीं। पानी की जगह अथाह कीचड़ भरा हुआ था। यह वही सरोवर था जिसके जल में कभी दो व्याकुल आत्माएँ समाधिस्थ हुई थीं एकसाथ। मैं गालों पर हाथ धरे न जाने कब तक धूल से भरी उन टूटी-फूटी सीढ़ियों पर बैठा रहा।

सरोवर से थोड़ी दूर पर राजमहल का सिंहद्वार था। और उसके बाद के लम्बे चौड़े राजमहल के खँडहर। चारों ओर सायँ-सायँ हो रहा था एक विचित्र-सी उदासी

और एक अबूझ-सी खिन्नता व्याप्त थी खँडहर के वातावरण में।

विचित्र-सी अनुभूति हुई मुझे वहाँ बुर्जियों पर घूमते हुए। हर क्षण यही लगता कि सधी हुई हवा की उस अवशता के बीच कोई कीमती राजसी पोशाक पहने पैरों में जरी की जूतियाँ डाले कोई धीरे-धीरे चलता हुआ अतीत के जीर्ण-शीर्ण काले पर्दे को हटाकर उस डरावने अंधेरे वातावरण में मन प्राणों को सहसा ही स्तंभित कर देगा। मगर कोई आया नहीं। सतर्कता से एक-एक कमरे, एक-एक बारादरी, बरामदों और दालानों को देख लेने के बाद निराशा ही हुई।

राजमहल के खँडहरों में भटकते हुए पूरा दिन निकल गया। मगर समय का पता न चला। सूरज डूब चुका था लेकिन पश्चिम के क्षितिज पर उसकी लालिमा अभी भी उत्तर से दक्षिण तक फैली हुई थी।

जैसे ही मैंने सोचा कि वापस लौट चलूँ उसी समय हाँफती हुई शुचि देवी सामने खड़ी हो गयीं आकर।

“मैं सवेरे से आपके लिये परेशान हूँ। न चाय पी और न तो नाश्ता किया आपने। समय का भी ज्ञान नहीं है आपको। साँझ हो गयी। आप दिन भर से भूखे-प्यासे इन खँडहरों में घूम रहे हैं। वह एक ही साँस में इतनी सारी बात बोल गयीं।

जब मैं खँडहरों से निकल कर बाहर मैदान में आया तो देखा, सारा आकाश अचानक काले-भूरे बादलों से भर गया था और उद्दाम हवा के लय पर पेड़ झूम रहे थे आकाश की ओर निहार कर मैंने कहा, “पानी आयेगा शुचि देवी।”

“हाँ, आयेगा तो।”

वहाँ से लगभग दो मील पर था गाँवा। तेज गति से हम दोनों वापस लौट पड़े। मन में यही सोच रहे थे कि पानी अभी न गिरे अभी न गिरे। मगर बारिश शुरू हो ही गयी। पहले टप-टप कर बूँद टपकीं फिर झर-झर कर बरसने लगा आकाश। उद्दाम हवा का तूफानी विलाप भी गूँज उठा।

शुचि देवी, रुक जाइये। मैंने उनका हाथ थाम कर कहा और दोनों चामुण्डा मंदिर के भीतर चले गये।

अब तक हम दोनों काफी भीग चुके थे। बारिश जोर-शोर से होती रही, कड़कड़ा कर बिजली चमकी। धीरे-धीरे बारिश की गति बढ़ती ही गयी। सोचा, कहीं जल-समाधि ही न हो जाये, हम दोनों की यहीं। अंधेरा गहरा गया था और गहरे अंधेरे में आकण्ठ डूबे हुए मंदिर में श्मशान के प्रेत जैसे खड़े थे हम दोनों।

अजीब था वह वातावरण। गहन अंधकार के समुद्र में धरती और आकाश मानो मिलकर एकाकार हो गये थे। शीतल अंधकार और उसके बीच दप्-दप् होने वाली जुगनुओं की हरी-हरी चमक और उद्दाम वासना लिये उठती पानी की भीनी-भीनी महक। सहसा श्यामल आकाश के विशाल कक्ष को जलाती हुई बिजली चमकी। इस क्षितिज से उस क्षितिज तक का काला पड़ा आकाश का विस्तार प्रखर आलोक से उद्भासित हो उठा। साथ ही अंधकार में डूबे वातावरण को मथती हुई विद्युत-वाणी भी गरज उठी।

भय और आंतक से शुचि देवी एकाएक मेरे गीले शरीर से लिपट गयीं।

उफ! सारा शरीर झनझना उठा मेरा।

डर लग रहा है क्या ? मैंने धीरे से पूछा।

हाँ। कह कर शुचि देवी और कस कर लिपट गयीं मुझसे। उनकी भींगी केश राशि मेरे चेहरे पर बिखर गयी उनकी गर्म-गर्म सासों को मैं अपने बिल्कुल करीब महसूस करने लगा और साथ ही उनके पुष्ट अंगों का मन को विचलित करने वाला उत्ताप भी। सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ गयी। रोम-रोम सनसना उठा और साथ ही गर्म हो उठा मस्तिष्क भी।

शुचि देवी के दोनों हाथ कसते गये मुझे। फिर उन्होंने अपने शरीर को निढाल छोड़ दिया मेरे ऊपर। बड़ी विचित्र लगी मुझे उनकी यह स्थिति।

शुचि देवी! क्या हो गया है आपको ? अपने को सँभालिये। मगर शुचि देवी ने न कोई जवाब दिया और न अपने को सँभाला। वह विवश-सी टिकी रहीं मेरे ऊपर। उसी समय एक अविश्वसनीय घटना घट गयी। मैंने धीरे से शुचि देवी को अपने से अलग करना चाहा तभी वह बोल पड़ी— “आपके यहाँ आने से मेरी आत्मा को असीम शांति मिली है। अब मुझे छोड़ कर मत जाइयेगा...।” एकबारगी चौंक पड़ा मैं। शुचि देवी का स्वर नहीं था वह। कोई और ही बोल रहा था उनके मुख से। कौन था वह ? क्या! रानी राजलक्ष्मी की आत्मा थी ? हाँ। उसी की अतृप्त आत्मा थी। शुचि देवी के माध्यम से उसकी आकुलता फूट पड़ी थी उस घड़ी। समझते देर न लगी मुझे यह रहस्य। बहुत कोशिश करने के बाद भी शुचि देवी मुझसे अलग न हो सकी। जैतून की शाख की तरह उसकी कोमल भुजाएँ कसती ही गयीं मेरे शरीर को। फिर अचानक एक झटका-सा लगा और वह मुझसे अलग हो कर गिर पड़ी जमीन पर और बेहोश हो गयीं।

दूसरे दिन अमावस्या थी।

पिछली रात शुचि देवी को होश नहीं आया था। पूरी रात अचेत रहीं वह। और उसी अवस्था में उन्होंने रानी राजलक्ष्मी के अपार्थिव रूप को देखा था और बातें की थीं। सवेरा होने पर जब होश आया तो मेरी ओर गहरी नज़रों से देखती हुई पूछने लगीं वह— “मुझे कल क्या हो गया था ? अचेतन अवस्था में मैंने जो कुछ देखा था, वह सब सच था ? क्या सचमुच वासना के वशीभूत हो गयी थी मैं ? आपके प्रति मेरे मन में जो भाव है, उसमें वासना की मैल और गंदगी कैसे मिल गयी ?

शुचि देवी को इन तमाम प्रश्नों का क्या जवाब देता मैं ? चुपचाप सुनता रहा। मुझे इस बात का पूरा विश्वास अब हो गया था कि रानी राजलक्ष्मी की आकुल आत्मा सशरीर अवश्य मिलेगी मुझसे। इसलिये अमावस की रात गँवाना नहीं चाहा था मैं साँझ होते ही राजमहल के वीरान खँडहरों की ओर मैं चल पड़ा। शुचि देवी भी मेरे साथ चलना चाहती थीं मगर मैंने मना कर दिया।

मौसम उस दिन भी काफी खराब था। सेवरे से ही हल्की-हल्की वर्षा हो रही थी और बादल गरज रहे थे। लेकिन जैसे ही चामुण्डा मंदिर के करीब पहुँचा, उसी

समय प्रबल वेग से वर्षा होने लगी, और देखते ही देखते धरती-आकाश एकाकार हो गये। अंधकार के अंतहीन समुद्र के बीच एक बार मेरा मन-प्राण काँप गया भय से। लेकिन वह अज्ञात भय अधिक समय तक नहीं रहा। फिर न जाने कब तक अमावस की अराजकता भरी रात में बदहवास-सा भटकता रहा खँडहरों में। ऐसा लगता था कि किसी भी क्षण, किसी भी तरफ से निकल कर सामने आ जायेंगी रानी राजलक्ष्मी। गहन अंधकार की काली चादर फाड़ कर वह एकाएक प्रकट हो जायेंगी। किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। इंतजार की घड़ियाँ धीरे-धीरे खत्म हो गयीं और मैं निराश हो गया। सोचने लगा अब क्या करूँ ? उस घोर वर्षा में और उस घोर अंधकार में वापस लौटना मुश्किल ही था मेरे लिये। अचानक मुझे पैर में कोई तीखी चीज चुभने का अनुभव हुआ। भयंकर पीड़ा से कराह उठा मैं। उसी समय भयानक बिजली चमकी जिसके क्षणिक प्रकाश में एक भयंकर काला विषधर झाड़ियों के भीतर जाता हुआ दिखलायी पड़ा मुझे। दूसरे क्षण मेरा सारा शरीर सनसनाने लगा। गला भी सूखने लगा। सारी सृष्टि घूमती हुई लगने लगी। जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ पानी में भीगता और अंधेरे में गिरता-पड़ता गाँव की ओर भागा मैं। हवा और पानी के कारण जहर अपना असर तेजी से दिखा रहा था। मैं पूरी तरह चेतनाहीन होने के पहले गाँव में पहुँच जाना चाहता था।

मगर क्या पहुँच पाया मैं ?

नहीं !

पंचवटी के करीब पहुँचते ही मैं बेहोश होकर गिर पड़ा कीचड़ में और मेरी बाह्य चेतना लुप्त हो गयी। और उस अचेतनअवस्था में मैं एक ऐसे अज्ञात और रहस्यमय वातावरण में पहुँच गया जहाँ न वर्षा का हाहाकार था, न हवा का तूफानी विलाप, और न तो थी भयानक रव करती हुई बिजली की दाहक चमक। घोर अंधकार का अंतहीन समुद्र भी न था। चारों ओर कोहरा जैसी परतों में लिपटा हुआ शुभ्र स्निग्ध प्रकाश फैला हुआ था। आत्मा का स्पर्श करने वाली एक विचित्र-सी शांति बिखरी हुई थी वहाँ चारों तरफ। ऐसा लगा मानों मैं किसी अनजाने और अपार्थिव लोक में पहुँच गया हूँ। जहाँ केवल कोहरे जैसी धुंध थी। धवल प्रकाश था, गहरी शांति थी, गहरी नीरवता थी। गहरी खामोशी थी और गहन शून्यता का साम्राज्य। निश्चय ही वह कोई व्यक्त न की जाने वाली अलौकिक अनुभूतियों से भरा मनोरम पारलौकिक जगत था, जिसमें प्रवेश कर मैंने अपने आपको अत्यधिक हल्का और तरौताज्जा अनुभव कर रहा था और अनुभव कर रहा था अपने आप में असीम स्फूर्ति भी। मेरी मानसिक शक्ति बहुत बढ़ गयी थी, और साथ ही सोचने-विचारने की क्षमता भी। आश्चर्य की बात तो यह थी कि मैं उस रहस्यमय लोक में पहुँच कर इस संसार को भूल चुका था और साथ ही अपने शरीर को भी। न भौतिक जगत की स्मृति थी और न भौतिक शरीर की ही। लेकिन उस अनजाने लोक और उस अनजाने वातावरण में मैं अपने आपको जिस काया में अनुभव कर रहा था, वह थी तो पार्थिव स्थूल काया जैसी ही लेकिन थी पारदर्शक और चमकीली। जब मैं मुँह बाये भौचक्का-सा इधर-उधर डोल

रहा था। डोल क्या रहा था, हवा में जैसे तैर रहा था। उसी समय सहसा एक आकृति प्रकट हुई मेरे सामने। वह आकृति पहले तो धुएँ जैसी थी। बाद में उसने स्पष्ट और ठोस रूप धारण कर लिया। मगर वह भी पारदर्शक और चमकीला था। मैं उस रूप को तत्काल पहचान गया। वह रूप और किसी का नहीं, रानी राजलक्ष्मी का था। वही उद्दाम यौवन से तरंगित देह-यष्टि, बिजली की दाहक चमक वाली, वही यौवन, वही रतनारी आखें और तन-मन को एकबारगी विचलित कर देने वाली वही दैवी छवि मंद-मंद मुस्करा भी रही थी वह। उसके चेहरे पर पूर्ण तृप्ति का भाव भी था। ऐसा लगा मानों मुझे वहीं देख कर उसकी अतृप्त पीड़ा में डूबी हुई और तमाम वेदनाओं से भरी हुई आत्मा को असीम शांति का अनुभव हो रहा हो।

पिछले दिन मुझे वहाँ उन खँडहरों में देखकर रानी राजलक्ष्मी निश्चय ही विचलित हो उठी थी एकबारगी। उससे रहा न गया था अंत में शुचि देवी के माध्यम से उसके अंतर की आकुलता फूट ही पड़ी थी मेरे सामने। शुचि देवी के बदले हुए स्वर, बदले हुए व्यवहार और बदली हुई भाव-भंगिमा से ही यह रहस्य अनावृत हो गया था उस समय।

वह अनजाना और रहस्यमय लोक वास्तव में सूक्ष्म लोक था, जिसमें रानी राजलक्ष्मी की आत्मा पिछले डेढ़-सौ वर्षों से भटक रही थी अकेले। वहाँ की गहरी शांति, गहरी नीरवता, गहरी खामोशी और सर्वत्र छायी हुई गहरी शून्यता ही रानी की आत्मा का परम कष्ट था। परम पीड़ा थी और थी असीम वेदना और वह उसी कष्ट-पीड़ा और वेदना से चाहती थी मुक्ति। मेरे बिल्कुल करीब आकर विह्वल स्वर में कहने लगी रानी राजलक्ष्मी—“मुझे अपने साथ ले चलो। मैं एक पल भी यहाँ नहीं रहना चाहती। यहाँ का अकेलापन और यहाँ की गहन नीरवता मुझसे सही न जायेगी। एक बार तुमको समाधि की स्थिति में देखा था। तभी से मेरी यह धारणा बन गयी थी कि तुम मुझे मुक्त करा सकोगे। इस घुटन-भरी एकाकी और खामोश जिंदगी से। तुम्हीं से होगा मेरा उद्धार। इसीलिये बार-बार हर अमावस्या को तुमसे सम्पर्क किया करती थी मैं।”

“मगर यह सम्भव कैसे होगा?” मैंने पूछा। अपने मन और विचारों को संकल्प में नियोजित कर समाधि की अवस्था में मेरे उद्धार की कामना करनी होगी तुम्हें... बोलो कर सकोगे ऐसा ?” रानी राजलक्ष्मी के स्वर में अनुनय था और थी याचना।

मैं इस प्रक्रिया से परिचित था। इससे कामना, वासनाजन्य अतृप्त मानवीय आत्माएँ पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की परिधि अथवा सीमा पार कर बिना किसी बाधा के हमारी इस दुनिया में आ जाती हैं और समयानुसार उनका कहीं जन्म भी हो जाता है। खैर, सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी मैंने।

रानी राजलक्ष्मी और मातंगिनी मरने के बाद भी साथ-साथ रहीं। उस समय मुझे घोर आश्चर्य हुआ जब रानी राजलक्ष्मी की आत्मा ने बतलाया कि शुचि देवी के रूप में मातंगिनी ने ही जन्म लिया है।

पूरे तीन दिनों तक बेहोश था और उस बेहोशी की अवस्था में पूरे तीन दिनों तक रानी राजलक्ष्मी के सान्निध्य में था मैं। एकाएक मुझे सुनाई पड़ा, क्या हुआ। विष

उतरा? होश आया ? फिर अपने आप मेरी बँद आँखें खुल गयीं। गला सूख कर काँटा हो गया था। सारा शरीर तप रहा था। आँखें जल रही थीं। चारों तरफ सिर घुमा कर देखा। गाँव के बहुत सारे लोग मुझे घेर कर खड़े थे। तारानाथ ब्रह्मचारी भी थे। उन्हीं के प्रयास से विष उतरा था और चेतना लौटी थी मेरी। बाबा बोले, वह विषधर सर्प और कोई नहीं, महातंत्रसाधक कालिकानंद संन्यासी थे। शुरू से ही उनकी आत्मा सर्प के रूप में निवास कर रही है राजमहल के खँडहरों में। गाँव के लोगों ने और स्वयं उन्होंने भी कई बार प्रत्यक्ष देखा है उस कापालिक संन्यासी को वहाँ धूमते हुए।

पानी! मैंने धीरे से पानी माँगा।

दूसरे क्षण हाथ में पानी का गिलास लिये शुचि देवी आयीं। उनकी आँखें फूली हुई थीं और चेहरा उतरा हुआ था। शायद खूब रोयी थी वह। मैं उनकी आँखों में झाँकने लगा। मैं उनमें कुछ खोजना चाहता था। तभी न जाने शुचि देवी को क्या हुआ कि वह मुझसे लिपट गयीं और फफक-फफक कर रोने लगीं।

शुचि देवी। मैं हौले से बोला। और उसी समय मेरी दृष्टि शुचि देवी की पीठ पर अटक गयी। वहाँ शायद विष से बुझी हुई बरछी का निशान था।

अचानक मेरे मुँह से निकल गया। हे भगवान ! कैसा संयोग है यह।



रहस्यमयी राजकुमारी की रहस्यमयी साधना

उन दिनों “भारतीय विद्या भवन” (बम्बई) से मासिक पत्रिका “भारती” प्रकाशित होती थी। मैं विशेषतः उसी के लिए भारतीय संस्कृति और साधना से संबंधित विषयों पर लेख लिखा करता था। “भारती” के सम्पादक थे—हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान श्री वीरेन्द्र कुमार जैन। उनके हृदय में मेरे प्रति गहरी निष्ठा थी। मैं भी उन्हें बड़े भाई जैसा समझता था और उतना ही आदर भी करता था। एक बार उन्होंने दीपावली के अवसर पर “भारती” का तांत्रिक विशेषांक निकालना चाहा। मैंने उसके लिए विषयों का चयन कर भेज दिया और साथ में अपना एक तांत्रिक लेख भी। लेख छपा तो उसे पढ़कर बहुत से पाठकों ने मुझे पत्र लिखे। उन्हीं में एक ऐसा भी पत्र था, जिसने मुझे काफी प्रभावित किया। वैसे मैं पाठकों के पत्रों का जवाब कम ही देता हूँ, लेकिन उस पत्र का जवाब देने के लिए मेरा मन तुरन्त तैयार हो गया। वह पत्र पश्चिम बंगाल से “भारतीय विद्या भवन” के पते पर आया था, फिर मुझे रीडाइरेक्ट कर दिया गया था। भेजने वाली थी एक स्टेट की राजकुमारी, जिसका नाम था चारुलता देवी।

चारुलता देवी मुझसे तांत्रिक-साधना के सम्बन्ध में कुछ जानना-समझना चाहती थीं। इसके लिए उन्होंने मुझे बुलाया भी था, साथ ही “तंत्र साहित्य” के लिए मनीऑर्डर भी भेज दिया था। पत्र में कुछ ऐसे गूढ़ और गोपनीय तांत्रिक रहस्यों की ओर संकेत किये गये थे जिनसे यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि राजकुमारी चारुलता को तंत्र-साहित्य का अच्छा ज्ञान ही नहीं है, बल्कि वह तंत्र की अच्छी साधिका भी है।

उसी सप्ताह मैं पश्चिम बंगाल की यात्रा पर निकल पड़ा। तीन दिन की लम्बी यात्रा के बाद मैं रेलवे के उस छोटे से स्टेशन पर उतरा, जहाँ से मुझे स्टेट के लिए चार-पाँच मील और जाना था। जब मैं ट्रेन से उतरा तो साँझ हो गई थी। स्टेशन के एक ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ थे और दूसरी ओर घने जंगलों का सिलसिला था। चारों ओर सन्नाटा साँय-साँय कर रहा था। गाड़ी चले जाने के बाद स्टेशन पर भी निस्तब्धता छा गई। स्टेशन मास्टर से पूछने पर पता चला था कि स्टेट तक जाने के लिए सड़क तो है, मगर कोई सवारी मिलना मुश्किल है, अतः पैदल ही जाना पड़ेगा।

मैं स्टेशन मास्टर के पास खड़ा बातें कर ही रहा था कि एक व्यक्ति आकर मेरे पास खड़ा हो गया। काफी लम्बा-चौड़ा पहलवान जैसा था वह। मुझे ऊपर से नीचे तक देखते हुए उसने पूछा—“क्या आप बनारस से आये हैं ?

मैं सिर हिलाकर बोला—“हाँ ! बनारस से आया हूँ और स्टेट में जाना है।”

उस व्यक्ति ने मेरे पैर छूकर कहा—“मैं आप ही को लेने के लिए स्टेट की ओर से आया हूँ।”

उस पहलवान जैसे व्यक्ति का नाम था लालबहादुर सिंह, मगर लोग उसे लाल साहब कहकर पुकारते थे। वह राजकुमारी का खास ड्राइवर था।

स्टेशन के बाहर राजकुमारी की चमचमाती हुई कार खड़ी थी। हम दोनों उसमें बैठ गये। लाल साहब कार चलाने लगा। सड़क घने जंगल के भीतर से गई थी। करीब एक घण्टा के बाद हम गढ़ी के फाटक पर पहुँचे। पथरीली दीवारों से घिरी वह गढ़ी चाँदनी रात से नहाए जंगली वातावरण में मुझे स्वप्नलोक-सी लगी। दीवारें उसकी बदरंग हो गई थीं। बुर्जियाँ जगह-जगह टूट गई थीं। सब ओर साँय-साँय हो रहा था। लाल पत्थरों से बनी उस ऊँची शानदार गढ़ी की धूल से अटी सीढ़ियाँ चढ़ते समय ऐसा लगा मानों काफी असें से उधर कोई आया ही न हो, मगर गढ़ी के भीतर पहुँचने पर आँखें चौंधिया-सी गईं। मुख्य प्रवेश द्वार के बाद बारादरी थी और उसके बगल में था दीवानखाना। बारादरी के फर्श पर कालीन बिछे हुए थे। छत से कीमती झाड़-फानूस लटक रहे थे। एक काफी लम्बी-चौड़ी गद्दी लगी थी, जिस पर पीले रंग की रेशमी चादर बिछी हुई थी। दीवारों पर राजघराने के अनेक महापुरुषों के तैलचित्र टँगे थे।

लाल साहब मुझे बारादरी में अकेला छोड़कर वापस चला गया। सिर घुमाकर मैं चारों ओर देख ही रहा था कि दो-तीन नौकरानियाँ आ गयीं। वे उड़ियायीं बंगालिनें थीं, नाटा कद, गठीला, कसा हुआ बदन, चौड़ा चेहरा, चपटी नाक। उनके काले स्याह रंग के जिस्म पर सिर्फ लुंगी और आधी बाँह का ढीला-ढाला कुर्ता था। एक नौकरानी ने आगे बढ़कर मुझे इशारे से नहाने-धोने और कपड़ा बदलने को कहा। मुझे आश्चर्य हुआ कि उसने बोलने के बजाय इशारा क्यों किया ? बाद में पता चला कि वहाँ जितनी भी नौकरानियाँ और सेविकाएँ थीं वे सब गूँगी और बहरी थीं।

जब मैंने नहा-धोकर कपड़े बदल लिए तो मेरे पास एक सज्जन आये। वह राजकुमारी के मैनेजर विपिन मजूमदार थे। उन्होंने बतलाया कि इस समय मैं भोजन करके विश्राम करूँ। राजकुमारी कल सबेरे मुझसे भेंट करेंगी।

दीवानखाने के बगल में ही अतिथियों के लिए बड़े-बड़े दो कमरे बने थे। उन्हीं में से एक कमरे में मेरे ठहरने की व्यवस्था की गई थी। तीन दिनों का थका होने के कारण बिस्तर पर पड़ते ही गहरी नींद में डूब गया।

शायद आधी रात का वक्त था। अचानक मेरी नींद उचट गई। निश्चय ही किसी दर्द-भरी चीख से मेरी नींद खुली थी। मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा। कमरे में गहरा अंधेरा था और चारों ओर नीरवता व्याप्त थी। कुछ देर मैं बैठा रहा, फिर सोने का उपक्रम करने लगा, लेकिन काफी चेष्टा करने पर भी नींद नहीं आयी मुझे।

सवेरा हुआ। विपिन बाबू फिर आये। उन्होंने बतलाया कि दोपहर में भोजन के बाद राजकुमारी मिलेंगी, तब तक मैं उनकी लायब्रेरी और संग्रहों को देख लूँ।

नहा-धोकर नाश्ता करने के बाद मैं राजकुमारी की लायब्रेरी और संग्रह को देखने गया। ऊपर की मंजिल में बाँयों ओर हालनुमा दो बड़े-बड़े कमरे थे, जिनकी खिड़कियाँ घाटियों की ओर खुलती थीं। कमरे के फर्श पर कालीन बिछे थे। बीच में काफी लम्बी-

चौड़ी मेज रखी थी। उसके चारों ओर कुर्सियाँ थीं। मेज के ठीक ऊपर एक बड़ा-सा झाड़-फानूस लटक रहा था। कमरे के चारों ओर दीवारों से लगी हुई काफी ऊँची-ऊँची आलमारियाँ थीं, जिनमें काँच के पल्ले लगे थे। उन तमाम आलमारियों में कपड़े की जिल्दों में बँधी हुई ढेरों पुस्तकें रखी हुई थीं। कुछ पुस्तकें अंग्रेजी तथा संस्कृत की थीं और कुछ हिन्दी की, मगर सबकी सब थीं योग और तंत्र से ही सम्बन्धित। उनमें कुछ पुस्तकें काफी पुरानी और हस्तलिखित भी थीं। राजकुमारी का वह दुर्लभ तंत्र-साहित्य का भण्डार देख कर मुझे चौंक जाना पड़ा।

जब मैं दूसरे कमरे में गया तो वहाँ का भी दृश्य देखकर एकबारगी स्तब्ध रह गया। कमरे के चारों ओर दीवारों पर लकड़ी के रैक लगे हुए थे। एक ओर रैक पर भिन्न-भिन्न प्रकार के जानवरों और पशुओं के सिर रखे थे। दूसरी ओर रैक पर जंगली पक्षियों के कंकाल पड़े थे। एक रैक पर तो मनुष्य की अस्थियाँ और तमाम खोपड़ियाँ ही थीं। चार-पाँच नर-कंकाल भी दीवारों से लगे झूल रहे थे। सहसा मेरी चीख निकलते-निकलते रुक गई। एक लम्बे-चौड़े सन्दूक में किसी व्यक्ति की लाश रखी हुई थी। लाश बिलकुल नंगी थी और पीले रंग के किसी द्रव में डूबी हुई थी। नजदीक जाकर देखा—किसी संन्यासी की लाश थी वह। सिर मुड़ा हुआ था। गले में स्फटिक और रुद्राक्ष की माला पड़ी थी। मस्तक पर लाल सिन्दूर का टीका लगा था। देखने में ऐसा लगता था, मानों वह गहरी नींद में सो रहा हो। कौन था वह संन्यासी ? किसकी लाश थी वह ? समझ में नहीं आया मुझे।

उसी समय विपिन बाबू आ गये, बोले—“भोजन कर लें। राजकुमारी जी से मिलने का समय हो गया है अब।”

“एक बात पूछ सकता हूँ मैं ?”

विपिन बाबू ने अचकचाकर मेरी ओर देखा—“पूछिए। क्या पूछना चाहते हैं ?”

“यह शव किसका है ?”

“ओह !” विपिन बाबू ने जोर से साँस लेकर कहा, “यह राजतांत्रिक तारानाथ भट्टाचार्य का शव है। पिछले १० वर्षों से इसी प्रकार रखा हुआ है।”

“क्यों ?”

विपिन बाबू गम्भीर हो उठे, बोले—“इसका रहस्य तो आपको राजकुमारी साहिबा ही बताएँगी।”

भोजन करने के बाद मुझे राजकुमारी के खास महल में ले जाया गया। उसे महल न कहकर स्वर्ग का एक भाग ही कहा जाय तो उत्तम होगा। फर्श पर बिछे कालीन, रंग-बिरंगी चमकती हुई संगमरमर की दीवारें ... छत से लटकते हुए कीमती झाड़-फानूस और स्फटित रैकों पर रखी हुई देशी-विदेशी बहुमूल्य कलाकृतियाँ।

राजमहल के उस भव्य और विशाल कमरे के बिल्कुल मध्य में काले रंग के संगमरमर का काफी बड़ा कमल-दल बना था, जिसके भीतर गुलाब और केवड़ा मिला हुआ पानी भरा था। कमल-दल के बीच में नृत्य-मुद्रा में एक सुन्दर युवती की पाषाण-प्रतिमा खड़ी थी।

कमरे के एक ओर काफी लम्बा-चौड़ा पलंग था, जिस पर काफी मोटा गद्दा था और लाल रंग की मखमली चादर बिछी थी। उसी पलंग पर मसनद के सहारे राजकुमारी चारुलता देवी अध-लेटी हुई बैठी थी।

दरवाजे पर झूलते रेशमी पर्दे को हटाकर मैं कमरे में घुसा तो सबसे पहले मेरी नजर राजकुमारी पर ही पड़ी। उसके रूप और यौवन को देखकर मैं ठगा-सा रह गया। वैभव और विलास की सामग्री से सुसज्जित उस रंगमहल में राजकुमारी अप्सरा-सी लग रही थी। वह अपनी उम्र से कम लग रही थी और यौवन गदराया हुआ था। उसने अद्भुत शृंगार कर रखा था। उसके झीने वस्त्रों से उसका हर अंग स्पष्ट झलक रहा था।

मुझे देखकर राजकुमारी धीरे से मुस्कराई, फिर अभिवादन करके उसने पलंग के सामने रखी कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। मैं बैठ गया। कुछ ही क्षणों बाद एक परिचारिका ने स्फटिक की थाली में विदेशी शराब की बोतल और पत्रे की दो कटोरियों में मदिरा डाली। एक कटोरी अपने लिए रखकर दूसरी उसने मेरी ओर बढ़ा दी। कटोरी लेते समय राजकुमारी की उँगलियों का स्पर्श हो गया, तो लगा जैसे पूरा शरीर झनझना उठा हो।

“भारती में प्रकाशित आपका लेख बड़ा प्रभावशाली था।” एक घूँट मदिरा-पान करके राजकुमारी ने पूछा, “कब से लिख रहे हैं आप ?”

“पिछले दस-बारह वर्षों से।” मैंने धीरे से उत्तर दिया।

“तांत्रिक-साधनाओं का भी आपको अनुभव होगा ?”

“जी हाँ, थोड़ा-बहुत तो है ही।”

“तंत्र के प्रागैतिहासिक काल के सम्बन्ध में क्या धारणा है, आपकी ?” दुबारा कटोरी में मदिरा डालती हुई राजकुमारी ने पूछा।

राजकुमारी चारुलता का अध्ययन वास्तव में गहरा था। वह एक प्रकार से मेरी परीक्षा ले रही थी। मदिरा-पान करके कटोरी को मेज पर रखते हुए मैंने कहा—
“ऐतिहासिक विवरण के अनुसार हमारे देश में आर्यों के आने के पहले अनेक आर्येतर जातियाँ थीं जिनका विभाजन करने पर दो प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देते हैं। पहला यक्ष जाति का प्रभाव और दूसरा अन्य सभी जातियों की धार्मिक साधना का प्रभाव। इसी परिस्थिति में आर्य आये। इन तीनों में जो परस्पर भेद था वह इतिहास-निर्माण में अपना काम करने लगा। उस समय के धर्म और दर्शन के अनुसार आर्यों में मुख्य रूप से आनन्दवाद, यक्षों में विलासवाद और आर्येतर जातियों में सुखवाद की प्रधानता थी।”

“क्या उस समय शक्ति पूजा थी ?” राजकुमारी ने प्रश्न किया।

“जी हाँ ! वेदों में प्रकृति की जिन शक्तियों का वर्णन किया है, उन दिनों उन्हीं शक्तियों की पूजा होती थी, मगर उनका रूप तीनों जातियों में भिन्न-भिन्न था। आर्यों में वह पुरुष-शक्ति के रूप में, यक्षों में स्त्री-शक्ति के रूप में और आर्येतर जातियों में पुरुष-पराक्रम के रूप में थी, मगर वह पुरुष आर्यों का पुरुष नहीं था, बल्कि वह

नीरस था और उसमें भय की भावना थी। जहाँ तक योग और तंत्र का प्रश्न है, प्रारम्भ में वह केवल आर्येतर जातियों में ही था। बाद में अन्य जातियों ने भी उन्हें स्वीकार कर लिया।”

क्षण भर रुका मैं। राजकुमारी उत्सुकता से ताकती हुई सुन रही थी। मैंने कहा— “प्रकृति की शक्तियों के प्रति तीनों जातियों में अनेक प्रकार की शंका, विस्मय और जिज्ञासाएँ थीं। वे प्रकृति के रहस्यों को जानने-समझने के लिए व्याकुल और उत्सुक थे। जहाँ एक ओर वे इन रहस्यों को जानने-समझने का भगीरथ प्रयास कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर प्रकृति की अपौरुषेय शक्तियों को अपने आप में भरने का प्रयत्न कर रहे थे। वास्तव में तीनों जातियों का यही प्रयास कालान्तर में तंत्र के रूप में प्रकट हुआ।”

राजकुमारी चारुलता बड़े एकाग्रभाव से सुन रही थी। सँझ की स्याह कालिमा पहाड़ों और जंगलों पर फैलने लगी थी। अचानक शंख और घण्टे-घड़ियालों की ध्वनियों के साथ नगाड़े की आवाज गूँजने लगी। राजकुमारी ने मदिरा-पात्र उठाकर गुलाबी होठों से लगाते हुए बताया कि “माँ” की आरती-पूजा हो रही है।

“क्या किसी देवी का मन्दिर भी है महल में?” मैंने पूछा

“हाँ ! माँ तारा का मन्दिर है। करीब एक सौ वर्ष पहले मेरे परिवार के एक महापुरुष ने पंचमुण्डी आसन का निर्माण कर दस महाविद्याओं में श्रेष्ठ तारापीठ की स्थापना की थी। वह बड़े ही सिद्ध महात्मा थे।”

“क्या नाम था, उनका ?”

“मेघनाद भट्टाचार्य ! बाद में अपने इकलौते पुत्र तारानाथ भट्टाचार्य को दीक्षा प्रदान की। वह मेरे पिताश्री थे।”

“आपके पिता ...!” मैं चौंका, मगर मेरे होंठ काँपकर रह गये। आँखों के सामने काँच के सन्दूक में बन्द उस संन्यासी की लाश धूम गई।

पूजा-आरती समाप्त हो चुकी थी। मदिरा-पान भी समाप्त हो चुका था। राजकुमारी पलंग से उठ खड़ी हुई और धीरे-धीरे चलती हुई कमरे से बाहर निकली। मैं भी अनुसरण करता रहा। शायद मंदिर की ओर जा रही थी वह।

कई सीढ़ियाँ चढ़ने-उतरने और दालानों को पार करने के बाद मन्दिर का कमरा दिखाई पड़ा। पर वह बन्द था। राजकुमारी ने गले में पड़े रुद्राक्ष का स्पर्श मन्दिर की ड्योढ़ी से कराया, फिर दोनों हाथों से मन्दिर के बन्द कपाट खोले। भीतर प्रवेश करते ही धूप की सुवासित गन्ध नासापुटों में भर गई। मंदिर में एक प्रकार से अंधेरा था। केवल प्रतिमा के सामने चौमुखा दीपक प्रज्वलित था। मन्दिर का वातावरण मुझे बड़ा रहस्यमय लगा। दीपक के मन्द आलोक में मैंने देखा—सामने पंचमुण्डी आसन पर दस महाविद्याओं में श्रेष्ठ तारा की भव्य प्रतिमा स्थापित थी। काले संगमरमर की वह प्रतिमा करीब पाँच फुट ऊँची थी। भगवती शिवासन पर खड़ी थीं एक पैर शव के हृदय पर था और दूसरा पैर था नाभि पर।

नाभि ज्ञान का और हृदय चेतना का केन्द्र माना जाता है। शव रूप शिव ब्रह्माण्ड

का प्रतीक है। शव पर आरूढ़ चेतना-शक्ति का साक्षात् प्रतीक तारा का अट्टाहास करता हुआ भयंकर रूप देखकर एकबारगी मुझे रोमांच हो आया। भगवती के मुख पर जहाँ क्रोध का भाव था, वहीं शांति की झलक थी। भगवती की बड़ी-बड़ी स्थिर आँखों में करुणा, दया, अनुकम्पा का अथाह सागर लहरा रहा था।

ज्ञान के दस भेद हैं, उनमें से नौ भेदों के प्रतीकस्वरूप नौ नर-मुण्डों की माला माँ के गले में झूल रही थी। दसवाँ अंतिम ज्ञान “परम ज्ञान” कहलाता है। उसका प्रतीक नर-मुण्ड उन्होंने अपने नीचे वाले हाथ में धारण कर रखा था। कमर में दस हाथों की माला का आवरण पड़ा था। ये हाथ कर्म के प्रतीक हैं। ज्ञान की तरह कर्म के भी दस भेद हैं।

पंचमुण्डी आसन के सामने “बलि-बूथ” था, जिस पर ताजा खून लगा था। लगा जैसे अभी-अभी किसी पशु की बलि दी गई हो। पास ही खड्ग पड़ा था। उस पर भी ताजा रक्त लगा था। खड्ग काफी बड़ा और भयानक था। उसका फाल ही कम-से-कम दो फुट चौड़ा था। वजन भी चौदह-पंद्रह किलो से कम नहीं रहा होगा। इतने विशाल और भारी खड्ग की क्या आवश्यकता थी, यह समझ में नहीं आया मुझे। राजकुमारी शायद मेरे मनोभाव को जान गई। बोली—“कभी-कभी महिष-बलि भी होती है। इसके पहले कभी नर-बलि भी होती थी ...”

“क्या ... नर-बलि ... नर-बलि भी हुई है यहाँ ?” आश्चर्य भरे स्वर से मैंने पूछा।

“हाँ, मेघनाद भट्टाचार्य के समय नर-बलि भी हुआ करती थी। जिन नर-कंकालों और नर-मुण्डों को आपने संग्रहालय में देखा है, वे सब उन्हीं लोगों के हैं, जिनकी कभी यहाँ बलि दी गयी थी।”

यह सुनकर मैं स्तब्ध रह गया और आगे कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हुई। राजकुमारी देवी को प्रणाम करके बाहर निकल आयी। मैंने देखा नशे के कारण उसकी आँखें बोझिल हो चली थीं और चेहरा सुर्ख हो रहा था। राजकुमारी ने मुझसे कल मिलने को कहा, फिर परिचारिका के साथ अपने महल की ओर बढ़ गई।

साँझ हो गई थी। मैंने अतिथिगृह में पहुँचकर घाटी की तरफ वाली खिड़की खोल दी। सुदूर पहाड़ों के पीछे से प्रतिपदा का चाँद झाँक रहा था। मीलों तक फैली उजाड़ मरघट जैसी निर्जन घाटी में चारों तरफ निस्तब्धता छाई थी।

भोजन करने के बाद मैं सो गया। उस रात खूब अच्छी नींद आई। सबेरे जब आँख खुली तो देखा—सामने राजकुमारी की सेक्रेटरी रश्मिबाला खड़ी थी। वह विपिन बाबू की चचेरी बहन है और बचपन से ही राजकुमारी के साथ महल में रह रही है। मुस्कराती हुई बोली—“आप जल्दी तैयार हो जाएँ। राजकुमारी ने आपको शीघ्र बुलाया है। दोपहर का भोजन भी वह आपके साथ ही करेंगी।”

एक घण्टा के भीतर मैं तैयार होकर राजकुमारी से मिलने निकल पड़ा। रंगमहल में पहुँचा तो देखा—राजकुमारी सिल्क की दूधिया साड़ी पहने वीणा बजा रही थी। बालों में मोंगरे की वेणी थी। आँखों में काजल की पतली-सी रेखा और माथे पर ध्रुव तारे-सी चमकती बिंदिया आँचल दुलक कर नीचे गिर गया था। झीने वस्त्रों के भीतर

वक्षों का उभार स्पष्ट झलक रहा था। राजकुमारी उस समय आकण्ठ वीणा की स्वर-लहरी में डूबी हुई थी। होश नहीं था जैसे उन्हें। मैं भौचक्का-सा खड़ा रहा दरवाजे के पास। उसी समय रश्मिबाला आ गई। उसने मुझे कमरे में बैठाया, फिर आलमारी खोल कर कुछ फाइलें निकालीं और मुस्कराती हुई बाहर निकल गई।

थोड़ी देर बाद रश्मिबाला पुनः आई। इस बार उसके हाथ में चाँदी की दो थालियाँ थीं। एक में फल थे और दूसरे में मदिरा एवं स्फटिक पात्र। उसने दोनों थालियों को टेबुल पर रख दिया। राजकुमारी का वीणा-वादन बन्द हो गया। उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा, फिर मुस्कराती हुई उठ खड़ी हुई। पास आते हुए उसने पूछा, “कैसा लगा आपको यहाँ का वातावरण ?”

“बड़ा अच्छा लगा। बहुत शांति है यहाँ। एकान्तमय वातावरण है न, इसीलिए।” मैंने हौले से उत्तर दिया।

राजकुमारी ने अपने हाथों से फल काटकर मुझे दिया, इसके बाद स्फटिक के गिलास में मदिरा ढालने लगी।

“एक बात पूछ सकता हूँ मैं आपसे ? “मैंने गिलास थामते हुए जिज्ञासा से उनकी ओर देखा।

“पूछिए !”

“आप इतनी मदिरा क्यों पीती हैं ?”

राजकुमारी चौंक पड़ी। उसका हाथ हिल गया जिससे मदिरा की कुछ बूदें छलक कर गद्दी पर गिर पड़ीं। उन्होंने जैसे टालने के लिए कहा, “बस यों ही।”

“कोई न कोई कारण तो अवश्य होगा।”

इस बार जवाब नहीं दिया राजकुमारी ने। एक बार गहरी नजरों से मेरी ओर देखा, फिर शराब से भरा स्फटिक का गिलास उठाकर गुलाबी होठों से लगा लिया। मदिरा-पान करते-करते पुनः तंत्र-मंत्र और साधना के प्रसंग में चर्चा छिड़ गई। राजकुमारी ने कहा—“तंत्र का उद्देश्य क्या है— इस विषय में मैं आपसे कुछ जानना चाहती हूँ।”

मैंने क्षण भर सोचकर कहा—“एकमात्र मानव ही विचारशील प्राणी है। केवल मानव ही आदर्श नियमों का निर्माण करता है और केवल वही वर्तमान के आधार पर भूत तथा भविष्य को एक शृंखला में जोड़ने का प्रयास करता है। अपने आदर्श नियमों द्वारा सामूहिक जीवन का नियमन मानव की ही विशेषता है और इसी विशेषता का परिणाम है कि प्रत्येक काल और स्थान में मानव ने जीवन-दर्शन का प्रतिपादन किया, मानव-जीवन की आवश्यकताओं, अभिरुचियों, उद्देश्यों तथा आकांक्षाओं के समन्वय का प्रयास किया गया है।

“हमारे धर्म में इस समन्वय के दो आधार हैं—एक इहलौकिक जीवन की आवश्यकताएँ और दूसरा इस जीवन और संसार से परे पारलौकिक जीवन की आवश्यकताएँ तथा लक्ष्य। हमारे लिए यह संसार एक रंगमंच है और मानव-जीवन मात्र एक साधन है—ऐसी साधन जिससे जीवन स्वतंत्र अर्थात् मोक्ष अथवा मुक्ति की

प्राप्ति होती है। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति जैविक गुण भी है और आवश्यकता भी। मानवता नितान्त शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति से आगे उठा हुआ एक कदम है, क्योंकि शरीर नश्वर है। अगर अमर है तो केवल आत्मा। आत्मा को निरन्तर प्रबुद्ध करते हुए जीवन स्वातंत्र्य की प्राप्ति का प्रयास ही सच्ची मानवता है। वास्तव में मानव-जीवन को केवल शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित नहीं मानना चाहिए। मानवता की माँग है—मोक्ष-जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति और मोक्ष की प्राप्ति धर्म से होती है। मानव का सम्पूर्ण जीवन धर्म से बँधा है। जीवन और जगत से विमुख होने पर मोक्ष नहीं मिलता। वह मिलता है जीवन को उसकी अभिरुचियों के साथ अपनाने में।”

मैंने राजकुमारी की ओर देखा—एकाग्र भाव से सुन रही थी। मैंने एक घूँट मदिरा पीकर आगे कहना शुरू किया—“इसीलिए जीवन धर्म के साथ-साथ अर्थ और काम से भी बँधा हुआ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का समन्वय एवं साधन कर्म से होता है। कर्म के माध्यम से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की साधना का नाम पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ परम आवश्यक है, क्योंकि मानव-जीवन का उद्देश्य केवल पुरुष बने रहना ही नहीं है। मानव जीवन का मूल उद्देश्य है मानवीय स्तर से मानवता की ओर अग्रसर होना, जिसका तात्पर्य पुरुष से पुरुषोत्तम और नर से नरोत्तम होना। यही तंत्र का उद्देश्य है और कर्म के द्वारा पुरुषार्थों का समन्वय एवं साधना ही एकमात्र तंत्र-साधना है। धर्म से अर्थ, अर्थ से काम और काम से मोक्ष की उपलब्धि होती है। तंत्र में मोक्ष का साधन काम को माना गया है, इसीलिए तांत्रिक-साधना में उसका महत्व है।”

“अन्तर्मुखी काम और बहिर्मुखी काम में क्या भेद है ?” राजकुमारी ने प्रश्न किया।

“बहिर्मुखी काम मन-प्रधान है, जब कि अन्तर्मुखी काम का आधार एकमात्र आत्मा है। मन से मन का भोग और आत्मा से आत्मा का भोग अलग-अलग बातें हैं। एक में वासना है और दूसरे में है कामना, आत्मा को बराबर प्रबुद्ध करने की कामना। वैसे यह कामना भी वासना का ही एक दूसरा रूप है, लेकिन उसमें “मन” नहीं है, इसीलिए इसे दूसरे शब्दों में “आत्मा की वासना” कहते हैं। “आत्मवासना” ही मोक्ष है। “तंत्र” ने मोक्ष के स्थान पर “सामरस्य मिलन” शब्द का प्रयोग किया है। सामरस्य भाव का मतलब है—अद्वैत भाव अर्थात् दो विपरीत तत्वों का हमेशा के लिए एकाकार हो जाना।

“यह विचारधारा वैदिक विचारधारा है, जिसके आधार पर तीनों जातियों में तीन प्रकार के तंत्रों का आविर्भाव हुआ। आर्यों की शक्ति उपासना ने वैष्णव तंत्र को जन्म दिया, जिसमें आनन्दवाद की प्रधानता है। यक्षों की शक्ति-उपासना ने शक्तितन्त्र को जन्म दिया। इसी प्रकार आर्येतर जातियों की शक्ति उपासना से शैव तंत्र का आविर्भाव हुआ। वैष्णव तंत्र, शक्ति तंत्र और शैव तंत्र यही तीन तंत्र प्रधान और मुख्य हैं। इनमें से प्रत्येक के चार-चार भेद हैं और प्रत्येक भेद से सम्बन्धित चार-चार साधना-मार्ग और सम्प्रदाय हैं। इस प्रकार बारह तांत्रिक साधना मार्ग और बारह तांत्रिक सम्प्रदाय,

हैं, मगर सब सम्प्रदायों का मूल “शक्ति” ही है और सब साधना-मार्गों का चरम उद्देश्य इसी “शक्ति” की उपलब्धि होता है।

“तंत्र एक महत्वपूर्ण शास्त्र है। तंत्र का कहना है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सर्वत्र समान रूप से एक विशेष आकर्षण शक्ति विद्यमान है उसी का परिणाम है सूक्ष्मतम प्राण-वायु अर्थात् इथर आकर्षण शक्ति और सूक्ष्मतम प्राणवायु एक दूसरे में रसे-भिने हैं। इन दोनों शक्तियों को तंत्र में “परमा” और “परा” शक्ति कहा गया है। इन दोनों का परिणाम या विकार प्रकृति है। प्रकृति शक्ति को तंत्र में “परा-परा” या “अपरा” कहते हैं। आगे चलकर यही तीनों शक्तियाँ मन, प्राण, वाक्, इच्छा, ज्ञान, क्रिया आदि नामों से सम्बोधित की जाती हैं। कालान्तर में जब तंत्र से सगुणोपासना का युग आया तो इन तीनों शक्तियों की कल्पना महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती के रूप में कर ली गई।”

क्षण भर रुककर मैंने कहना शुरू किया—“तांत्रिक साधना लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति की साधना है, मगर जब वह लौकिक भूमि को छोड़कर पारलौकिक दिशा की ओर बढ़ती है तो वह मुख्य रूप से आकर्षण शक्ति की साधना हो जाती है। आकर्षण शक्ति को ही “कामशक्ति” की संज्ञा दी गई है। सारे चराचर जगत की सृष्टि के मूल में एकमात्र आकर्षण है। सबका सार तत्व आकर्षण है और आकर्षण स्त्री-पुरुष संयुति अथवा संयोग में पर्यवसित होता है। आकर्षण मिथुनजन्य है। जहाँ भी आकर्षण होगा, वहाँ मिथुन भाव का जन्म होगा। मैथुन का मतलब है दो विपरीत तत्वों का एकाकार होना, सामंजस्य होना। इस एकाकार अथवा सामंजस्य से जो परिणाम सामने आता है उसे ही “आनन्द” कहते हैं और जिस धरातल पर एकात्मकता अथवा सामंजस्य होता है उसी को “काम” की संज्ञा दी गई है। इसीलिए आदिशक्ति आकर्षण शक्ति को तंत्र में “कामेश्वरी” कहा गया है। “काम” का मतलब है सहचर की कामना। वह सहचरी भी हो सकती है। कामेश्वरी “सहचरी” है और “सहचर” है कामेश्वर अर्थात् शिव। इन दोनों का एक दूसरे के प्रति आकर्षण आदि आकर्षण है और उस आकर्षण के आधार पर दोनों सामंजस्य अथवा “मैथुन” आदिमैथुन है। समस्त विश्व की सृष्टि उसी आदिमैथुन से हुई है और उस आदिमैथुन से जिस आनन्द का जन्म हुआ वही आनन्द परम आनन्द है। “परमानन्द” ही परमेश्वर का एकमात्र स्वरूप है। आनन्द ही सभी कामों को चलाने वाली प्रेरणा शक्ति है। इसी पर अस्तित्व, वृद्धि, विकास, नाश सब कुछ निर्भर है। इसका स्थूल और प्रत्यक्ष अनुभव मैथुन में होता है। “मैथुन” आनन्द सांसारिक जीवन में पराकाष्ठा का आनन्द है। कवि, कविताशास्त्र, शक्ति सब इसी विश्व-वासना के प्रमाण हैं। विश्व-वासना की पूर्ति स्त्री है और सम्पूर्ण मानस-जगत कामशक्ति से ओत-प्रोत है।”

बड़ी देर तक बातें होती रहीं। बीच-बीच में राजकुमारी कुछ पूछ लेती। उसके प्रश्न की गम्भीरता से ही आभास मिल जाता कि उसको इस विषय का कितना गहन ज्ञान है, पर सहज जिज्ञासा भी थी उसमें। जब तक मैं बोलता, वह एकाग्र चित से सुनती रहती थी।

जब भी हम साथ बैठते घण्टों यही चर्चा होती। धीरे-धीरे मुझे वहाँ रहते एक सप्ताह से ऊपर हो गए थे। अब मैं वापस लौटना चाहता था। एक दिन मैंने राजकुमारी से कहा तो वह थोड़ा गम्भीर हो गयीं, फिर कहने लगी—“दीपावली निकट ही है। अब काली पूजा में सम्मिलित होने के बाद ही जाइएगा। आप रहेंगे, तो मुझे प्रसन्नता होगी। फिर बार-बार कहाँ आने वाले हैं, आप ?”

राजकुमारी के इस अनुरोध को मैं टाल नहीं सका। मुझे रुक जाना पड़ा। अब तक उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व अनावृत हो चुका था मेरे सामने, मगर कुछ ऐसी रहस्यमयी बातें थीं जो अभी अंधेरे में ही थीं।

उस रोज मुझे नींद नहीं आ रही थी। बेचैनी से करवटें बदल रहा था। रात शायद आधी से ज्यादा गुजर चुकी थी। सहसा एक आर्तनाद सुनकर मैं बिस्तर से उछल पड़ा। लगा कि चीख मन्दिर की ओर से आई थी। कमरे के बाहर निकल कर मैं उसी ओर चल पड़ा। महल में घोर निस्तब्धता छाई हुई थी। चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। सीढ़ियाँ चढ़कर जब मन्दिर के सामने पहुँचा तो देखा—कपाट तो बंद थे, मगर भीतर प्रकाश झिलमिला रहा था। उत्सुकतावश मैं कपाटों की फाँक से भीतर झाँकने लगा। उसी समय जैसे अन्तर्मन को फाड़कर आने वाला करुण-विचलित एक स्वर सुनाई पड़ा—“माँ, क्या तुम्हारी यही इच्छा है ? इसी तरह जीवनपर्यन्त गल-गलकर बहती रहूँ मैं ? इसी तरह सुलग-सुलग कर भस्म होती रहूँ। बोलो माँ, कुछ तो बोलो, कुछ तो कहो।”

राजकुमारी मूर्ति के सामने पंचमुण्डी आसन पर सिर रखे कातरता से बिलख रही थी। रह-रहकर उसकी देह हिल उठती। मैं स्तब्ध खड़ा देखता-सुनता रहा। कुछ समय में नहीं आ रहा था। आखिर अपने आप को क्यों गला रही है राजकुमारी किसलिए सुलग-सुलगकर भस्म हो रही है वह ? अन्दर-ही अन्दर कौन-सी पीड़ा उसे साल रही है ?

मैं खड़ा सोच ही रहा था कि फटाक से पट खुला और दूसरे क्षण राजकुमारी बाहर निकल आयी। सामने मुझे देखकर वह एकबारगी चौंक पड़ी, पर तुरन्त ही अपने को सँभालकर धीरे से बोली, “आप ! इस समय, यहाँ कैसे ?”

“अगर यही प्रश्न मैं आपसे करूँ तो ? आप इतनी रात को यहाँ क्यों आयी थीं ? कौन-सी वेदना आप को कचोट रही है ? आखिर ऐसा कौन-सा दुःख था आपको जो इस समय माँ के चरणों में व्यक्त करने चली आई, आप। आधी रात बीत चुकी है। यह पूजा-अर्चना का समय तो नहीं है, फिर !”

मैं ऐसी बातें करूँगा राजकुमारी ने इसकी कल्पना भी नहीं की थी। एकबारगी सकपका गयी वह। मौन साधे बड़ी देर तक खड़ी रही अंधेरे में।

उन्हें चुप देखकर मैंने आगे बढ़कर दोनों हाथों से मन्दिर के कपाट बन्द कर दिए, फिर धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतरने लगा। उसी समय अकस्मात् दौड़कर राजकुमारी मुझसे लिपट गई। दोनों हाथों से जोर से मेरी कमर पकड़कर उन्होंने सीने पर सिर रख दिया और हिलक-हिलककर रोने लगी।

मैं फिर स्तब्ध रह गया। हे माँ ! यह क्या हो गया राजकुमारी को ? मेरे सीने

पर माथा टेके विह्वल होकर रो क्यों रही है ? किसी तरह संयत होकर उनके सिर पर हाथ फेरते हुए मैंने पूछा, “क्या हुआ ?”

“मैं बहुत अशांत हूँ, शर्माजी !” “दीपावली आते-आते चित्त और उद्विग्न एवं अशान्त हो जाता है। क्या करूँ मैं ? कहाँ जाऊँ ? कौन हरेगा मेरी पीड़ा ? कौन देगा मुझे शांति ?”

इसके बाद लगातार चार-पाँच दिनों तक राजकुमारी से भेंट नहीं हो सकी। उन्होंने न बुलाया और न मैं ही गया। मगर रश्मिबाला से राजकुमारी के सम्बन्ध में दो-एक बड़ी महत्वपूर्ण बातें अवश्य मालूम हो गयीं। उसने बताया था कि राजकुमारी चारुलता अपने माता-पिता की इकलौती संतान थीं। उन्हें बचपन से ही योग-तंत्र का अध्ययन कराया गया था। जब वह सोलह वर्ष की हुई तो उनके पिता तारानाथ भट्टाचार्य ने उन्हें साधना-मार्ग में अग्रसर किया। वह चाहते थे कि उनकी पुत्री तंत्र-साधना-बल पर तंत्र का उच्चतम ज्ञान प्राप्त करे और योग में भी पारंगत हो।

राजकुमारी साधना-मार्ग में बढ़ती रहीं। ज्ञान का भण्डार भी भरता रहा उनका, मगर तारानाथ भट्टाचार्य अधिक दिनों तक उनका मार्गदर्शन नहीं कर सके। एक दिन समाधि की अवस्था में उन्होंने हमेशा के लिए शरीर त्याग दिया। उस समय राजकुमारी उनके निकट ही थीं। शरीर छोड़ने से पहले भट्टाचार्य महाशय ने क्षण भर के लिए एक बार नेत्र खोले थे। स्थिर दृष्टि से पुत्री की ओर देखते हुए उन्होंने मन्द स्वर में कहा था “चारु ! न तो तुम्हारी साधना पूरी हुई है और न अभी सम्यक् ज्ञान की ही उपलब्धि हुई है तुम्हें। मैं शरीर अवश्य छोड़ रहा हूँ, क्योंकि काल के नियमों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता, लेकिन एक रहस्य की बात सुनो—यह बात कभी किसी को मत बतलाना, मैंने अपने इस शरीर को मंत्रबद्ध कर दिया है। इसके अलावा मैंने तांत्रिक विधि से विभिन्न औषधियों को मिलाकर एक विलक्षण द्रव भी तैयार किया है। तुम मेरे शरीर को उसी द्रव में रख देना, उसके प्रभाव से वह सैकड़ों वर्षों तक नष्ट नहीं होगा और मंत्रबद्धता के फलस्वरूप मैं समय-समय पर अपने इसी शरीर में प्रवेश करके तुम्हें साधना-निर्देश और ज्ञानोपदेश देता रहूँगा।

इतना कहकर उस महातांत्रिक ने अपना चोला छोड़ दिया था हमेशा के लिए। राजकुमारी ने सब कुछ पिता के निर्देशानुसार ही किया। काँच के सन्दूक में उस विलक्षण द्रव को भरकर उन्होंने पिता का शव उसी में रख दिया था। चार साल तक तो कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई, लेकिन अचानक एक रात ऐसी अनोखी और अविश्वसनीय घटना घट गई, जिसने राजकुमारी के हृदय को हमेशा के लिए तोड़कर रख दिया। मानसिक यंत्रणा और उत्पीड़न के अथाह सागर में डूब गई वह।

तारानाथ भट्टाचार्य के चले जाने के बाद राजकुमारी अपने को बिल्कुल अकेली अनुभव करने लगी थीं। हर समय उदास पड़ी रहतीं वह। साधना-उपासना में भी मन नहीं लगता था उनका। कुछ दिन इसी तरह बीते, फिर दीपावली आ गई। हर साल की तरह उस वर्ष भी राजकुमारी के आदेश पर दीपावली की रात्रि में बलि और निशापूजा का आयोजन किया गया। विपिन बाबू ने ही सारी व्यवस्था की। माँ

की पूजा, बलि आदि कठोर तांत्रिक विषयों से हुआ करती थी, जिसे अब तक सम्पन्न करते थे स्वयं तारानाथ भट्टाचार्य महाशय, लेकिन अब कौन उनके रिक्त स्थान को ग्रहण करेगा ?

काफी भाग-दौड़ के बाद विपिन बाबू नदिया से एक तांत्रिक को ले आये। वह अभी युवक ही था। नाम था आशुतोष गोस्वामी। गौर वर्ण, सुगठित देहयष्टि, लम्बा कद, सुन्दर आकर्षक व्यक्तित्व, बड़ी-बड़ी स्वप्निल आँखें, घनी भौंहें, कन्धों तक झूलते काले घुँघराले बाल। ऐसा लगता था मानों कोई देवता ही मनुष्य का रूप धारण करके धरती पर उतर आया हो। राजकुमारी पहले ही दिन अपना आपा खो बैठीं गोस्वामी को देखकर। अस्थिर हो उठीं वह। शायद गोस्वामी की भी यही दशा थी। पहली बार जब उसने राजकुमारी को देखा तो देखता ही रह गया था। महानिशा पूजा के बाद बलि हुई। इसके बाद गोस्वामी ने परम्परा के अनुसार राजकुमारी को रक्त-तिलक लगाया और उसी समय न जाने किस भावना के वशीभूत होकर उसने सहसा राजकुमारी के दोनों हाथों को पकड़ लिया। इतना ही नहीं, उसने झुककर राजकुमारी के गुलाबी होठों पर धीरे से अपने प्यासे होंठ भी रख दिये।

राजकुमारी का सारा शरीर एकबारगी सनसना उठा। पर उन्होंने कोई विरोध नहीं किया। इसके दूसरे ही दिन गोस्वामी की नियुक्ति स्थायी रूप से पुजारी-पद पर कर दी गई और रहने के लिए मन्दिर के बगल में ही एक कमरा भी दे दिया गया उसे।

संध्या-उपासना के बाद भोजन करके गोस्वामी अपने कमरे में सोने चला जाता उसी समय राजकुमारी भी सज-सँवरकर पहुँच जाती थीं। फिर दो युवा हृदय मिल जाते और शुरू हो जाती आनन्दमयी प्रणयलीला। राजकुमारी सुध-बुध खोकर सारी रात गोस्वामी की बाँहों में पड़ी रहतीं।

रोज की तरह उस रात भी राजकुमारी प्रणय-लीला के आनन्द-सागर में आकण्ठ डूबी हुई थीं, तभी अचानक कमरे का बन्द दरवाजा अपने आप खुल गया। उसके साथ ही राजकुमारी की आँखें भी खुल गईं। उन्होंने देखा—सामने अपने शरीर में उनके पिता तारानाथ भट्टाचार्य खड़े थे। राजकुमारी एकबारगी स्तब्ध रह गयीं।

भट्टाचार्य महाशय ने गम्भीर स्वर में इतना ही कहा—“एक साधिका के लिए यह सब अशोभनीय है। उसे केवल अपनी साधना से प्रेम करना चाहिए।”

मगर अपने योगी पिता के इन शब्दों का कोई विशेष प्रभाव राजकुमारी पर नहीं पड़ा। बस, दो-चार दिन वह गोस्वामी के पास नहीं गई, मगर उसके बाद ही फिर शुरू हो गई प्रणय-लीला। पूरे एक साल तक कोई व्यवधान नहीं पड़ा। महल के लोग इस प्रसंग को जान तो अवश्य गये थे, पर किसी को साहस नहीं हुआ था राजकुमारी को कुछ समझाने के लिए।

फिर दीपावली आई। समारोह का आयोजन हुआ। हर साल की भाँति दीपावली की कालरात्रि में महानिशा पूजा करके गोस्वामी ने बलि दी, फिर राजकुमारी के मस्तक पर रक्त का टीका लगाया उसने। रात के तीसरे पहर राजकुमारी अपने महल में लौट आईं।

थोड़ी देर बाद सवेरा हुआ। प्रातःकाल की पूजा-आरती के लिए रोज मन्दिर को धोया-पोछा जाता था, पर उस दिन सवेरे जब परिचारक रामप्रसाद सफाई करने के लिए पहुँचा तो मन्दिर के भीतर घुसते ही उसके मुँह से चीख निकल गई और वह बेहाश होकर लुढ़क गया वहीं फर्श पर।

रामप्रसाद की चीख सुनकर और बहुत से लोग पहुँच गए। राजकुमारी भी आई। सबने विस्मय-विस्फारित आँखों से देखा—गोस्वामी के दोनों हाथ पीछे की ओर रस्सी से बँधे थे। वह पेट के बल जमीन पर पड़ा था और उसकी गर्दन कटी हुई थी। उसका रक्तंजित मुण्ड चाँदी की थाली में माँ महामाया के सामने रखा था। चारों ओर खून ही खून फैला हुआ था।

उस लोमहर्षक दृश्य को देखकर राजकुमारी एकबारगी स्तब्ध रही गई। काफी देर तक वह पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी ताकती रहीं, फिर हा-हाकार करती हुई कटे वृक्ष की तरह भरभराकर गिर पड़ीं।

कैसे हो गई यह अनहोनी ? गोस्वामी की बलि किसने दी थी ? क्यों ? इन तमाम प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं मिल रहा था। सब सहमे-सहमे से अटकलें लगा रहे थे, तभी लालबहादुर दौड़ा-दौड़ा आया वहाँ हाँफते हुए। उसने बताया—“संग्रहालय के फर्श पर जगह-जगह खून लगा है, जैसे किसी के पैरों के धब्बे हों।”

लोग यह सुनते ही चौंक पड़े। जाकर देखा तो सचमुच संग्रहालय के फर्श पर खून से सने पैरों के बिल्कुल स्पष्ट निशान थे। जैसे कोई बाहर से आया हो। उन पदचिह्नों को देखते हुए सब काँच के संदूक के पास पहुँचे तो मुँह से चीख निकल गई। सबने देखा, पदचिह्न वहीं समाप्त हो गए थे और सन्दूक में रखी लाश के हाथों में भी ताजा खून लगा था।

सारा रहस्य समझते देर नहीं लगी। अपने मृत शरीर में प्रवेशकर तारानाथ भट्टाचार्य महाशय ने ही गोस्वामी की बलि दे दी थी माँ महामाया के चरणों में। बाद में लालबहादुर ने बतलाया कि आधी रात के समय उसने एक आर्तनांद भी सुना था मगर वह नींद में था, इसलिए ध्यान नहीं दिया। निश्चय ही वह चीख गोस्वामी की ही रही होगी।

यह रहस्यमय अलौकिक वृत्तांत सुनकर पल भर के लिए स्तब्ध रह गया मैं, फिर उत्सुकता से रश्मिबाला से पूछा—“फिर क्या हुआ ?

“होगा क्या ?” रश्मिबाला ने विषाद-भरे स्वर में कहा, “तभी से अपने आपको और अपने गम को भुलाने के लिए राजकुमारी हर समय शराब पीती रहती हैं। कभी-कभी मन की व्यथा आँसू बनकर बहने लगती है, तब वह मन्दिर में जाकर माँ के सामने रोने-बिलखने लगती हैं।”

वातावरण कुछ बोझिल-सा हो उठा। रश्मिबाला कुछ देर चुपचाप बैठी रही, फिर उठकर धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गई।

एक रोज रात के समय भोजन करने के बाद गहरी नींद में सोया था, पर न जाने कैसे मेरी आँखें खुल गईं। ऐसा लगा मानों कोई मेरे बिस्तर के पास ही खड़ा

है। थोड़ा-सा भय लगा, फिर मैं सतर्क हो गया। मुँह से अपने आप निकल पड़ा—
“कौन है ... कौन अरे रश्मि तुम, इस समय कैसे ?”

“आपको बुलाने आई हूँ। राजकुमारी जी ने आपको इसी समय याद किया है। अभी चलिए मेरे साथ।”

“इस समय ! क्यों ? बात क्या है ?”

“मुझे नहीं मालूम ! बस, आप जल्दी से चलिए।”

टॉर्च जलाकर देखा—दो बजकर पच्चीस मिनट हुए थे। इतनी रात को क्यों मुझे बुलाया है राजकुमारी ने ? क्या कारण हो सकता है ? बहुत सोचने पर भी कुछ समझ में नहीं आया।

मैं अचकचाता हुआ रश्मिबाला के साथ भीतर पहुँचा। रंगमहल का दरवाजा खुला था। भीतर हल्का प्रकाश हो रहा था। मुझे दरवाजे के पास छोड़कर रश्मिबाला वापस चली गई। मैं थोड़ा ठिठका, फिर कमरे में चला गया। हल्के प्रकाश में देखा—राजकुमारी आँधे मुँह पलंग पर पड़ी थी। कपड़े अस्त-व्यस्त थे। बाल भी खुलकर बिखरे हुए थे। चेहरा तकिया में धँसा हुआ था। पलंग के बगल वाली मेज पर शराब की खाली बोतल रखी थी। स्फटिक के दो तीन गिलास भी रखे थे वहाँ। एक गिलास में थोड़ी सी शराब बची थी। शायद राजकुमारी नशे में धुत हो चुकी थी। मैं धीरे से खाँसा। आहत सुनकर ही राजकुमारी ने सिर ऊपर किया। बिखरे बालों की एक लट उनके चेहरे पर झूल गई। कोमल उँगलियों से उसे हटाकर राजकुमारी ने मेरी ओर देखा, फिर सहसा हिलक-हिलककर रोने लगी। आँखें पहले से ही लाल थीं, अब और अधिक लाल हो गईं। मैं पास जाकर बैठ गया। उनके दोनों हाथ थामकर मैंने हौले से पूछा, “कहिए, क्यों बुलाया है, मुझे ? क्या कष्ट है आपको ?”

राजकुमारी जोर से साँस लेकर उदास आँखों से मेरी ओर ताकती हुई धीरे-धीरे बोली—“रश्मि से आपको सब कुछ मालूम हो चुका है। कोई रहस्य आपसे छिपा नहीं रह गया है। अब आप ही बताइए कि मेरे साथ इतना बड़ा अन्याय क्यों हुआ ? क्या मैं प्रेम की अधिकारिणी नहीं हूँ ? क्या साधना में प्रेम का कोई स्थान नहीं है ? आपने ही तो अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि “काम” ही एकमात्र मोक्ष का साधन है। तंत्र में स्पष्ट संकेत किया गया है कि आदिशक्ति का आदिविकास मिथुनात्मक है। यानी “आनन्द” के लिए है, रति के सुख के लिए है। यही विश्व-वासना है। काम जिस “वेग” से, जिस मार्ग में अपने को अभिव्यक्त करता है वही “ऐषणा” है। यदि वह वासना के मार्ग में अभिव्यक्त है तो उसे “भोगैषणा” कहेंगे। यदि वह साधना के मार्ग में अभिव्यक्त है, तो उसको “मोक्षैषणा” कहा जाएगा। इसी प्रकार वह संसार के मार्ग में अपने को अभिव्यक्त करता है तो “लोकैषणा” कहलाएगी। सारे लौकिक-पारलौकिक नियम तथा सामाजिक संबंध कामशक्तिप्रधान हैं। सब मिथुनजनक है। सब आकर्षणात्मक है। पुरुष में रौद्रात्मक, विसंगात्मक और रजात्मक प्रवृत्ति होती है। यही प्रवृत्ति “शिव” है। स्त्री में शांत्यात्मक, आदनात्मक, सहनात्मक प्रवृत्ति होती है वह शक्ति है। शिव और शक्ति को लेकर ही तंत्र की समस्त साधनाओं को संगठित किया

गया है। प्रदान करने वाला पुरुष और ग्रहण करने वाली स्त्री—यह नियम सब जगह है।”

बोलते-बोलते राजकुमारी उठ पड़ी। उस समय उसका चेहरा तमतमाया हुआ था और होंठ फड़क रहे थे। झीने गाऊन के भीतर से उसके अंग-प्रत्यंग झाँक रहे थे। आलमारी खोलकर उन्होंने शराब की भरी बोतल निकाली और ढक्कन खोलकर सीधे मुँह से लगाकर गट्-गट् पीने लगी। एक ही साँस में उन्होंने पूरी बोतल खाली कर दी।

हे भगवान ! इतनी शराब ! यह औरत है या और कुछ। जैसे ही शराब पीकर राजकुमारी ने खाली बोतल परे फेंकी, उसी समय मेरी नजर फाँव्वारे की ओर घूम गई। आश्चर्य और भय के मिले-जुले भाव से भर गया मेरा मन। वहाँ एक युवक खड़ा मुस्करा रहा था। कौन था वह सुन्दर और आकर्षक युवक ? क्या गोस्वामी ?

हाँ ! वह गोस्वामी ही था। रश्मिबाला ने गोस्वामी के जैसे रूप-रंग और व्यक्तित्व का वर्णन किया था ठीक वैसा ही था वह युवक। समझते देर नहीं लगी मुझे। मरने के बाद भी गोस्वामी की आत्मा वासना शरीर धारण करके राजकुमारी से मिलने के लिए आया करती थी। यह मेरे लिए अत्यन्त चमत्कारी रहस्य था। इस प्रकार की बातें पुस्तकों में अवश्य पढ़ी थीं मैंने, मगर उसे आज प्रत्यक्ष देख रहा था। फिर घटनाक्रम बड़ी तेजी से घटा।

गोस्वामी ने थोड़ा आगे बढ़कर अपने दोनों हाथ फैलाए और राजकुमारी को अपने आलिंगन में समेट लिया। अब मेरे सामने अजीब दृश्य था। तांत्रिक धरातल पर प्रकृति-पुरुष के सामंजस्य का अपूर्व और अलौकिक दृश्य। तंत्र के ग्रंथों में जिस सामरस्य महामिलन का वर्णन पढ़ा था, इसे मैं अपनी आँखों के सामने प्रत्यक्ष देख रहा था उस समय।

धीरे-धीरे उस निस्तब्ध और शांत वातावरण में तांत्रिक रहस्य का धुँआ भरता जा रहा था, जिसमें एक ऐसी अनिर्वचनीय अलौकिक शांति थी, जिसके प्रभाव से मेरी आत्मा सम्मोहित-सी हो उठी। मैं वहाँ से हटना चाहता था, पर अचानक मैंने देखा—महासम्भोग में लिप्त राजकुमारी का पार्थिव शरीर एक विशेष प्रकार की समाधि की स्थिति में स्थिर हो गया और दूसरे ही क्षण उसके सारे शरीर से कुहरे जैसा पारदर्शक धुँआ निकलने लगा। वहाँ धुँआ धीरे-धीरे एक स्थान पर एकत्रित होकर कुछ ही क्षणों में स्थूल शरीर के आकार प्रकार में बदल गया। क्या वह राजकुमारी का सूक्ष्म शरीर था ?

हाँ, वह सूक्ष्म शरीर ही था—इसमें कोई सन्देह नहीं। राजकुमारी स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर की अवस्था में बदलते ही गोस्वामी के भी वासना शरीर का विघटन हो गया। अब मेरे सामने एक अपूर्व अलौकिक दृश्य था। दोनों सूक्ष्म शरीर एक दूसरे से मिले और हवा में तैरते हुए कमरे से बाहर निकल गए। उस समय दोनों शरीरों से एक विशेष प्रकार का शुभ्र आलोक प्रस्फुटित हो रहा था।

उन दोनों शरीरों के गायब होते ही मेरा सम्मोहन भंग हो गया। मेरी चेतना लौटी तो देखा—राजकुमारी की निष्प्राण काया जमीन पर पड़ी थी। अब मुझे समझते देर नहीं लगी। गोस्वामी उसे हमेशा-हमेशा के लिए अपने साथ वहाँ ले गया, जहाँ उच्चकोटि के तंत्रसाधक गुप्त सामरस्य की अवस्था में पार्थिव शरीर त्याग कर चले जाते हैं।



श्मशान भैरवी

सन् १९४५ ई०।

उन दिनों काशी में गुप्त रूप से निवास करने वाले योगियों और रहस्यमय ढंग से विचरण करने वाले तंत्र-साधकों की खोज में काशी की गलियों और घाटों का बराबर चक्कर लगाया करता था। अब तक इस प्रकार के जितने योगी और तांत्रिकों के सम्पर्क और सान्निध्य में आया था, उन सभी ने मेरे मन में योग-तांत्रिक विधाओं के प्रति असीम कौतूहल और जिज्ञासा का भाव उत्पन्न कर दिया था और मैं उसके फलस्वरूप योगतंत्र के तमाम गूढ़ गोपनीय विधाओं को जानने-समझने के लिये व्याकुल हो उठा था।

और उसी व्याकुलता के वशीभूत होकर एक रात पागलों की तरह हरिश्चन्द्र घाट के श्मशान का चक्कर लगा रहा था। शायद तीन बजा था। सावन-भादों का महीना था। स्याह आकाश पर काले-भूरे बादल छाये हुये थे। साँय-साँय करती हुयी पुरुवा हवा बह रही थी। वातावरण में गहरी नीरवता बिखरी हुई थी। काशी का विश्वविख्यात श्मशान भी खामोश था उस समय। एक ओर अधजली चिता के गये आगोश से धुएँ की स्याह लकीरें निकल-निकल कर वातावरण में भयंकर दुर्गन्ध फैला रही थीं। हाफता हुआ श्मशान की उदास और खूनी सीढ़ियों पर बैठ गया मैं। पूरब के आकाश के स्याह पटल पर बादलों के बिखरे टुकड़ों के पीछे से भोर का शुक्र तारा झिलमिलाने लगा था। गालों पर हाथ रख कर अपलक निहारने लगा मैं उसकी ओर। और तभी खीं खीं कर हँसने की आवाज सुनाई पड़ी मुझे किसी की। बड़ी ही विलक्षण और कौतुक भरी हँसी थी वह। एकबारगी चौक पड़ा मैं। चारों ओर सिर घुमा कर अंधेरे में देखने की कोशिश की। श्मशान की टूटी-फूटी सीढ़ियों के बगल में लाश रखने के लिये एक चबूतरा बना था। अंधेरे में डूबे हुये उसी चबूतरे पर एक भिखारिन बैठी मेरी ओर देख-देख कर हँस रही थी। अधेड़ आयु की थी वह। जटा-जूट से बाल धूल और कीचड़ से सने हुए थे। गन्दे शरीर पर मैली-कुचैली साड़ी लिपटी हुयी थी। एक पुराना फटा चिथड़ा-सा कंबल भी लिपटा था कमर में। वया के खोते की तरह बेडौल से स्तन साड़ी के बाहर निकल कर झूल रहे थे। भिखारिन के हाथों में अलमुनियम का एक टूटा-फूटा कटोरा था, जिसमें शायद सबेरे का सूखा भात पड़ा था। कभी वह आकाश की ओर देखती तो कभी मेरी ओर। और फिर खीं-खीं कर हँसने लगती।

भिखारिन क्यों हँसती थी, समझ न सका मैं। तभी राम-नाम सत्य है की आवाज उस नीरवता में गूँज उठी। कोई मुर्दा आ रहा था। कम्बल और कटोरा जमीन पर फेंक कर भिखारिन अचानक दौड़ पड़ी मुर्दे की ओर। और जब मुर्दे को श्मशान में रखा गया तो उसके पास खड़ी हो कर नाचने लगी प्रसन्न मुद्रा में वह। लोगों ने उसे भगाना चाहा लेकिन वह नाचती ही रही बराबर। बड़ा ही अजीब दृश्य था।

मैं जब उठ कर चलने लगा तो भिखारिन आकर मेरे सामने खड़ी हो गयी और

उसी प्रकार विचित्र ढंग से हँसती हुई बोली— समझती थी कि मैं ही एक पागल हूँ। पर तू तो मुझसे भी बढ़ कर पागल निकला रे।

और तभी दुर्गन्ध का तेज भभका न जाने किधर से आकर मेरे चारों ओर बिखर गया। निश्चय ही वह भयानक दुर्गन्ध भिखारिन के मटमैले गन्दे शरीर और गन्दे कपड़ों से निकली थी। और उसी के साथ पास ही कहीं कोई मरियल कुत्ता भी रो पड़ा, एक बारगी चींख कर। मुझसे रुका न गया वहाँ। जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर आ गया मैं। भिखारिन फिर हँस पड़ी खीं-खीं कर। मैंने एक बार सिर घुमा कर उसकी ओर देखा और फिर आगे बढ़ गया। मन न जाने कैसा हो गया था मेरा। लगातार कई दिनों तक उस भिखारिन का रूप थिरकता रहा मानस-पटल पर। काशी के प्रसिद्ध योगी श्यामाचरण लाहिड़ी की शिष्य-परम्परा के भूपेन्द्रनाथ सान्याल उन दिनों हरिश्चन्द्र घाट के ऊपर अपने नये निवासस्थान में रहते थे। भूपेन्द्रनाथ सान्याल भी उच्च कोटि के योगी और तंत्र-साधक थे। मैं प्रायः अपनी जिज्ञासाओं को ले कर उनसे मिला करता था। वे मेरी जिज्ञासाओं का शमन भी करते और साथ ही मेरा साधना-मार्ग में पथ प्रदर्शन भी। उनकी मुझ पर विशेष कृपा थी।

एक दिन जब सान्याल महाशय के यहाँ गया तो प्रसंगवश उस रहस्यमयी भिखारिन की चर्चा की मैंने उनसे। मेरी बात सुन कर सान्याल महाशय पहले तो मुस्कराये फिर सहसा गम्भीर हो गयी उनकी मुख-मुद्रा। क्यों मुस्कराये और फिर क्यों गम्भीर हो गये वह, समझ न सका मैं। भौचक्का-सा देखता रह गया मैं उनका मुँह। कुछ क्षण बाद वे गम्भीर स्वर में बोले— जो भिखारिन तुमको श्मशान में मिली थी, जानते हो कौन थी वह ?

क्या जवाब देता मैं। मैं तो एक दुर्गन्धमयी मैली-कुचैली पागल-सी भिखारिन से मिला था, जो मुझे भी पागल समझ बैठी थी, और बेढंगेपन से खीं-खीं कर हँस पड़ी थी।

वह पागल भिखारिन नहीं। उच्च कोटि की तांत्रिक भैरवी है वह। सान्याल महाशय ने कहा।

रें! क्या कहा आपने? चौक कर बोला मैं, वह तांत्रिक भैरवी है?

“हाँ” अति उच्चकोटि की श्मशान-साधिका है वह। उसकी आयु कितनी है कोई नहीं बतला सकता। मैं भी नहीं जानता। सान्याल महाशय बोले—किसी रियासत की राजकुमारी थी वह। नाम है स्वर्णा। बड़ी ही सुन्दर और आकर्षक थी स्वर्णा। और जब वह सोलह वर्ष की हुई तो उसका यौवन गुलाब के फूल की तरह खिल उठा। और उसकी सुगन्ध चारों ओर धीरे-धीरे फैलने लगी। उस रियासत के राजतांत्रिक थे राजेश्वरानन्द अवधूत। अवधूत महाशय को भी वह सुगन्ध लगी। उन्होंने स्वर्णा की रूप-शिखा को देखा तो बस देखते ही रह गये। उन्हें अपनी तांत्रिक साधना के लिये किसी योग्य भैरवी की आवश्यकता थी। जब उन्होंने स्वर्णा को देखा तो तुरन्त उसे अपनी भैरवी बनाने का निर्णय मन ही मन कर लिया। रियासत के महाराज पर राजेश्वरानन्द अवधूत का पूरा प्रभाव था। जब उन्होंने महाराज से अपने मन की बात बतलायी तो

वे इनकार न कर सके।

तंत्र की सबसे ऊँची साधना है कुण्डलिनी साधना। सान्याल महाशय थोड़ा रुक कर आगे बतलाने लगे—लेकिन बिना भैरवी के सहयोग से कुण्डलिनी का न जागरण होता है और न तो दुर्लभ सिद्धियाँ ही प्राप्त होती हैं। अवधूत महाशय अपनी कुण्डलिनी जागृत कर दुर्लभ सिद्धियों के स्वामी बनाना चाहते थे। सहयोगिनी के रूप में अक्षत यौवना सर्वगुणसम्पन्न और सर्वलक्षणयुक्त स्वर्णा जैसी भैरवी भला कहाँ मिलती उन्हें।

राजमहल के एक गोपनीय स्थान में साधना प्रकोष्ठ का निर्माण किया गया। और उसी प्रकोष्ठ में दीपावली की महानिशा बेला में स्वर्णा को भैरवी की रहस्यमयी दीक्षा दी, और अपनी भैरवी बना लिया तांत्रिक ने।

भैरवी दीक्षा प्राप्त होते ही स्वर्णा के अंग-प्रत्यंग में विशेष शक्ति का संचार हो गया। और उसका मुख-मण्डल किसी दैवी रूप से दमकने लगा। एक विशेष प्रकार का तेज छा गया वहाँ। उसी महानिशा से शुरू हो गयी कुण्डलिनी साधना अवधूत महाशय की। धीरे-धीरे पूरा एक वर्ष का समय व्यतीत हो गया, लेकिन सफलता नहीं मिली साधना में उन्हें। पर स्वर्णा सफल हो गयी। बिना किसी विशेष क्रिया के उसकी कुण्डलिनी जागृत हो गयी एकाएक। हाथ मलते रह गये अवधूत महाशय।

कुण्डलिनी जागरण से प्राप्त सिद्धियों के बल पर साधक एक विशेष सीमा तक मानवेतर शक्तिसम्पन्न हो जाता है। वह असम्भव से असम्भव कार्य कर सकता है। उसके लिये प्रकृति की तमाम मर्यादायें टूट जाती हैं। शक्ति की प्रखरता से स्वर्णा का अंग-प्रत्यंग उद्भासित हो उठा। और उद्भासित हो उठा उसका मन और प्राण भी। अब उसे स्वीकार नहीं था अपने गुरु का नियन्त्रण। एक दिन उनके अधिकार से मुक्त हो कर हमेशा-हमेशा के लिये निकल पड़ी। सुना है कि उसने दीर्घकाल तक हिमालय की किसी गिरि गुहा में रह कर तंत्र की विलक्षण साधना भी की थी।

स्वर्णा कब और क्यों काशी आयी, यह तो मैं नहीं जानता। सान्याल महाशय अन्त में बोले—लेकिन मैंने उसके कई चमत्कार और उसकी कई सिद्धियाँ अवश्य देखी हैं। वह कहाँ रहती है यह भी मुझे नहीं मालूम। मैंने हमेशा उसे काशी और आस-पास के श्मशानों में विचरण करते हुए देखा है। सचमुच वह एक मानवेतर शक्तिसम्पन्न श्मशान भैरवी है। इतना कह कर सान्याल महाशय मौन साध गये। मगर मेरा मन उद्भ्रान्त हो गया। तुरन्त उसी समय भागा-भागा पहुँचा मैं श्मशान में। साँझ का समय था। तीन-चार चितायें जल रही थीं। दो-तीन लार्शे रखी थीं। मुर्दों के साथ आये हुए लोगों की भीड़ काफी थी। मैंने चारों ओर बहुत खोजा। लेकिन वह भिखारिन नहीं मिली मुझे। हताश-निराश लौट आया।

धीरे-धीरे तीन-चार महीने का समय व्यतीत हो गया। मैं रोज जाता श्मशान में। पर उसका दर्शन न होता मुझे। समझ में नहीं आया कि कहाँ चली गयी वह। एक दिन मैं अपने मित्र के साथ पिक्चर देखने गया था। शान्ताराम की कोई फिल्म लगी थी नावेल्टी टाकीज में। काफी भीड़ थी। टिकट मिलना मुश्किल था। मैं खड़ा सोच रहा था कि क्या किया जाय। तभी मेरी नजर एक असाधारण प्रौढ़ा स्त्री पर पड़ी। उसके

व्यक्तित्व ने ही मुझे आकर्षित किया था। लगभग ४०-४२ की उम्र रही होगी उसकी। मगर फिर भी शरीर सुगठित और यौवन की मादकता से भरा हुआ था। दूध में आलता मिला देने से जो रंग बनता है वैसा ही था उस प्रौढ़ा के शरीर का रंग। हल्के गुलाबी रंग की रेशमी साड़ी पहने थी वह। बाल भी काफी घने और काले थे। महाराष्ट्रियन स्त्रियों की तरह बालों में चम्पा और जूही की वेणी थी। गले में सोने का जड़ाऊ हार और गोरी गोरी कलाइयों में सोने की चूड़ियाँ थीं। कीमती कश्मीरी शाल लपेटे थी वह अपने कमर के इर्द-गिर्द। माँग में सिन्दूर की लाल रेखा और मस्तक पर गोल टीका दप् दप् कर जल रहा था। चेहरे पर एक विलक्षण तेज था। आँखें भी साधारण नहीं थीं। वहाँ भी विचित्र किस्म का आकर्षण था, स्थिरता थी, गहरायी थी और थी असीम करुणा।

यह थी उस प्रौढ़ स्त्री की वेश-भूषा और था उसका रूप-रंग। वह भीड़ में निश्चिन्त होकर खड़ी थी और आँखें घुमा कर चारों तरफ देख रही थी। निश्चय ही वह किसी सम्पन्न और अभिजात्य परिवार की स्त्री थी, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन जब मैं निराश होकर अपने मित्र के साथ वापस लौटने लगा तो वह अपरिचित प्रौढ़ा मुस्कराती हुई धीरे-धीरे चल कर मेरे करीब आयी और जरा-सा हँस कर बोली—टिकट नहीं मिला क्या ? लो यह टिकट है। और बालकनी का दो टिकट बढ़ा दिया उसने मेरी ओर।

एक अपरिचित महिला का इस प्रकार प्रश्न करना फिर बिना माँगे टिकट भी देना, आश्चर्यजनक और कौतूहल भरा लगा मुझे। हकबकाकर बोला—“मैं तो आपको जानता नहीं। कौन हैं आप। टिकट क्यों दे रही हैं मुझे?”

मेरे प्रश्नों को सुन कर एकबारगी हो-हाँ कर हँसने लगी वह महिला। दाँतो तले पान का बीड़ा बाहर निकलते रह गया। मघई पान के रस में डूबी हुई उसकी वह हँसी बड़ी ही मधुर लगी मुझे।

उसी मुद्रा में और पान के रस में भीगे स्वर में बोली वह—अरे तूने मुझे नहीं पहचाना। मैं हूँ स्वर्णा। श्मशान की वही पगली भिखारिन, जो उस रात तुमको मिली थी। यह सुन कर एकबारगी चौंक पड़ा मैं। फिर अपने को सँभाल कर बोला—क्या कहती हैं आप। मुझे विश्वास नहीं हो पा रहा है। कहाँ आप और वह दुर्गन्धमयी भिखारिन। यह सुन कर उस महिला ने जवाब तो नहीं दिया उस समय मगर एक क्षण के लिये हाँ, सिर्फ एक क्षण के लिये मैंने जो कुछ देखा, उसने मुझे एकबारगी स्तब्ध और रोमांचित कर दिया। उस एक क्षण में मैंने उस प्रौढ़ा को उसी पागल भिखारिन के रूप में देख लिया था। और साथ ही भयानक दुर्गन्ध का भी अनुभव हुआ था। उसके बाद कब उसने मुझे टिकट दिया, कब उसके हाथ से टिकट लिया और कब हाल में जाकर मैंने पिक्चर देखी, इन तमाम बातों का ख्याल न रहा मुझे। एक तनहा सी छायी रही मुझ पर और मेरी चेतना पर। हाँ, इतना अवश्य स्मरण है कि उस महिला के रूप में वह भिखारिन रहस्यमय ढंग से बराबर मेरे साथ रही थी। मेरे बगल में बैठ कर बराबर मुझसे सटी रह कर पिक्चर भी देखी थी उसने। उसके अस्तित्व का बराबर एहसास होता रहा था मुझे। शो खत्म हो गया। उस समय रात के ९ बज चुके

थे। दिसम्बर का महीना था। जब बाहर निकला तो देखा—वह भी मेरे साथ थी और सट कर मुझसे चल रही थी। मेरे मित्र महोदय भी थे। उनके मन में मेरे प्रति कुछ गलत भाव पैदा हो चुका था। लेकिन उसे वह व्यक्त नहीं कर पा रहे थे।

सहसा उसने मेरे कानों में फुस-फुसा कर कहा—शराब पिलायेगा।

“ऐ” शराब! क्या आप शराब पीयेगी। चौक कर बोला मैं।

हाँ रे। बहुत दिनों से नहीं पी है। बहुत प्यास लगी है।

बेटे, इतना कह कर उसने मेरा हाथ हाँले से दबा दिया। वह किस बात का संकेत था, यह समझ न सका मैं। नावेल्टी (अब दीपक टाकीज) के बगल में एक सकरी-सी गली है। उसी गली में संगम बार था। उन दिनों शहर में अंग्रेजी शराब की दुकानें नहीं थीं। इसलिये लोग उसी बार में आते थे। मैं उसी में ले गया स्वर्णा को। खूब छक कर मदिरा-पान किया उसने। दो बोतलें देखते ही देखते खाली हो गयीं। बिल आया २२० रु० का। मैंने अपने मित्र से रुपये लेकर बिल चुकाया। मेरे पास इतने रुपये कहाँ थे।

चार-पाँच दिनों के बाद मेरे मित्र मिले। आश्चर्य भरे स्वर में बोले—“शर्मा जी” बड़ी विचित्र बात है। शराब का बिल चुकाने के लिये मैंने जो २२० रु० दिये था, वह तो मेरी जेब में पड़े हुए हैं। भई यह चमत्कार तो मेरी समझ में नहीं आया। कौन थी वह महिला। उसके प्रति मेरे मन में कुछ और ही भावना थी। खैर, क्या तुमसे फिर मुलाकात हुई!”

हँस कर टाल दिया मैंने। जवाब भी क्या देता। यदि उन्हें वास्तविकता से परिचित भी करा देता तो मुझे बेवकूफ ही समझते महाशय। विज्ञान के छात्र जो थे। मुझे तो वह मायावती दूसरे ही दिन मिली थी। भिखारिन के उसी रूप में फटी-पुरानी गन्दी साड़ी लपेटे और हाथ में अलमुनियम का पुराना टूटा-फूटा कटोरा लिये। श्मशान की धूल भरी सीढ़ियों पर ही मिल गयी थी मुझे वह। देखते ही पहले तो हँसी थी वह श्मशान भैरवी। फिर उसी मुद्रा में बोली थी—“क्यों रे” उधार ले कर मुझे शराब पिलाने की क्या जरूरत थी। मैं सब जानती हूँ। तेरे पास तो पढ़ने-लिखने के लिये भी पैसे नहीं हैं।

सच ही कहा था उसने। उस समय कॉलेज की फीस और पुस्तकों के लिये काफी परेशान था मैं। मगर मेरी समस्या वह कैसे जान गयी। आश्चर्य हुआ मुझे। और उस समय तो और अधिक आश्चर्य और अधिक विस्मय हुआ था। मुझे जब घर वापस लौटने पर बिस्तर के नीचे सौ-सौ रुपये के सात नोट पड़े मिले थे। उस जमाने में सात सौ रुपये की कीमत सात हजार के बराबर थी।

उस महासाधिका के प्रति मन ही मन कृतज्ञ हो उठा मैं। आँखों में आँसू आ गये। असीम श्रद्धा से नत हो गयी मेरी आत्मा। उसी दिन सान्याल महाशय से मिला। और उन्हें उस महाभैरवी की सारी बातें सुनायीं। और बतलायीं सारी चमत्कारपूर्ण घटनायें भी।

सब कुछ सुनने के बाद बोले वह—तुमको तो बतला ही चुका हूँ कि उच्च

कोटि की तंत्र-साधिका और श्मशान भैरवी है स्वर्णा। कुण्डलिनी महाशक्ति जागृत है। उसी के उत्ताप को सहन करने के लिये इतना मदिरा-पान करती है वह। जागृत और ऊर्ध्वमुख कुण्डलिनी शक्ति के उत्ताप और गहन उष्मा को दबाने के लिये ही उच्च कोटि के तंत्रसाधक गण मदिरा-पान किया करते हैं। कुण्डलिनी के कारण ही मानवेतर शक्ति प्राप्त है स्वर्णा को। वह असम्भव से असम्भव कार्य कर सकती है। उसके लिये इस प्रकार का चमत्कार मामूली बात है। इसमें किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं।

सान्याल महाशय का कथन पूर्ण सत्य था इसमें सन्देह नहीं। सचमुच मानवेतर शक्तिसम्पन्न थी वह श्मशान भैरवी। मेरे उसी मित्र की नयी-नयी शादी हुई थी। पत्नी का नाम था सविता। सविता पढ़ी-लिखी और काफी सुन्दर युवती थी। पति-पत्नी दोनों अपने दाम्पत्य-जीवन से प्रसन्न और सन्तुष्ट थे। लेकिन दुर्भाग्यवश एक दिन सविता की हालत अचानक बिगड़ गयी। डॉक्टरों को रोग का पता न चला। लेकिन फिर भी अपनी समझ से बराबर दवा देते रहे। अन्त में सविता मरणासन्न की स्थिति में पहुँच गयी। घर-परिवार में कुहराम मच गया। मगर जो होना था वह हुआ। सभी को रोता-कलपता छोड़ कर इस संसार से बिदा हो गयी सविता। आवश्यक कर्म के बाद यथासमय लाश को लोग श्मशान में ले गये। मैं भी था सविता की शवयात्रा में। साँझ की स्याहकालिमा बिखर चुकी थी। श्मशान में गहरी खामोशी छायी हुई थी। दो-तीन मरियल से कुत्ते एक ओर बैठे ऊँघ रहे थे। घाट के किनारे पानी में डोम की लड़कियाँ अधजले कोयले बीन रही थीं।

सविता की लाश को एक तरफ रख दिया गया। चिता की तैयारी शुरू हो गयी। और तभी मेरी नजर पड़ी स्वर्णा पर। श्मशान के बगल में कालीघाट की टूटी-फूटी सीढ़ियों पर बैठी, आकाश की ओर शून्य में ताक रही थी निर्विकार भाव से। धीरे-धीरे चल कर मैं उसके करीब पहुँचा। मुझे देख कर चौक पड़ी वह। फिर बोली— इस वक्त कैसे यहाँ आना हुआ रे। मैंने सारी बातें बतलायीं और अन्त में कहा— बड़ी ही अच्छे स्वभाव की थी सविता। उसकी असामयिक मृत्यु के आघात को कैसे सहन करेगा मेरा मित्र।

यह सुन कर वह तमक कर बोली—धत्, वह कैसी बेवकूफी की बात करते हो। कहाँ मरी है सविता। वह तो जीवित है। उसके घर वाले पागल हैं। तभी तो जिन्दा लाश ले आये हैं जलाने के लिये श्मशान में।

मैंने समझाते हुए कहा—नहीं, आपका भ्रम है। सविता मर गयी है। डॉक्टरों ने उसकी मृत्यु का प्रमाणपत्र भी दे दिया है। अब तो उसके शव को चिता पर रखने की तैयारी की जा रही है।

तुम सब पागल हो, बेवकूफ हो, इसमें शक नहीं। फिर एकबारगी चीख कर बोली—अरे मूर्ख, वह जीवित है। उसे घर वापस ले जा। इतना कह कर लगभग दौड़ती हुई सविता की लाश के पास पहुँच गयी वह। और अपने हाथों से कफन फाड़ कर लाश को नंगी कर दिया उसने। एक विचित्र वातावरण पैदा हो गया श्मशान में। भीड़ लग गयी। जिद करने लगी स्वर्णा। लाश को किसी भी हालत में जलाने न देगी वह।

अगर जोर-जबरदस्ती की जायेगी तो वह स्वयं चिता में कूद कर अपनी जान दे देगी। बड़ी भारी समस्या खड़ी हो गयी। चिता पर शव रखा जा चुका था। केवल आग देना रह गया था। स्वर्णा को मुझे और मेरे मित्र को छोड़ कर काफी लोग उसे श्मशान की भिखारिन ही समझ रहे थे। अन्त में लोग उसे मारने-पीटने को तैयार हो गये। मगर वह वहाँ से हटी नहीं। बराबर अपनी जिद पर अड़ी ही रही। अन्त में विवश होकर लाश को घर वापस लाना पड़ा। काशी के श्मशान के इतिहास में यह पहली बार अनहोनी घटना घटी थी। सचमुच बहुत बड़ी आश्चर्यजनक, अविश्वसनीय और विचित्र बात थी वह।

सविता के शव को घर लाया गया, यह सोच कर कि उस भिखारिन के शान्त हो जाने के बाद शव को पुनः श्मशान में लाकर दाह-कर्म कर दिया जायेगा। लाश को मकान के बाहरी कमरे में रख दिया गया। अब मैं अपने को सँभाल नहीं पाया। जरा उत्तेजित होकर बोला स्वर्णा से, लाश को तो वापस ले आयी। अब बोलिये क्या किया जाय ? जिन्दा होगी वह ? मेरे साथ और लोग भी उत्तेजित हो उठे थे। सभी की आँखें धूर रही थीं उस मैली-कुचैली भिखारिन को। भिखारिन कुछ देर तक निर्विकार खड़ी रही लाश के पास। फिर एकाएक चीख कर बोली—सभी को कमरे के बाहर निकाल दे। बस तू रहेगा और तेरा साथी।

एक-एक कर सभी लोग कमरे के बाहर निकल गये। पर सभी के मन में जिज्ञासा, कौतूहल और आश्चर्य का मिला-जुला भाव था। आखिर कौन-सा चमत्कार करेगी वह पागल भिखारिन ! क्या सचमुच जीवित कर देगी आठ-नौ घंटे से मृत सविता को। शायद सभी के मन में यही विचार उथल-पुथल कर रहा था। वैसे मैंने स्वर्णा के कई चमत्कारों को देखा था, मगर उस समय मुझे भी इस बात का विश्वास नहीं हो पा रहा था कि वह लाश को पुनर्जीवित कर देगी। लेकिन इस धारणा के साथ-साथ मेरा अन्तर्मन उसकी मानवेतर शक्ति पर भी विश्वास कर रहा था, जिसके आधार पर मैं यह कल्पना करने लगा था कि यदि सविता पुनर्जीवित हो गयी तो सचमुच एक अनहोनी घटना होगी वह। विज्ञान के लिये भी एक मौलिक चुनौती सिद्ध होगी वह। काश ! ऐसा सम्भव हो जाता।

सविता की नंगी लाश के सिरहाने कुछ देर तक ध्यान की मुद्रा में बैठी रही स्वर्णा। फिर इशारे से हम दोनों को भी बाहर चले जाने के लिये कहा उसने। कमरे से बाहर निकल कर दरवाजा बन्द कर दिया मैंने। भीतर अब रह गयी थी स्वर्णा और सविता की निश्चेष्ट लाश। उस समय रात के दस बज रहे थे। पूरे मकान में श्मशान जैसी खामोशी छायी हुई थी। समय धीरे-धीरे गुजर रहा था। मेरे मित्र के परिवार के लोग आँगन में मुँह लटकाये, सिर झुकाये बैठे हुए थे। तभी टन् टन् कर कहीं बारह का घंटा बजा। और उसी के साथ कमरे का दरवाजा धड़ से खुला और स्वर्णा लगभग चिल्लाती हुई बाहर निकली—ले सँभाला। बुला किसी डॉक्टर-वैद्य को। अब मैं चली। मेरा काम हो गया। अब मैं नहीं रुकूँगी यहाँ।

यह सुन कर सभी लोग एकबारगी स्तब्ध रह गये। मैं भी हतप्रभ-सा हो गया।

लपक कर मैं ही पहुँचा भीतर। देखा, सचमुच सविता की निर्जीव काया में प्राण का संचार हो गया था। उसकी सांसें धीरे-धीरे चल रही थीं। तुरन्त डॉक्टर को बुलाया गया। हम लोगों से अधिक वह आश्चर्यचकित था। क्योंकि उसी ने मृत्यु का प्रमाणपत्र दिया था। आश्चर्य के अलावा उसे इस बात का भी भय था कि कहीं उस पर कानूनी कार्रवाई न की जाय। उसने आते ही तुरन्त जाँच की और आवश्यक इन्जेक्शन लगाया। थोड़ी देर बाद सहज अवस्था में आ गयी सविता। और फिर उठ कर बैठ गयी वह। मैंने देखा, उसका चेहरा सफेद और भावहीन था उस समय। वह सिर घुमा-घुमा कर आश्चर्य से चारों ओर देख रही थी। फिर धीरे स्वर में बोली—वह संन्यासिनी कहाँ गयी ? कौन संन्यासिनी मैंने—पूछा।

अरे वही संन्यासिनी जो अभी तक मेरे पास थी—सविता पहले की तरह धीमे स्वर में बोली।

समझते देर न लगी। निश्चय ही वह स्वर्णा के बारे में पूछ रही थी। एक झटका-सा लगा मस्तिष्क को। बाहर निकल कर इधर-उधर खोजने लगा मैं स्वर्णा को। लेकिन कहीं नहीं मिली वह। कई बार श्मशान में भी गया वहाँ भी दिखलायी नहीं दी।

बाद में विस्तार से पूछने पर मुझे सविता ने बतलाया कि एक बार उसके सीने में और पेट में भयानक पीड़ा हुई और उसी पीड़ा के साथ वह अपने स्थूल शरीर से अलग हो गयी। लेकिन फिर भी उसे अपने शरीर के प्रति मोह और आसक्ति थी। जब श्मशान में गयी तो, श्मशान में उसे बहुत से लोग दिखलायी पड़े जो कभी के मर चुके थे और उनकी आत्मा को शान्ति नहीं थी। वे सभी श्मशान में चारों तरफ भटक रहे थे। वह भी उनकी भीड़ में शामिल हो गयी। उस समय उसकी चिंता लगायी जा रही थी। वह इस बात की प्रतीक्षा में थी कि उसका शव जला दिया जाय तो उसकी आत्मा को शान्ति मिलेगी। मगर तभी एक संन्यासिनी-सी औरत जो काफी लम्बी-चौड़ी और गोरे रंग की थी उसके पास आयी और स्नेह भरे स्वर में कहने लगी—तू घबरा मत। चल मेरे साथ।

फिर क्या हुआ ? मैंने पूछा। थोड़ा रुक कर सविता आगे बतलाने लगी— वह संन्यासिनी अपने साथ उसको एक ऐसे स्थान पर ले गयी जहाँ चारों तरफ बर्फ ही बर्फ था। उस हिमाच्छादित वातावरण में गहरी निस्तब्धता छायी हुई थी। वहाँ दिन जैसा उजाला तो नहीं था मगर चाँदनी जैसा प्रकाश अवश्य फैला हुआ था चारों तरफ। उस विस्तृत हिमप्रान्त में एक काफी बड़ा सरोवर था, जिसका पानी निर्मल था और उसमें हिम-खण्ड तैर रहे थे। जब वह उस संन्यासिनी के साथ सरोवर के निकट पहुँची तो उसे एक ऐसी शान्ति का अनुभव हुआ जिसे संसार में कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। निश्चय ही वह अलौकिक और दिव्य शान्ति थी। कुछ देर तक इधर-उधर घुमाने के बाद वह संन्यासिनी उसे एक गुफा में ले गयी जिसके भीतर खूब प्रकाश हो रहा था। वहाँ एक तख्त था, जिस पर मृग-चर्म बिछा था और उस मृग-चर्म के आसन पर एक महात्मा बैठे हुए थे, ध्यान की मुद्रा में। उस महात्मा की दाढ़ी-मूँछ तो नहीं थी, मगर सिर के बाल इतने लम्बे-लम्बे थे कि जमीन पर चारों ओर बिखरे हुए थे।

महात्मा के मुख पर असीम तेज था और उनके सारे शरीर से सुनहरी रश्मियाँ निकल रही थीं।

संन्यासिनी के संकेत पर वह महात्मा के सामने हाथ जोड़ कर बैठ गयी। और जब थोड़ी देर बाद महात्मा ने आँखें खोलीं तो संन्यासिनी ने विनम्र स्वर में उनसे कहा गुरुदेव ! इस लड़की को आपका आशीर्वाद चाहिये।

महात्मा यह सुन कर कुछ बोले तो नहीं लेकिन मेरी ओर कुछ क्षण तक स्थिर दृष्टि से देखते अवश्य रहे। उस समय उनकी आँखों में एक अजीब-सी ज्योति झिलमिला रही थी। उसके बाद कब और कैसे वह अपने मृत शरीर में प्रवेश कर पुनर्जीवित हो उठी, यह बतला नहीं सकती। लेकिन हाँ, जब वह अपने शरीर के भीतर घुसी उस समय उसे विचित्र-सी गर्मी का अनुभव हुआ था।

सविता की यह मरणोपरान्त कथा सुन कर मुझे इस बात का पूरा विश्वास हो गया कि वह संन्यासिनी और कोई नहीं स्वर्णा ही थी। और गुफा में मिलने वाले महात्मा उसके गुरु थे, जिनके सात्त्विक में रह कर उसने कभी योग-तांत्रिक-साधना की होगी। मगर स्वर्णा गयी कहाँ। ऐसा लगा मानों वह कहीं शून्य में विलीन हो गयी हो। धीरे-धीरे दो साल का समय गुजर गया। एम० ए० करने के बाद मैंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राध्यापक की नौकरी कर ली थी। उन दिनों मैं निरंजन बनर्जी लेन, हावडा में रहता था। साँझ का समय था। मैं अपने कमरे में बैठा कापियाँ जाँच रहा था। तभी कमरे में किसी के आने की आहट से चौक कर मैंने सिर उठा कर दरवाजे की तरफ देखा। वहाँ एक युवती खड़ी मन्द-मन्द मुस्करा रही थी। उस अपरिचित युवती को देख कर पहले मैं सकपकाया फिर बोला—कौन हैं आप ? क्या काम है मुझसे ?

मेरा प्रश्न सुन कर खिलखिला कर हँस पड़ी वह युवती। फिर आँखें नचा कर बोली—अरे ! तू मुझे पहचाना नहीं।

यह सुन कर मेरे मस्तिष्क में कुछ कौंध-सा गया। और उसी के साथ हठात् मेरे मुँह से निकल गया—आप ! आप यहाँ कैसे ? वह स्वर्णा थी। पहचानने में किसी प्रकार की भूल नहीं हुई थी। लेकिन जिस स्वर्णा को दो-तीन साल पहले देखा था उसमें इसमें जमीन-आसमान का अन्तर था। बिल्कुल किसी राजा की राजकुमारी की तरह सज-धज कर आयी थी वह। उम्र भी कम लग रही थी। लगता था २५-२६ वर्ष की है। चेहरा गुलाब की तरह खिला हुआ था, जिस पर बिखरे हुए थे लावण्य के कण। उसके कमरे में आते ही जैसे इत्रों का सैलाब उमड़ आया था, जिसकी सुगन्ध से ऐसा लगा कि मानों मेरी प्राणशक्ति बढ़ गयी हो। सचमुच उस क्षण मैं एकाएक विशेष उत्साह और उमंग का अनुभव करने लग गया था। निश्चय ही वह एक योगबल का ही चमत्कार था। मुझे इस बात का घोर आश्चर्य हो रहा था कि स्वर्णा को कैसे मालूम हो गया कि मैं कलकत्ता में रह रहा हूँ। मकान का भी पता कैसे लगा उसे। फिर वह इतने दिनों थी कहाँ ?

शायद स्वर्णा मेरे मन के भावों को समझ गयी। हँसते हुए बोली—तू मेरे लिये मरा जा रहा था न ! बोल ठीक कह रही हूँ न। मेरी याद में तेरी हालत पागलों की

तरह हो गयी थी न ! इसलिये सोचा, चलूँ मिल ही लूँ। नहीं तो बेचारे की हालत और खराब हो जायेगी।

क्या उत्तर देता मैं। बस भौचक्का-सा निहारता रह गया स्वर्णा का मुँह। साँझ की कालिमा अब तक कमरे में फैल चुकी थी। उठ कर बत्ती जलायी। बिजली की रोशनी में उसका अपरूप-रूप और कमनीय सौन्दर्य और जगमगा उठा। मैंने कुछ कहना चाहा। लेकिन उसके पहले ही बोल पड़ी वह महायोगिनी—तू न जाने कितने योगियों और तांत्रिकों से मिला है। न जाने कितनी भैरवियों से भी मिला होगा। उन सबकी स्मृतियाँ तेरे पास हैं। सोचा, चलो मैं भी तेरे मस्तिष्क के किसी कोने में स्मृति बन कर हमेशा के लिये रह जाऊँ। कभी तो याद करोगे तुम।

यह सुन कर विह्वल हो उठा मैं। झुक कर चरण छूते हुए भरे गले से बोला—आप मेरी माँ हैं। आपकी कृपा और करुणा को क्या कभी मैं विस्मृत कर सकूँगा। यह असम्भव है मेरे लिये। सविता को पुनर्जीवित कर आपने योग-तंत्र-विज्ञान के जिस विकसित और परिष्कृत रूप का परिचय दिया है उसने मेरी आँखें खोल दी हैं। मुझे चमत्कारों की दुनिया में मत उलझाइये आप। मैं आत्मा के तल पर योग-तंत्र की उस आध्यात्मिकता का अनुभव करना चाहता हूँ जिसे सच्चे अर्थों में ज्ञान कहते हैं।

स्वर्णा मौन साधे मेरी बातें सुनती रही। फिर भारी स्वर में बोली—लेकिन वह ज्ञान अभी तेरे लिये सम्भव नहीं। अभी तो तेरा योग बाकी है। पहले कर्म द्वारा उस योग का क्षय कर ले तभी ज्ञान का उज्ज्वल प्रकाश होगा तेरे भीतर। इतना कह कर स्वर्णा ने सहज भाव से अपना बाँयाँ हाथ मेरे सिर पर रख दिया। हाथ का स्पर्श होते ही किसी अव्यक्त शक्ति से मेरा सारा शरीर एकबारगी झनझना उठा। रोमांच भी हो आया मुझे। और उस रोमांच के साथ ऐसा लगा कि किसी अपार्थिव सत्ता में प्रवेश कर रहा हूँ मैं। निस्सन्देह वह अनुभव बड़ा ही विलक्षण और विचित्र था, जिसका वर्णन मैं शब्दों में नहीं कर सकता। निश्चय ही वह कोई अलौकिक जगत था जिसमें प्रवेश कर गया था मैं। मेरी सारी स्मृतियाँ लुप्त हो गयी थीं। केवल “अंह” का बोध ही शेष रह गया था। और उस बोध में न जाने कहाँ से इतनी शक्ति आ गयी थी कि उस अपार्थिव जगत में इच्छानुसार कहीं भी विचरण कर सकता था। वहाँ मुझे कोई वस्तु नहीं दिखलायी दी। बस चारों ओर कुहरे जैसा छाया था, और फैला हुआ था धवल प्रकाश। मैं कुहरे के बादलों के बीच उस धवल प्रकाश के सैलाब में दूर-दूर तक घूमता रहा। वास्तव में मुझे बड़ा ही आनन्द आ रहा था भ्रमण में। और जब मैं उस अवर्णनीय आनन्द में आकंठ डूबा हुआ था तभी अचानक झटका-सा लगा मुझे। और उसी झटके के साथ मैं अपने पार्थिव शरीर में चैतन्य हो उठा। उस समय ऐसा लगा जैसे कोई व्यक्ति किसी राजमहल से निकल कर झोपड़ी में आ गया हो। मैंने अपनी बोझिल आँखें धीरे-धीरे खोलीं। रात आधी से ज्यादा गुजर चुकी थी। कमरे में निस्तब्धता छाई हुयी थी। स्वर्णा वहाँ नहीं थी। आश्चर्य हुआ मुझे। कहाँ चली गयी वह। बाहर निकल कर चारों ओर खोजा। मगर वह कहीं नहीं मिली मुझे। निराश-हताश होकर

वापस लौट आया अपने कमरे में, जहाँ अभी तक बिखरी हुई थी इत्रों की मायावी सुगन्ध। पूरी तरह नींद नहीं आयी। बराबर करवटें बदलता रहा। और यह सोचता रहा कि क्यों और किसलिये वह अलौकिक अनुभव कराया था मुझे स्वर्णा ने। फिर बिना मुझे बतलाये, बिना मुझसे कुछ कहे चली कहाँ गयी वह। कहने की आवश्यकता नहीं, इन तमाम घटनाओं को घटित हुए लगभग चालीस साल हो रहे हैं। मगर फिर स्वर्णा के दर्शन नहीं हुए मुझे। लेकिन आज भी उस महा तंत्रसाधिका मायावती योगिनी की तमाम स्मृतियाँ सुरक्षित हैं मेरे मस्तिष्क में। इतना लम्बा अरसा गुजर जाने के बाद भी उस महाभैरवी का रूप मेरे मानस-पटल पर छाया हुआ है। जब कभी मैं उसकी स्मृतियों के सागर में डूब जाता हूँ तो ऐसा लगता है कि वह मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी है और मेरी ओर देख कर मन्द-मन्द मुसकरा रही है।



दो आत्माएँ

तंत्र-मंत्र के तमाम रहस्यों की खोज एवं शोध-अनुसंधानों ने तथा संसार से परे की बातों को जानने-समझने की लालसा और भूत-प्रेत आदि अमानवीय सत्ताओं के प्रति अदम्य जिज्ञासाओं ने चालीस वर्ष के दीर्घ अन्तराल के बाद आज मुझे एक ऐसी जगह ला कर खड़ा कर दिया है जहाँ मैं अपने आप में एक असीम एकाकीपन का विचित्र अनुभव कर रहा हूँ। इस एकाकीपन ने मेरे भीतर एक गहन शून्य भी भर दिया है जैसे बिल्कुल स्तब्ध हो गया हूँ। जी हाँ ! बिल्कुल स्तब्ध-जीवन और जगत का सारा रहस्य मेरे सामने अनावृत हो चुका है। वह दिन और वह समय दूर नहीं जब मैं इस संसार को, इस नश्वर शरीर को, साथ ही इस सारे वातावरण को एकबारगी छोड़कर हमेशा-हमेशा के लिये अपार्थिव सत्ता में विलीन हो जाऊँगा।

हे माँ ! क्या से क्या हो गया !

कभी-कभी गंगा के सुनसान घाट की सीढ़ियों पर बैठ कर माथे पर हाथ धरे सोचता हूँ कि ऐसी लालसा, ऐसी कामना और ऐसी जिज्ञासा किस काम की जिससे आदमी का रेशा-रेशा बिखर जाय, जिन्दगी के तमाम फूल झड़ जायँ और हर समय काँटों की चुभन का दर्द हो, पीड़ा हो और स्थिति उस घायल परिन्दे की तरह हो जाय, जो न मरता है, न जीता है और उड़ने की ताकत तो छिन ही गयी हो। सचमुच, मेरे सारे सपने टूट गये हैं। मेरे सारे अरमानों में आग लग चुकी है। मेरी सारी इच्छायें-अभिलाषायें समय के पहिये के नीचे पिस गयी हैं। मैं अब टूट चुका हूँ, बिखर चुका हूँ। मेरी अपनी जिन्दगी अब मुझे ही भार लगने लगी है।

साँझ का समय है।

एक विचित्र-सी खिन्नता-भरी उदासी छायी हुई है वातावरण में। मुझे बड़ा अच्छा लगता है ऐसा वातावरण। उदास और एकाकी मन को बड़ी शान्ति मिलती है। आज अमावस्या है। हर अमावस्या की तरह आज भी मैं राजा चेतसिंह के जीर्ण-शीर्ण धूल-धूसरित किले की टूटी-फूटी बुर्जी पर खम्भे से पीठ टिकाए बैठा हूँ। साँझ की स्याही धीरे-धीरे रात की गहन कालिमा में बदलती जा रही है और उसी के साथ निस्तब्ध वातावरण और भी गहन होता जा रहा है। कलाई में बँधी घड़ी की ओर देखता हूँ— नौ पैंतीस।

बस पचीस मिनट और। इसके बाद ...इसके बाद

धीरे-धीरे समय गुजर रहा है।

सहसा भीनी-भीनी सुगन्ध से वातावरण भर उठता है। वह अपार्थिव, स्वर्गीय सुगन्ध मेरे मन को एकबारगी चंचल और अस्थिर कर देती है। सिर घुमाकर अपने चारों ओर देखने लगता हूँ। अन्धकार में आकण्ठ डूबे उस वातावरण में एक आकृति उभरती है। मैं उस आकृति को पहचान जाता हूँ। वह रत्ना की आकृति है। जी हाँ,

रत्ना की। वह अपार्थिव रूप से पार्थिव रूप में आ रही है। अमावस की गाड़ी कालिमा के बीच भी उसके अपरूप रूप को साफ-साफ देख रहा हूँ मैं।

“आ गयी तुम ?”

“हाँ, आ गयी मैं !” रत्ना ने हौले से जवाब दिया और मुझसे सटकर बैठ गयी।

एक चिर-परिचित नारी का सुपरिचित स्पर्श पाकर क्लान्त, पथहारा, आश्रय का भूखा और स्नेह का प्यासा दारुण मन एकबारगी व्याकुल हो उठा। परिस्थितियों और समय-चक्र ने मुझे रत्ना से अलग कर दिया था, यह सत्य है, पर मन, हृदय और आत्मा से हम दोनों कभी भी अलग नहीं हुए।

गालों से गाल सटाकर हौले-हौले रत्ना कहने लगी—“तुम्हें देख कर मेरे सारे कष्ट दूर हो जाते हैं। विश्वास करो, इतने लम्बे असें के बाद भी तुम्हें बिसार नहीं पायी मैं। तुम्हें भूल जाना क्या मेरे लिये सम्भव है ? तुम्हीं मेरी जिन्दगी थे, तुम्हीं मेरी जिन्दगी रहोगे। मेरी इस धारणा को कोई नहीं मिटा सकता। तुम मुझे विश्वासघातिनी समझो चाहे अधम, पर मेरे लिये तुम जो सौ वर्ष पूर्व थे, वही अब भी हो और आगे भी रहोगे। जब वे अरुण दिन आये थे, तुम्हीं अचानक छिप गये थे मुझसे मैंने तुमको कितना खोजा, पर तुम्हारे चरण नहीं देख सकी, फिर ...”

कहते-कहते रत्ना का गला भर आया। पल भर रुक कर आँसू से गीले स्वर में कहने लगी—“तुम्हें इतने लम्बे असें में दो बार शरीर मिला और उस शरीर को लेकर तुमने दो बार धरती पर जन्म लिया, मगर मैं इस लम्बे अन्तराल में बराबर भटकती रही अपार्थिव शरीर लिये अपार्थिव दुनिया के अन्धकार में। पर क्या इससे मन और आत्मा के बंधन टूट सके हैं ? मैं जानती हूँ ! तुमने जन्म पाकर कितनी पीड़ा सही होगी। कितनी व्यथा सही होगी ! कितने कष्ट उठाये होंगे। इसके अलावा तुम पर क्या-क्या बीती यह भी मैं जानती हूँ। जब-जब तुमको असहाय, निर्बल और एकाकी-सा देखती हूँ तो सच पूछो, मैं आँसू नहीं रोक पाती।

कितना रुलाया है तुमने मुझको ? तुमसे बिछुड़ कर आज तक रो रही हूँ। कभी भी मेरे आँसू थमे नहीं। क्या तुम मुझे हमेशा इसी तरह रुलाते रहोगे ? बोलो, कुछ बोलो, कुछ तो कहो ?”

मगर मुझसे कुछ बोला न गया। कुछ कहा न गया। सब कुछ सुन कर एक बार नजर घुमा कर रत्ना के अपरूप रूप की ओर सिर्फ देख भर लिया मैंने।

कमल के पत्तों पर बिखरी ओस की बूँदों को बड़ी हिकमत से इकट्ठा कर पत्रे के गिलास में रख दिया गया हो, ऐसा ही लगा उस समय रत्ना का सौन्दर्य मुझे। एकाएक नजदीक के किसी आश्रम में टन्-टन् कर ग्यारह का घंटा बजा और रत्ना की पार्थिव काया अपार्थिव सत्ता में बदल गयी फिर एक मास के लिये।

पिछले पैंतीस साल से हर महीने अमावस की काली अंधेरी रात में, निस्तब्ध उदास वातावरण में इसी तरह रत्ना मुझसे मिलने आती है। इसी तरह विलाप करती है और इसी तरह मैं उसकी आँसुओं में डूबी हुई व्यथा को, कष्ट को और तमाम

वियोगजन्य पीड़ाओं को मौन साधे, निर्विकार भाव से सुनता हूँ।

रत्ना मुझे हमेशा के लिए पाना चाहती है, हमेशा के लिये अपनाना चाहती है और अपनी आत्मा की उस आग और उस प्यास को एकबारगी बुझा लेना चाहती है, जो पिछले सौ सालों से उसे झुलसाती आ रही है। इतने लम्बे असें के बीच उसने अपनी कामनाओं के दीप को कभी भी बुझने नहीं दिया है। उसकी कामनाएँ और लालसाएँ उस समय की प्रतीक्षा कर रही हैं, जब कालचक्र मेरी काया से मेरी आत्मा को हमेशा के लिये अलग कर देगा।

तब आत्मा-आत्मा का मिलन होगा और उस अपूर्व मिलन से हम दोनों को परम शान्ति मिलेगी। ऐसी शान्ति, जो शारीरिक और मानसिक तल पर सम्भव ही नहीं है। वह आनन्द मिलेगा जो भौतिक जगत में सम्भव ही नहीं है। परम शान्ति और परम आनन्द को पाना ही तो मानव-मात्र का एकनिष्ठ लक्ष्य है, मगर वह भटकती हुई उसे भौतिक वस्तुओं और पदार्थों में पाने का असफल प्रयास करता है।

जब मैं इन तमाम आत्मपरक सत्यों पर विचार करता हूँ तो महातंत्रसाधक और कालजयी योगी ताराचन्द्र अवधूत महाशय का स्मरण हो आता है मुझे। उन्होंने ही तो मुझे पहली बार रत्ना और मेरे लिये भटकती हुई उसकी आत्मा के सम्बन्ध में सब कुछ बतलाया था। इसके पहले भला मैं क्या जानता था कि रत्ना कौन है, क्या है और मुझसे उसका कैसा सम्बन्ध है ?

उन दिनों मैं तिब्बत के हिमाच्छादित दुर्गम स्थानों में घूम रहा था। श्रीमती डेविड नील से, जो दो बार तिब्बत गयी थीं, सुन रखा था कि तिब्बत के अनेक रहस्यमय और गुप्त स्थानों में ऐसे भी स्थान हैं, जहाँ साधारण लोग नहीं पहुँच पाते।

यह वही स्थान है तिब्बत का, जहाँ आज भी अनेक दीर्घजीवी तंत्र-साधक और योगी काल पर विजय प्राप्त कर आत्मज्ञान, विश्वज्ञान और विश्वातीतज्ञान को प्राप्त करने के लिये न जाने कब से शव-साधना करते आ रहे हैं।

तंत्र की सर्वोच्च साधना समझी जाती है शव-साधना। इसके साधक विशेषकर कापालिक सम्प्रदाय के अनुयायी होते हैं।

शव-साधना की शक्ति की कोई सीमा नहीं। उनके पौरुष और सामर्थ्य की कोई इयत्ता नहीं। वे असम्भव से असम्भव कार्य करने में समर्थ होते हैं। मैं उन्हीं गुप्त स्थानों की खोज में था।

मैं जानता था कि उन गुप्त स्थानों और वहाँ शव-साधनारत उच्च कोटि के कालजयी साधकों को कोई अपनी आँखों से नहीं देख सकता। यदि संयोगवश कोई व्यक्ति वहाँ तक पहुँच भी गया तो उस स्थान की मोहक छटा देखकर अपने आपको भूल जाता है। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि वही व्यक्ति जब वहाँ दुबारा जाना चाहता है तब सही ऐसे दर्शक जब कभी मैदानी इलाके में आकर कुछ आश्चर्यजनक कहानी सुनाते हैं, तब लोग साधारणतः उन्हें गप्प ही समझते हैं, क्योंकि वे दुबारा उस स्थान तक किसी को नहीं ले जा पाते। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि ऐसी घटनायें भारतीयों के साथ ही नहीं, कई विदेशियों के साथ भी घटी हैं।

मैं उस समय तिब्बत के चियांग-कोंक गाँव में ठहरा हुआ था। वह गाँव ल्हासा से साठ-सत्तर मील दूर था। उस गाँव के निवासी केवल लामा थे। गाँव के बाहर कुछ ही दूर पर उनका एक विशाल मठ था, जिसका नाम था लाकांश। उसके महन्त थे योगंस। वे कोई सिद्ध पुरुष थे, यह तो मैं नहीं बतला सकता, मगर उन्हें कई रहस्यमय गुप्त मठों और तांत्रिक साधना-स्थलों की जानकारी थी, यह मुझे मालूम हो चुका था। जब मैंने शव-साधकों के गुप्त और रहस्यमयी साधना-स्थलियों के बारे में पूछा तो उन्होंने बड़े ही सहज ढंग से उनके संबंध में मुझे विस्तार से सब कुछ बतला दिया।

योगंस ने मुझे बतलाया कि जहाँ तिब्बत का उत्तरी पठार खत्म होता है, वहीं आस-पास कापालिकों का एक विशाल मठ है, जिसका नाम है "स्यांग मठ"। सुना जाता है कि वह काफी लम्बा-चौड़ा और स्फटिक का बना हुआ है, जिसमें दो सौ वर्षों से लेकर एक हजार से भी ऊपर की आयु वाले कापालिक साधनारत हैं। उन साधकों की संख्या कितनी है, यह बतला पाना कठिन है।

दूसरे ही दिन मैंने लाकांश मठ छोड़ दिया और तिब्बत के उत्तरी पठार की यात्रा पर चल पड़ा।

यहीं से शुरू होती है भारतीय संस्कृति के साधना-तथ्यों पर आधारित यह रोमांचकारी और अविश्वसनीय सत्य कथा, जिसने मेरे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को मानवेतर स्तर पर ले जाकर मेरे आन्तरिक जीवन में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया। तब से आज तक मैं सहज नहीं हो पाया। समाज से अपने को पृथक् अनुभव करता हूँ मैं।

लगातार ग्यारह दिनों तक हिमयात्रा करने के बाद मैं "छांगा" पहुँचा। तिब्बत की सीमा एक प्रकार से यहीं खत्म हो जाती है। अनवरत हिमवर्षा हो रही थी उस समय।

निस्तब्ध वातावरण।

चारों ओर शून्य। शून्य के सिवाय और कुछ नहीं। गहन निःस्वास जैसी तूफानी हवा हाहाकार करती हुई हिमाच्छादित पहाड़ियों से टकरा रही थी। आकाश धुनी हुई रुई जैसे बादलों से अटा था। सूरज का कहीं पता नहीं था। मैं काफी थक चुका था। सच पूछिये तो एक प्रकार से हिम्मत हार चुका था मैं। केवल सतू खाकर मैंने इतनी लम्बी जीवन-मरणदायिनी हिमयात्रा की थी। मेरे पैर बर्फ पर चलते-चलते जख्मी हो गये थे। आगे बढ़ने की जरा-सी भी हिम्मत मुझमें नहीं थी। शरीर भी काफी कमजोर हो चुका था।

आखिर विवश होकर मैं वहीं एक चट्टान पर कम्बल बिछाकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद बादल छँट गये और हवा भी बन्द हो गयी। सहसा मेरी नजर एक बौद्ध गुम्फा पर पड़ी। लगभग एक फर्लांग पर थी वह गुम्फा। मैंने सोचा निश्चय ही उसमें कोई भिक्षु रहता होगा।

मेरा अनुमान सच निकला। जब मैं वहाँ पहुँचा तो देखा एक महात्मा, जिनकी आयु काफी ज्यादा थी, पद्मासन लगाए बैठे थे। उनके सिर की लम्बी-लम्बी जटाएँ

जमीन पर फैली हुई थीं। दाढ़ी के बाल भी हृद से ज्यादा लम्बे थे। जब उनको यह मालूम हुआ कि मैं स्यांग मठ की खोज में भटक रहा हूँ तो उन्होंने एक बार मेरी ओर आश्चर्य से देखा, फिर कहा—“स्यांग मठ पार्थिव सत्ता के अन्तर्गत नहीं है, इसीलिये तुम उसे न देख सकोगे और न तो उसमें प्रवेश ही कर सकोगे।”

इतना कह कर महात्मा मौन साध गये।

काशी के एक सिद्ध महापुरुष गोपालचन्द्र चूड़ामणि के मुँह से सुना था कि स्यांग मठ वास्तव में उच्च कोटि के तंत्र-साधकों की योग-भूमि और सिद्धाश्रम हैं। उनकी अपनी चिन्मय सृष्टि है और अपनी इच्छाशक्ति का आश्रय लेकर वे अनुकूल वातावरण का निर्माण कर लेते हैं।

जिस समय मैं इन बातों पर सोच-विचार कर रहा था, उसी क्षण अचानक मुझे न्याय चूड़ामणि ने बताया था कि वह चित्र आकाशचारी ताराचन्द्र अवधूत का है।

आकाशचारी ताराचन्द्र अवधूत का तैलचित्र बिल्कुल स्पष्ट रूप से उभर आया मेरे मस्तिष्क में। लम्बी-लम्बी जटायें, पेट तक बिखरे दाढ़ी के बाल, चौड़ा मस्तक, बड़ी-बड़ी आँखें, सौम्य-शान्त मुखमण्डल, निर्विकार भाव।

सामने मौन साधे बैठे महात्मा का आकार-प्रकार, रूप-रंग और सम्पूर्ण व्यक्तित्व ताराचन्द्र अवधूत से बिल्कुल मिलता-जुलता लगा। जैसा चित्र में देखा था वैसा ही उस समय साकार सामने देख रहा था। न कभी सोचा था और न कभी कल्पना ही की थी कि योगी और साधक-समाज में सुप्रसिद्ध आकाशचारी ताराचन्द्र अवधूत से इस प्रकार भेंट हो जायेगी। धीरे-धीरे साँझ की स्याह कालिमा फैलने लगी उस विस्तृत हिमप्रान्त में। बाद में कालिमा के घनीभूत होते ही फिर हिमवर्षा होने लगी। उस महापुरुष के सान्निध्य में मेरे तन-मन की सारी थकावट दूर हो चुकी थी। मैं उस समय अपने को बिल्कुल तरोताजा और प्रफुल्लित अनुभव कर रहा था। भूख-प्यास भी गायब हो चुकी थी।

अभी मैं अवधूत महाशय का मौन भंग होने की प्रतीक्षा ही कर रहा था कि सहसा स्थिति और वातावरण में परिवर्तन होने लगा। मैं कुछ सोचूँ-समझूँ, इसके पहले ही गुम्फा के सामने वाली हिमाच्छादित धरती महाश्मशान में बदल गयी। और देखते-ही-देखते वहाँ सैकड़ों चितायें धू-धू कर जलने लगीं। उनकी लाल-पीली लपटें आकाश को छूने की कोशिश कर रही थीं। चारों ओर आग। आग के सिवाय कुछ नहीं। सुना था और पढ़ा भी था कि हिमालय में कहीं बहुत बड़ा श्मशान है, जो चिन्मय है; और है नित्या। यह वही महाश्मशान तो नहीं है ?

चिताओं से उठने वाली लपटों और धुएँ से सारा आकाश भर गया था। कुछ देर बाद देखा उनके बीच आकाशमार्ग से बहुत सारी युवतियाँ नीचे उतर रही हैं। सबके शरीर का रंग बिल्कुल काला था। कद भी बराबर था व नंगी थीं। लम्बे-लम्बे स्तन बेडौल और नाभि तक लटके हुए थे। सभी के बाल हवा में लहरा रहे थे। निश्चय ही वे सारी युवतियाँ श्मशान भैरवी थीं। वे सामूहिक रूप से चिताओं के चारों ओर घूम-घूम कर नृत्य करने लगीं। वह बड़ा भयंकर और रोमांचकारी दृश्य था।

धीरे-धीरे चितायें बुझने लगीं। उनके साथ ही भैरवियों के रूप-रंग भी बदलने लगे। कुछ ही क्षणों बाद मेरे सामने उनके वीभत्स, घृणित रूप की जगह अत्यन्त सुन्दर, कमनीय और चित्ताकर्षक रूप थे। वे स्वर्ग की देवी लग रही थीं। मानों यौवन से तरंगित उनकी देह-यष्टि लाल रेशमी साड़ियों में लिपटी हुई थीं। सभी के कण्ठ में मोतियों और हीरे-पत्तों की मालायें थीं। जब मैं उन युवतियों को ध्यान से देख रहा था उसी समय फिल्म के सीन की तरह मेरे सामने का सारा दृश्य बदल गया और उसकी जगह एक विशाल महल दिखायी पड़ने लगा मुझे। वह स्फटिक पत्थर का बना हुआ था, जिसके खम्भों, दीवारों और फर्शों से हल्के हरे रंग का प्रकाश फूट रहा था। ऐसा लग रहा था मानों वह दिव्य महल "प्रकाश" से ही बना हो। वे सारी युवतियाँ उस महल में इधर-उधर घूम रही थीं, मगर कोई किसी से बोल नहीं रही थी। सभी की वाणी मानो मूक थी।

अब मेरे सामने महल के बीच का वह भाग था जिसमें तरह-तरह के सुगन्धित फूलों की बगिया थीं। जिस समय देव-कन्यातुल्य वे युवतियाँ उन बगियों के चारों ओर घूम रही थीं उसी क्षण मुझे अपने नजदीक किसी का गम्भीर स्वर सुनाई पड़ा। जैसे कोई काफी दूर से देववाणी में कह रहा हो—“ये सारी नवयुवतियाँ खण्ड आत्मायें हैं। अपनी आत्मा के पुरुष तत्व प्रधान “खण्ड” को पाने की प्रतीक्षा में यहाँ भटक रहीं हैं ये। इनमें से किसी को पहचानते हो तुम ?”

किसका स्वर था वह ? कौन बोल रहा था ? वह अमृततुल्य वाणी किसकी थी ?

सिर घुमा कर अपने चारों ओर देखा मैंने। मगर कोई दिखलाई नहीं दिया। उसी समय ताराचन्द्र अवधूत की याद आयी। वे कहाँ गये ? अभी तो मेरे निकट ही थे। घोर आश्चर्य हुआ मुझे। हाँ, उनके साथ ही वह गुम्फा भी गायब थी, जहाँ बैठा मैं सब कुछ देख रहा था, वह जगह मेरे लिये पूरी तरह अपरिचित थी। मेरे बगल से एक हिम-नदी बह रही थी। मैं उसी के किनारे बैठा हुआ था। वह नदी महल के पीछे से होकर किसी अज्ञात दिशा की ओर घूम गयी थी। महल का प्रकाशमय प्रतिबिम्ब साफ झलक रहा था उसके निर्मल जल में। नदी के उस पार हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों के ऊपर पहला चाँद भी निकल आया था उस समय, जिसकी शुभ्र किरणें महल से टकराकर नदी के जल को चूम रही थीं। बड़ा मोहक और स्वर्गीय दृश्य था। एक बड़ी ही विचित्र शान्ति वातावरण में छायी हुई थी उस समय। सहसा फिर वही आवाज सुनाई पड़ी—“क्या तुम इनमें से किसी को पहचानते हो ? बोलो, किसी को पहचानते हो ?”

“नहीं, नहीं, मैं किसी को नहीं पहचानता। किसी को नहीं जानता ...” मैं मानो अपने आपसे कह उठा।

इसके बाद ही मुझे ऐसा लगा मानों कोई मेरी आत्मा को प्रेरित कर रहा है उस महल में जाने के लिये। मैं उठकर सम्मोहित-सा अपने आप महल की ओर बढ़ने लगा और जब महल के भीतर पहुँचा तो मुझे एक विचित्र अनुभूति हुई। कैसी थी वह अनुभूति ?

महल के प्रांगण में उस समय नृत्य हो रहा था। कई नर्तकियाँ एकसाथ नृत्य कर रही थीं। सारा वातावरण घुँघरुओं और तरह-तरह के वाद्य-यंत्रों के सुमधुर स्वरों से गूँज रहा था। एक अनिर्वचनीय सुगन्ध चारों ओर बिखर रही थी। ऐसा लगा, मानों मैं पृथ्वी के वातावरण से एकाएक निकल कर स्वर्ग के किसी भाग में आ गया हूँ। मगर यह क्या ? मेरे पहुँचते ही एकाएक नृत्य थम गया। नृत्यांगनाओं के थिरक रहे पैर रुक गये और संगीत की स्वर-लहरियाँ वातावरण में एकबारगी डूब गयीं।

मैं भौचक्का-सा खड़ा चारों ओर देख रहा था। तभी एक नवयुवती मेरी ओर बढ़ी। वह मुस्करा रही थी उस समय। काफी सुन्दर थी वह। उसके चेहरे के भावों को देख कर लगा जैसे वह मुझे जानती-पहचानती है। काफी लम्बे असें से वह मुझसे परिचित है। जब वह मेरे बिल्कुल करीब आ गयी तो अचानक मेरे मुँह से निकल पड़ा—रत्ना! फिर काफी जोर से चीख कर पुकारा—“रत्ना ...रत्ना ...”

और उसके बाद न जाने कब दोनों के शरीर लिपट गये एक दूसरे से। मानों एक दीर्घ अन्तराल के बाद बिछुड़े हुए दो साथी एक दूसरे से मिल रहे हों।

कब अलग हुए थे हम लोग ?

कौन-सा वह क्षण था जिसने अलग कर दिया था दोनों को ? वियोग के रूप में किस अपराध की सजा भोग रहे थे अब तक हम दोनों ?

कब तक रहा मैं उस स्थिति में ? कब तक दो शरीरों की उताप भरी उष्मायें टकराती रहीं एक दूसरे से ? कहा नहीं जा सकता। मगर जब चेतना लौटी तो मैंने अपने आपको फिर उसी गुम्फा में बैठा पाया। और बैठा पाया उस महान तंत्र-साधक को भी। ऐसा लग रहा था मानों मैंने कोई लम्बा सपना देखा है कुछ देर पहले। मेरी मानसिक स्थिति सहज नहीं थी उस समय। सचमुच मेरे जीवन की वह एक विलक्षण घटना थी। यदि वह सब सपना था तब भी और यदि सत्य था तब भी, विलक्षण और अविश्वसनीय था।

ताराचन्द्र अवधूत निश्चय ही एक सिद्ध महापुरुष थे, इसमें सन्देह नहीं। उन्होंने अपने योग-बल से उस निर्जन और सुनसान हिमप्रदेश में भी वे तमाम सारी सुविधायें मेरे लिये इकट्ठी कर दीं, जिनकी मुझे जरूरत थी। मगर मेरे मस्तिष्क में हर समय वे तमाम दृश्य थिरकते रहते थे, जिन्हें मैंने स्वप्नवत् देखा था। उस सौन्दर्यमयी युवती का रूप भी मेरी आँखों के सामने हर समय नाचता रहता था जिसे देख कर मैं आत्म-विस्मृत और विभोर हो उठा था। वह युवती कौन थी ? सचमुच उसका नाम रत्ना था ? यदि था तो मैं कैसे उसके नाम से परिचित हो गया था। एक नाटक-सा लग रहा था सब कुछ मुझको।

यदि अवधूत महाशय वास्तविकता से मुझे परिचित न कराते तो मैं सब सपना और नाटक ही समझता आज तक और उसे स्मृति-कथा के रूप में लिखने की भी आवश्यकता न पड़ती मुझे आज, खैर।

अवधूत महाशय ने बतलाया कि मूल परम तत्व दो रूपों में विभक्त है—पहला रूप है परमात्मा और दूसरा है आत्मा। आत्मा भी दो खण्डों में विभक्त है। पहला खण्ड

पुरुष तत्व प्रधान और दूसरा खण्ड स्त्री तत्व प्रधान है। ये दोनों खण्ड काल के प्रवाह में पड़ कर शुरु से ही एक दूसरे से अलग हो गये हैं। आत्मखण्ड का यह वियोग कब और कैसे हुआ है, यह कोई नहीं जानता। दोनों वियोगी खण्ड एक दूसरे से मिलने के लिये हमेशा व्याकुल हैं। दोनों की यह व्याकुलता और आकुलता स्त्री-पुरुष के भीतर “काम” की सृष्टि करती है। दोनों का काममय आकर्षण-विकर्षण ही वासना-कामना आदि को जन्म देता है। मगर कालचक्र के प्रवाह में कौन “खण्ड” कहाँ है, यह एक दूसरे को पता नहीं है और न तो यही पता है कि किस खण्ड ने कहाँ शरीर धारण कर संसार में जन्म लिया है। अपने अनादि वियोग को संयोग में बदलने की प्रबल कामना लेकर दोनों खण्ड बार-बार संसार में शरीर धारण करते हैं, जन्म लेते हैं और जीवन-मरण के चक्र में फँसते हैं। इस आवागमन से मुक्ति न कोई धर्म दिला सकता है, न कोई सम्प्रदाय और साधना ही दिला सकती है। “मुक्ति” तो तभी मिलेगी, जबकि बार-बार जन्म लेने वाले, शरीर धारण करने वाले दोनों खण्ड काल के प्रवाह में मिल जायेंगे।

इस संसार में कौन किसकी आत्मा का खण्ड है यह नहीं जानता। व्यावहारिक, सामाजिक और धार्मिक धरातल पर स्त्री-पुरुष मिलते तो अवश्य हैं मगर दोनों में कौन भला यह जानता है कि कौन किस आत्मा का खण्ड है। एक स्त्री एक पुरुष से प्रेम करती है, पर उस पुरुष का आत्मखण्ड किसी और ही स्त्री का होता है। इसी तरह एक पुरुष भी एक स्त्री से प्रेम करता है और विवाह भी; पर वह यह नहीं जानता है कि जिस स्त्री से उसने प्रेम अथवा विवाह किया है, उसका आत्मखण्ड किसी और पुरुष का है। उनका मिलन उनका प्रेम और उनका संयोग यही कारण है शरीर के तल पर ही अटक कर रहा जाता है। वे दोनों एक दूसरे को सिर्फ जानते हैं समझते नहीं। जानना अलग है और समझना दूसरी बात है। सच पूछा जाय तो पति-पत्नी के बीच यही अज्ञानता, मतभेद, विचार-भेद सारे झगड़ों का कारण है। “प्रेम” “आत्मा” की चीज है और प्रेम की उत्पत्ति तभी होती है, जब दोनों खण्ड मिलते हैं। जिस प्रेम से मनुष्य परिचित है, वह वासनाजन्य है। वासनाजन्य प्रेम कभी भी सच्चे प्रेम में नहीं बदल सकता। पर मनुष्य वासना के भीतर ही सच्चे प्रेम की खोज करता है। यही उसकी भारी भूल है।

“प्रेम” आत्मा का स्वाभाविक गुण है। जब उसका आविर्भाव होता है तो सारा जीवन प्रेममय हो उठता है। सारा संसार प्रेम के अथाह सागर में डूबा हुआ दिखलायी पड़ता है। सारे क्लेश, दुख, कष्ट और सारी पीड़ायें, सारी व्यथा हमेशा-हमेशा के लिये समाप्त हो जाती है। इसी को “भवमुक्ति” कहते हैं यानी आवागमन से मुक्ति, जन्म-मरण से मुक्ति।

थोड़ा रुक कर अवधूत महाशय ने आगे कहा—काल-प्रवाह में फँसे आत्मा के दोनों खण्डों के मिलन का नाम ही सच्चे अर्थों में “योग” है; और उस “योग” को प्राप्त करने का जो उपाय या प्रयास है वही “तंत्र” है।

बाहर अनवरत हिम-वर्षा हो रही थी। वातावरण में उदासी भी, गहरी शून्यता बिखरी हुई थी उस समय।

गहरी नजरो से बाहर आकाश की ओर देखते हुए अवधूत महाराज ने बड़े गम्भीर स्वर में कहा—“तुमने जो कुछ देखा, वह सपना नहीं पूर्ण यथार्थ था। तुम जिस युवती से मिले वह कल्पना नहीं पूर्ण सत्य थी। उसका नाम और रूप तुम्हारी आत्मा की गहरायी में पिछले सौ वर्षों से दबा पड़ा था।”

“पिछले सौ वर्षों से !” चौंक कर एकबारगी बोला मैं।” हाँ ! पिछले सौ सालों से।” पूर्ववत् गम्भीर स्वर में उत्तर दिया अवधूत महाशय ने। फिर आगे कहने लगे—“तुम नहीं जानते, “रत्ना” तुम्हारी आत्मा का स्त्री तत्व प्रधान खण्ड है। सौ वर्षों पहले उसने एक उच्च राजवंश में राजलक्ष्मी के रूप में जन्म लिया था और उसी समय उससे पहली बार तुम्हारी भेंट हुई थी। वह तो तुम्हारे भीतर अपने आत्मखण्ड को पहचान गयी। मगर तुम ! तुम अपने आत्मखण्ड को नहीं पहचान सके रत्ना के भीतर ! इसे क्या कहा जायेगा ? दुर्भाग्य ही न ! इतना कह कर चुप हो गये अवधूत महाशय। मगर मेरे अन्तराल में उनके इन तमाम शब्दों ने एक भयंकर दावानल को जन्म दे दिया दूसरे क्षण।”

एकबारगी चीख कर बोला—“आपको कैसे मालूम हुई ये बातें ? कैसे मालूम हुआ अतीत के अन्धकार में डूबा हुआ यह सत्य ? कैसे विश्वास करूँ मैं इस पर ?”

वह पल भर बाद बोला—“मैं था उस समय ! इसी शरीर से था उस समय वहाँ ! रही विश्वास करने की बात तो सौ वर्षों पूर्व घटित उन तमाम घटनाओं को तुम अपने मानस-पटल पर एक के बाद एक देख सकते हो।”

इतना कहकर उस महान योगी ने मेरे मस्तक पर अपना दाहिना हाथ रख दिया दूसरे क्षण। उसके बाद मैं कब किस समय अपना पार्थिव अस्तित्व खो बैठा, बतला नहीं सकता और उस स्थिति में मैंने मानस-चक्षु के सामने जो कुछ देखा, वह निश्चय ही मेरे पूर्व जीवन की अविश्वसनीय और विलक्षण कथा थी।

सिवारों से भरा विशाल सरोवर ! बीच में झड़कर कुछ गिरे कमल के पत्ते थे। आस-पास सूख कर काले हुए कमल-नाल पड़े थे। साथ में कमल के फूल, पत्ते, कमलगट्टे और एक-दो अधखिले फूल भी पड़े हुए थे। सरोवर के पूर्वी किनारे पर एक मन्दिर का ध्वन्सावशेष था। टूटे-फूटे उस मन्दिर को जहाँ-तहाँ से घेरे हुए थे उसके दोनों तरफ खड़े हुए बरगद और पाकड़ के पेड़। मन्दिर के ठीक पीछे ही हरें, बेला, आँवला, जामुन, अमरूद और कदम्ब के पेड़ थे, और उनके झुर-मुटों के बीच बना हुआ पंचमुण्डी आसन। आसन के ठीक बगल में काले पत्थर पर खोद कर बनायी हुई थी दो नारी-मूर्तियाँ।

वातावरण में एक अबूझ-सी खिन्नता छायी हुई थी। मैं धीरे-धीरे चलकर पंचमुण्डी आसन के संगमरमरी चबूतरे पर बैठ गया और अपलक निहारने लगा उन नारी-मूर्तियों की ओर। निश्चय ही वे बड़ी अनमोल कलाकृतियाँ थीं। जिस समय मैं ध्यान से उनकी ओर देख रहा था उसी क्षण एक भारी आवाज गूँजी वातावरण में—“रामविलास ...”

आवाज सुनकर मेरी नजर घूम गयी दूसरी ओर अपने आप। देखा—सामने कुछ

दूर पर एक विशाल हवेलीनुमा महल था, जिसकी सीढ़ियों पर एक लम्बी-चौड़ी काठी का व्यक्ति खड़ा था। उसकी वेश-भूषा किसी ऊँचे जमींदार की-सी थी। उसका सीना काफी चौड़ा और मस्तक ऊँचा था। उसके भव्य चेहरे पर अहंकार और दम्भ के मिले-जुले भाव बिल्कुल स्पष्ट थे। उसकी घनी काली मूँछें बड़ी रोबदार थीं।

दूसरे क्षण रामविलास सामने आकर खड़ा हो गया। उसने पैर ठोक कर सलाम किया।

उस व्यक्ति ने फिर कड़कती हुई आवाज में पूछा—“छोटे सरकार की कोई खबर मिली रामविलास ? वे लोग अब तक शिकार से लौटे क्यों नहीं ?”

“सरकार !” कहकर रामविलास ने सिर झुका लिया। “क्या बात है ? कुछ बताओ तो सही! चुप क्यों हो गये हो तुम ?” वह व्यक्ति उतावला हो उठा।

“हुजूर ! छोटे सरकार ...” रामविलास करुण आर्तनाद कर भर्राये स्वर में बोला—“छोटे सरकार का इन्तकाल हो गया।” अस्पष्ट हो गया उसका स्वर।

“क्या कहा ... इन्तकाल हो गया ?” कह कर ही इतना बड़ा सदमा पहुँचने से वह व्यक्ति बेहोश होकर सीढ़ियों पर गिर पड़ा।

वह व्यक्ति और कोई नहीं, राजा राजनारायण सिंह थे। बंगाल-आसाम की सीमा पर फैले भारी भूभाग के मालिक।

ब्रिटिश सरकार ने न जाने किस बात पर प्रसन्न होकर उन्हें राजा की उपाधि दी थी, यह वही जानते थे। छोटे सरकार उनके सगे भाई थे। नाम था ब्रजेश नारायण सिंह। उनको शिकार का शौक था। अंग्रेज साहबों के साथ वे शिकार पर जाया करते थे।

रामविलास सीढ़ियों के नीचे खड़ा था। जैसे ही राजा राजनारायण सिंह गिरने लगे उसने फुर्ती से उनको सँभाल लिया।

राजा साहब ने पंलग पर बैठकर आवाज लगायी—“बशीर !”

“हुक्म सरकार ?” बशीर सामने आ खड़ा हुआ।

“ले आओ।”

बशीर इसका मतलब समझता था। स्फटिक के पल्ले की आलमारी खोल कर बोतल और गिलास निकाल लाया वह ! कीमती शराब की बोतल खोलकर वह पत्रे की गिलास में शराब उड़ेलने लगा।

“नहीं। जोर की आवाज शान्त करनी है आज।” कह कर एक बोतल कड़ी विस्की वे बगैर सोडा मिलाये गट-गट कर पी गये।

लगातार सात दिन रानी भुवनेश्वरी देवी बहुत आग्रह-अनुरोध करने पर बड़े सरकार को कुछ खाने के लिये मना पायीं। विवाह के बारे में कुछ जानने-समझने से पहले ही विधवा हो गयी बेचारी राजलक्ष्मी।

“क्या विधवा ?” रो पड़े महाराज राजनारायण। फिर बोले—“नहीं, नहीं, मैं नहीं मानता ऐसा समाज और शास्त्र। राजलक्ष्मी और विधवा। खूबसूरत गुड़िया-सी बच्ची आज आभूषण रहित हो जाय ? ऐसा नहीं हो सकता। होगा भी नहीं।” यह कह कर

राजा राजनारायण सिंह कमरे भर में चहलकदमी करने लगे। फिर उन्होंने आवाज लगायी—“बशीर”।

“हजूर !”

“सब खिड़कियाँ और दरवाजे बन्द कर दो। ताकि राजलक्ष्मी मेरे सामने न पड़े।”

इन तमाम दृश्यों के बाद अन्त में आया एक ऐसा दृश्य जिसने मुझे एकबारगी अस्थिर कर दिया। विचलित हो उठी मेरी आत्मा।

हवेली के भीतर एक छोटा और सुन्दर मन्दिर। मन्दिर में एक ओर सिंहवाहिनी की और दूसरी ओर मदनगोपाल की मूर्ति स्थापित थी।

उन मूर्तियों के सामने सिल्क की सफेद साड़ी पहने एक युवती बैठी फूलों की माला गूँथ रही थी। जब माला तैयार हो गयी तो मदनगोपाल के गले में डाल कर अपलक दृष्टि से त्रिभंगी मुद्रा में खड़े वंशीधर को देखती रही न जाने कब तक। न जाने क्या सोचती रही वह उस समय। धीरे-धीरे उसकी तन्मयता बढ़ती ही जा रही थी। बन्द आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी थी गुलाब जैसे गालों पर। कुछ क्षण बाद राधा-कृष्ण के चरणों में सिर रखकर करुण स्वर में कहने लगी—“भगवान ! शान्ति दो मेरे अशान्त दुखी मन को।”

वह रत्ना थीं। राजलक्ष्मी रत्ना।

किसी प्रकार की भूल नहीं हुई मुझसे पहचानने में। धीरे-धीरे मैं रत्ना की ओर बढ़ने लगा। आत्मा ने हौले से कहा—“गले लगा लो उसे। तुमसे ही शान्ति मिलेगी उसकी बेसुध आत्मा को। मगर मैं जैसे ही रत्ना के करीब पहुँचा तभी मुझे अपने समीप सुनायी पड़ा ताराचन्द अवधूत का कोमल और अमृततुल्य स्वर। वे कह रहे थे—“अब विश्वास हुआ न तुमको ? यही वह रत्ना है जिसकी आत्मा एक दीर्घ अन्तराल से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।”

अवधूत महाराज के इन शब्दों के साथ ही मैं सहज स्थिति में आ गया। देखा—मेरी ओर निहारते हुए वह मुस्करा रहे थे।

मैं सोचने लगा—इतनी कठिन और जीवन-मरणदायिनी हिमयात्रा कर तिब्बत आया था भारतीय संस्कृति और साधना के अतीत के अन्धकार में डूबे हुए गूढ़ और रहस्यमय तथ्यों का पता लगाने के लिये और खोज करने के लिये आया था उन तथ्यों में निहित तमाम सत्यों के साक्षी रूप गुप्त रूप में निवास करने वाले उच्च कोटि के योगियों और साधकों की। कभी सपने में भी नहीं सोचा था और कभी इस बात की कल्पना भी नहीं की थी कि इस यात्रा के अन्तिम चरण में पहुँच कर मेरे जीवन का भी एक रहस्य खुल जायेगा।

साँझ हो चली। धीरे-धीरे अमावस की काली अंधेरी रात स्याह चादर से ढँक गयी सारी हिममयी धरती। डूब गया सारा हिमप्रान्त घोर अन्धकार में।

थोड़ी देर बाद काला आकाश भर गया बादलों से। ऐसा लगने लगा कि कभी, किसी क्षण भी फट पड़ेगा आसमान। सहसा उस निस्तब्ध और अन्धकार में डूबे वातावरण को मथती हुई विद्युत-वाणी गरज कर शान्त हो गयी। बिल्कुल वही अपरूप-

रूप, वही सौन्दर्य और बिल्कुल वही कमनीय देह।

पिछले सौ सालों से भटक रही एक अतृप्त आत्मा ने बिल्कुल वैसा ही पार्थिव शरीर ग्रहण कर लिया था जैसा कि पहले उसका अपना था और जैसा कि अभी-अभी कुछ समय पहले मैंने अपनी आँखों से देखा भी था। मगर उसकी निगाह। तमाम उम्र नहीं भूल पाऊँगा उसे। लगा प्रेतपुरी का दावानल सुलग रहा हो वहाँ। चेहरा भी एकदम स्याह हो गया न जाने क्यों, आतंक और संशय से बुरी दशा हो गयी उस समय मेरी। रत्ना की उपस्थिति मुझे रहस्यमयी लगने लगी। प्राण कँपा देने वाली उस हिममयी रात में भी असीम आतंक से अवश हो गया मेरा शरीर। प्राण भी आतंक से जैसे हिम गये मेरे। उस क्षण में क्या घटित होने वाला था ? क्या प्रेतलीला ? लगा जैसे मूर्च्छित हो जाऊँगा मैं।

मेरे चेतनाशून्य होने के पहले ही किसी ने अपनी कोमल बाँहों से सँभाल लिया मुझे। बड़ी सुखद और शान्तिमय लगी वह गोद। लगा जैसे इसी गोद की प्रतीक्षा करती रही है अब तक मेरी आत्मा।

फिर किसी ने शायद जिसने सहारा दिया था उसी ने, कानों में फुसफुसा कर कहा—“क्यों इतना भयभीत हो रहे हो ? क्यों इतना आतंकित हो रहे हो ? मैं रत्ना हूँ, रत्ना, तुम्हारी रत्ना। मैं कोई प्रेतात्मा नहीं। बस ! तुम्हारे और मेरे में इतना ही अन्तर है कि तुम्हारी आत्मा पार्थिव शरीर में है और मेरी आत्मा है सूक्ष्म काया में। मगर आज से हर अमावस्या की रात में मैं तुमसे पार्थिव शरीर में ही मिलूँगी। कुछ क्षणों के लिये, कुछ समय के लिये तब मेरे और तुम्हारे में कोई अन्तर नहीं रहेगा। कोई भेद नहीं रहेगा। न तो रहेगा किसी तरह का अलगाव।

सचमुच ! आज पैंतीस वर्षों का लम्बा अरसा गुजर गया। रत्ना, जैसा कि मैं पहले ही बतला चुका हूँ, मुझसे हर अमावस्या की काली अंधरी रात में मिलती है मगर मेरे और उसके बीच कोई अन्तर नहीं रहता, कोई भेद नहीं रहता। उसे मेरी मौत का इन्तजार है और मुझे इन्तजार है उसे हमेशा-हमेशा के लिये पाकर इस नश्वर संसार के आवागमन से अपने-आपको मुक्त करने के क्षण का, क्योंकि मेरे हृदय में इस संसार के प्रति और इस शरीर के प्रति कोई आकर्षण नहीं रह गया है और न तो किसी तरह का मोह ही रह गया है अपने जीवन के प्रति। मेरे लिये सारा संसार श्मशान है और संसार के लिये मैं हूँ शव। मेरे मानस-चक्षु के सामने जीवन, जगत और शरीर का सारा रहस्य खुल गया है। कुछ भी बाकी नहीं बचा है अब। खैर, मेरी यह अविश्वसनीय कथा यहीं खत्म हो जाती है मगर अन्त में आपको इतना बतला देना चाहता हूँ कि तिब्बत से वापस लौटने पर मैं बंगाल-आसाम की सीमा में उस जगह पर गया जहाँ कभी राजा राजनारायण सिंह की जमींदारी थी और थी शानदार हवेली।

एक योगी के योग-बल से मैंने जो कुछ देखा था और अनुभव किया था उसके इतिहास को काल के सीने पर सिर धुनते हुए देखा वहाँ। वहाँ मैंने कई महत्वपूर्ण चित्र भी लिये थे।



एक तांत्रिक का रहस्यमय खजाना

मेरा नाम अरुण कुमार शर्मा है। पता नहीं बतलाऊँगा, अगर आपको प्रस्तुत कहानी पढ़ चुकने के पश्चात अपनी कोई जिज्ञासा शान्त करनी हो अथवा मुझसे कोई प्रश्न पूछना हो तो प्रकाशक से मेरा पता सहर्ष प्राप्त कर सकते हैं।

निश्चय ही आपको मेरी यह कहानी अविश्वसनीय और असम्भव-सी लगेगी। लेखक ने अपनी विचित्र कल्पना का नमूना पेश किया है, शायद यही सोचेंगे आप।

मगर "सत्य" है तो उसके लिये कल्पना की क्या आवश्यकता है। अदभुत और विचित्र घटनाओं से पूर्ण एक सनसनी खेज घटना का वर्णन करके आप लोगों के मन में कुतूहल की सृष्टि के ओछे और सस्ते विचार से यह कहानी नहीं लिख रहा हूँ। सच तो यह है कि इस कहानी के पीछे मेरा खास उद्देश्य यह है कि मैं आपको उस सत्य से परिचित करा दूँ जो मानव-जीवन के चतुर्दिक अदृश्य रूप से विराजमान है और विशेष ज्ञान और बुद्धि के माध्यम से वह प्रकट और प्रमाणित होता है।

मनुष्य का जीवन दो धाराओं में विभाजित है। स्थूल जीवन जिसके अन्दर वह "अहं" की सृष्टि कर जीता है वह पहली धारा के अन्तर्गत है। यह धारा स्वतंत्र नहीं, बल्कि एक दूसरी धारा के आश्रित है जिसको हम सूक्ष्म जीवन की धारा कहेंगे। यह अजस्र है, इसमें किसी भी प्रकार का व्यवधान नहीं। इस जीवन में "आत्मा" का प्रवाह है। मनुष्य का अस्तित्व इन्हीं दोनों के बीच स्थित है।

सूक्ष्म जीवन का सही ज्ञान प्राप्त करने के लिये ही मैंने उससे संबंधित अनेक योग तांत्रिक विधाओं का अच्छी तरह से अध्ययन किया है। सचमुच योगतंत्रशास्त्र एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से मानव-जीवन की तमाम गुत्थियाँ, जटिलतायें और रहस्य समझ में आ जाता है। आजकल जो लोग योगी बनते फिरते हैं, अथवा तांत्रिक कहलाते हैं, वे लोग सही अर्थों में वह नहीं हैं जिसे वे व्यक्त करना चाहते हैं। जो लोग वास्तव में हैं वे तो अपने आपको हमेशा अव्यक्त ही रखने का प्रयत्न करते हैं। कोरे अध्ययन से कुछ होता नहीं, जब तक कि उस ज्ञान को जीवन में स्वीकार न किया जाय। आज जीवन में शिक्षा की असफलता का जो कारण है उसके मूल में यही तथ्य है। खैर।

अपनी इस लम्बी उम्र के दौरान मैं लोक-सम्पर्क से सर्वथा अप्रभावित रहने का ही प्रयत्न करता आया हूँ। सांसारिक दृष्टि से असम्भव-सी लगने वाली घटनाओं से भरा-पूरा है मेरा जीवन। दो अपवादों को छोड़कर मैंने उन घटनाओं को कभी भी लिपिबद्ध करने का प्रयत्न नहीं किया है। मगर आज मैं आपके उपहास और अविश्वास को सहन करके भी अपना विलक्षण अनुभव सुनाने जा रहा हूँ।

लगभग सात दिन की अकथ पद-यात्रा के बाद मैं मयूराक्षी, और ब्रह्मपुत्र नदी का उल्लंघन कर दूधा नदी के तट पर पहुँचा। दूधा का दूध जैसा धवल और शुभ्र

जल के अन्दर डूबते हुए सूरज का प्रकाश तैर रहा था और जिसके साथ ही तैर रहा था, लम्बे-लम्बे मगर घने वृक्षों का प्रतिबिम्ब। नदी के दूसरे तट पर कुछ दूर तक तो थारू जाति के लोगों के झोपड़े थे उसके बाद घने जंगलों का सिलसिला शुरु हो जाता था।

काशी में मुझे स्वामी प्रत्यगात्मानन्द परमहंस देव ने बतलाया था कि उसी दूधा नदी के तट पर किसी घने और रहस्यमय गुप्त स्थान पर एक भयंकर तन्त्रसाधक का मठ था। उसके पास तंत्र विद्या के अलावा सोने-चाँदी का भी खजाना था। यह खजाना उसने कैसे उपलब्ध किया यह तो किसी को मालूम नहीं, मगर इतना तो अवश्य मालूम था कि वह अपूर्व अतुलनीय खजाना आज भी उस मठ में सुरक्षित है। पर वह मठ है कहाँ।

तीन दिन की खोज के बाद मुझे उस मठ का पता चल गया।

अविराम गति से प्रवाहित दूधा नदी के तट से कुछ दूर पर तीन ओर से पहाड़ियों से घिरा वह मठ, जो अब खँडहर के रूप में परिवर्तित हो चुका था, स्थित था। एक ही तल्ले का था वह। अन्दर कुल चार कमरे थे। आंगन के बीच में एक चौकोर वेदी बनी थी, जिस पर बलि देने वाला जैसा खूटा गड़ा था, भयंकर बदबू और सीलन से भरा था अन्दर का वातावरण। चारों तरफ अजब गन्दगी थी। दिन के प्रकाश में भी वहाँ अंधेरा था। सहसा एक बार रोमांच हो आया सारे शरीर में मगर डरा नहीं और न तो भयभीत ही हुआ। एक अजीब उलझन और खिन्नता का बोध हो रहा था मुझे। चारों तरफ परिव्याप्त थी श्मशान जैसी नीरवता। साँझ की स्याह चादर शनैः-शनैः धरती पर फैलती जा रही थी।

उस समय मेरे मन में तीव्र जिज्ञासा हो रही थी उस स्थान के प्रति और उस तन्त्रसाधक के प्रति जिसने उस मठ में अपने जीवन के अट्टारह वर्ष व्यतीत कर कठोर तांत्रिक साधना की थी और जिसको समाधिस्थ हुए पचास वर्ष का लम्बा अर्सा गुजर गया था।

कैसा रहा होगा वह साधक। किस चरम उपलब्धि के लिये उसने वह कठोर जीवन-मरणमयी साधना की थी।

विचारों के सागर में आकण्ठ डूबा हुआ मैं बाहर निकल आया। साँझ अब रात्रि में परिवर्तित हो चुकी थी। आसमान की ओर देखा, त्रयोदशी का चाँद घने काले स्याह बादलों के बीच निकल आया था। काफी दूर से थारूओं की गन्दी बस्ती से ढोल के थाप पर किसी गीत की स्वर-लहरी आ रही थी। उसी समय सहसा मुझे ख्याल आया कि रात्रि कहाँ व्यतीत करूँगा।

थारूओं के गाँव में रहना खतरे से खाली नहीं। वे प्रत्यक्ष राक्षस होते हैं और उनकी स्त्रियाँ तो मानो सभ्य मनुष्य के गन्ध की भूखी ही होती हैं। निश्चय ही थारू जाति की औरतों में कामविकार की प्रबलता पायी जाती है। वे अपनी कामाग्नि से मनुष्य के गोशत को इस प्रकार भूनती हैं कि वह आह तक नहीं कर पाता बेचारा। बस, वह किसी मर्द को पसन्द भर कर लें। फिर कौन जीत सकता है उनसे। औरतों के शरीर

का रंग तो होता है काला, मगर उस कालेपन में भी गजब का सौन्दर्य बिखरा रहता है। शरीर का गठन अधेड़ आयु हो जाने पर भी खत्म नहीं होता, जैसा कि बतलाया, कामशक्ति की उनमें अत्यधिक मात्रा पायी जाती है। एक-दो पुरुष से उनको तृप्ति प्राप्त नहीं होती है इसलिये एक औरत के दर्जनों पति हुआ करते हैं।

मैं धीरे-धीरे पैर बढ़ाता हुआ दूधा नदी की ओर जा रहा था कि तभी मेरे कानों में किसी का मधुर कंठ स्वर सुनायी पड़ा।

उस वीरान जंगली वातावरण में कौन था उस समय। कौन पुकार रहा था मुझे। पीछे घूमकर देखा, फिर तो देखता ही रह गया मैं।

एक नारी-मूर्ति मेरी ओर बढ़ती आ रही थी द्रुत गति से, कुछ ही क्षण में मेरे पास आकर खड़ी हो गयी वह। उस निर्जन वातावरण में सामने एक युवती को देखकर न जाने क्यों मैं सिहर उठा।

“आइये। मैं आपको पुकार रही थी।” मृदुकण्ठ स्वर सुनकर मैंने ऊपर आँखें उठाईं। रात की खामोशी में त्रयोदशी के चाँद की मद्धिम रोशनी में उस अनिन्द्य सुन्दरी नवयौवना को देखकर मुझे संस्कृत साहित्य की तन्वंगी, पीन पयोधरा, कामांगनाओं की याद भी आ गयी। अगाध सौन्दर्य, अगाध यौवन और अगाध आमंत्रण। अवाक् देखता रह गया मैं।

युवती के होठों पर मन्द हँसी थी। मेरी दृष्टि सहसा उसके नेत्रों पर पड़ी। चौक पड़ा मैं। उसके नेत्र साधारण नहीं थे। मुझे लगा कोई गुप्तकालीन प्रतिमा सजीव होकर मेरे सामने आ खड़ी हुई है। जैसे अजन्ता के किसी दक्ष कलाकार ने अपने सिद्ध हाथों की तूलिका से इस रूपराशि का सृजन किया हो, और फिर उसमें प्राणों का संचार कर दिया हो। उसके सतेज नेत्रों में मानों कई शताब्दियों का इतिहास झाँक रहा हो। दृष्टि में एक अलौकिक शक्ति।

वह मुस्कराती हुई दुबारा बोली—“बाबा कह रहे थे, आज कोई अतिथि आने वाला है। चलिये आप मेरे साथ।” वह चलने को उद्यत हुई फिर।

“तुम्हारे कौन बाबा हैं, कैसे जानते हैं मुझे, कहाँ रहते हैं”—एकसाथ कई प्रश्न कर बैठा मैं।

चलो, रास्ते में सब कुछ बतलाऊँगी मैं। देर हो रही है। इतना कहकर चल पड़ी वह। और उसके पीछे-पीछे मूक-सा सम्मोहित-सा मैं भी चल पड़ा। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कोई मुझे बरबस खींचता ले जा रहा है। मुझपर, मेरी आत्मा पर कोई अदृश्य मगर अदम्य शक्ति आच्छादित हो गयी है और मैं उसके अधीन हो गया हूँ।

युवती ने मुझे रास्ते में बतलाया—“बाबा साधक हैं। बहुत दिनों से यहाँ रहते हैं। आपको वे कैसे जानते हैं यह नहीं बतला सकती मैं।”

युवती मुझे उसी मठ की ओर ले जा रही थी। थोड़ी देर बाद युवती मुझे साथ लिये मठ के पश्चिम ओर जरा दूर पर बने एक मकान के दरवाजे पर खड़ी हो गयी।

झोपड़ियों के इस अजीब से दरिद्र गाँव में ऐसे पक्के मकान को देखकर विस्मित हो उठा मैं। दरवाजा बन्द था। पर थोड़ी देर बाद सहसा अपने आप खुल गया वह।

पर विशेष ध्यान नहीं दिया मैंने। अन्दर प्रविष्ट हुआ। सामने एक दूसरी युवती खड़ी थी सुडौल युवा देह। चेहरे का प्रत्येक कटाव आकर्षक।

मेरी साथिन युवती ने बतलाया “यह परिचारिका है यहाँ की। नाम मीनाक्षी है। बाबा की सेवा में रहती है।”

उसी समय मेरी दृष्टि सामने वाले कमरे की ओर घूम गयी। वहाँ काफी तीव्र प्रकाश हो रहा था। युवती मुझे उस तरफ देखते हुई बोली—पूजा-गृह है वहाँ बाबा पूजा कर रहे हैं। चलो, वहीं चलें।”

कमरा, वस्तुतः पूजा-गृह था। राल के सुगन्धित धुएँ से सम्पूर्ण कमरा भर रहा था। दरवाजे के ठीक सामने पाषाण-वेदी पर चतुर्भुज दक्षिण काली की श्याम मूर्ति अट्टहास करती हुई खड़ी थी, और उसके सामने योग-मुद्रा में बैठे थे बाबा। किसी प्राचीन तपस्वियों जैसे ही प्रतीत हो रहे थे। स्वस्थ शरीर, गले में रुद्राक्ष, उन्नत ललाट पर रक्त केशर का तिलक और अंजलि में अपूर्ण पुष्प। उनको मेरी उपस्थिति का आभास नहीं था। प्रतिमा के सामने चौमुखे दीप में घी की ज्योति जल रही थी। और उसी के पास एक थाली में कटे हुए बकरे का मस्तक रखा हुआ था, जिसके ऊपर कपूर अभी भी जल रहा था।

बाबा तंत्रसाधक हैं, और यह स्थान कोई गुप्त तांत्रिक साधना-स्थल है, यह समझते देर न लगी मुझे। मगर यह साथवाली युवती कौन है, इसका आभास मुझे अभी तक नहीं मिल पाया था। कुछ ठीक से समझ नहीं पा रहा था मैं उसके विषय में।

○○○

उस समय बाबा से बातें न हो सकीं। जो कमरा मुझे विश्राम के लिये दिया गया, वह बहुत शानदार था। सुरुचिपूर्ण सजावट। भीतर एक पलंग पर मेरा बिस्तर लगा था। कमरे के वातावरण में जैसे कला के पायलों की झंकार गूँज रही थी। सामने दो काफी बड़ी हवादार खिड़कियाँ। पूरब की ओर किसी कोमलांगी युवती के सफेद आँचल जैसी लहराती, बलखाती दूधा नदी और घने जंगल और जंगल के ऊपर आकाश में टिमटिमाते हजारों-लाखों तारों की बारात। खिड़की से जंगली फूलों की गन्ध भार लिये पुरुवा हवा आ रही थी। थोड़ा मन स्वस्थ हुआ। यह सब क्या हो रहा है कैसे हो रहा है ये सब प्रश्न एकबारगी मस्तिष्क में से निकल गये उस प्राणदायिनी हवा के स्पर्श से।

कुछ समय बाद युवती कमरे में प्रविष्ट हुई और पूछा—“भोजन नहीं करियेगा ?” मैं बोला—“खाऊँगा क्यों नहीं। मगर इसके पहले कुछ पूछना चाहता हूँ। ठीक उत्तर मिलने पर ही खा सकूँगा।”

युवती के होठों पर मन्द हँसी थिरक उठी। अपनी आँखों की सतेज दृष्टि मुझपर टिकाती हुई बोली “तुमको ‘विश्राम’ के लिये स्थान चाहिये था न सो मिल गया।”

“मगर मैं इतनी दूर से चलकर यहाँ विश्राम करने-मात्र के लिये तो आया नहीं हूँ” मैंने कहा—“मेरा उद्देश्य तो कुछ और ही है।” “वह भी पूरा समझिये”—युवती बोली।

“हाँ, ठीक ही कहती हूँ। पहले खा लो।” मैं फिर आपत्ति न कर सका। मुझे स्वयं अपने ऊपर आश्चर्य हो रहा था। मैं इस लड़की के आदेशों को टुकरा क्यों नहीं पा रहा हूँ।

सिर झुकाकर जल्दी-जल्दी खाने लगा मैं। युवती खिड़की के बाहर अन्धकार से भरे आसमान की ओर निहारती हुई बोली—तुमने मेरा नाम नहीं पूछा। फिर जरा रुक कर बोली—मेरा नाम “कल्पना” है। तांत्रिक साधना के संबंध में उच्चकोटि के अध्ययन के लिये ही तुम भ्रमण कर रहे हो, साथ ही साधना के रहस्य और गूढ़त्व की भी जानकारी चाहते हो। अच्छा है, शायद तुम मेरी कहानी भी लिख सको अपने अनुभवों के साथ। तुम्हें आना ही था। सिहर उठा मैं। क्षण भर के लिये लगा मुझे शायद मैं किसी पागल लड़की के चंगुल में फँस गया हूँ। पर यह पागल तो नहीं मालूम होती। यह अभिनय भी नहीं है।

भोजन करने के बाद सो गया मैं। कल्पना चली गयी। घड़ी की ओर देखा, एक बज रहा था उस समय। दूसरे दिन साँझ को पूजा के पहले बाबा ने मुझे अपने पास बुलाया। मुखमण्डल पर अलौकिक चमक थी बाबा के। नेत्र बन्द थे। मुझको उपस्थित जानकर नेत्र खोले उन्होंने। फिर एक गम्भीर मुस्कराहट थिरक उठी उनके होठों पर।

“काशी से आना हुआ है ?” बाबा ने पूछा।

“हाँ।” श्रद्धा से झुक कर अत्यन्त धीमें स्वर में उत्तर दिया मैंने।

तांत्रिक साधना के रहस्यों से शीघ्र परिचित होना असम्भव है—बाबा ने स्वयं कहना शुरू किया। अत्यन्त दीर्घ अवधि के बाद तुम जैसे खोजी का आना इधर हुआ है। सौ वर्षों पूर्व काशी जाना हुआ था मेरा। वहाँ भी अच्छे साधकगण हैं। अभी भी हैं। पर गुप्त हैं।

बाबा की बातों से विस्मय हुआ मुझे। मेरे आने का उद्देश्य वे कैसे जान गये। फिर सौ वर्षों पूर्व बाबा काशी गये थे। कितनी आयु होगी उनकी ? कौतूहल विस्मय के जाल में उलझ गया मैं। मगर कुछ पूछा नहीं गया। कुछ कहा नहीं गया मुझसे। मौनवत सुनता रहा बाबा की बातें।

“तुम यहाँ से वापस लौटे जा रहे थे। मुझसे रहा नहीं गया। माँ महामाया की आज्ञा से इस वातावरण को स्थल भूमि में प्रकट करना पड़ा मुझे।”

समझ में कुछ नहीं आया मेरे। जिज्ञासा का भाव लिये बाबा की ओर देखा। शायद वे समझ गये।

बोले—“भारत की प्राचीन विद्या और साधना के प्रति अब पूर्व जैसी श्रद्धा और भावना शेष नहीं रह गयी है। भारत अब अपने स्वरूप को भूलता जा रहा है। इसीलिये प्रकट में सब कुछ सम्भव नहीं। चर्म चक्षु से परे होना ही उचित है। इसी में भारत के मूलत्व की रक्षा हो सकेगी।”

कैसे लिखूँ, कैसे कहूँ न जाने क्यों और कैसे बाबा की यह वाणी सुनकर मन विचलित हो उठा मेरा। आँखों में आँसू आ गये। निरीह भाव से देखता रहा बाबा की ओर, बाबा बोलते जा रहे थे—मोह, आकर्षण और नानाविध प्रपंचों के कारण ही

स्वरूप की विस्मृति होती है। स्थूल जगत में होने वाली विस्मृति का प्रभाव सूक्ष्म भूमि पर जब पड़ता है तो उसी से संस्कार जन्म लेता है। इसीलिये उच्चकोटि के साधक गण स्थूल जगत से पृथक रहने का ही प्रयत्न करते हैं।

इस प्रसंग पर बाबा से प्रश्न कर बैठा मैं—“लोक-कल्याण के संबंध में साधकों की कैसी भावना रहती है”

“भावना। सर्वोच्च प्रकार के साधकों में ‘भावना’ का स्थान नहीं। भावना से ‘राग’ और ‘प्रेम’ की उत्पत्ति होती है। साधक भावना, राग अथवा ‘प्रेम’ से दूर रहता है। इसी को ‘वैराग्य’ कहते हैं।”

“मगर ‘तांत्रिक साधना’ लोक-कल्याण की भी हेतु बतलायी गयी है।”

“हाँ।” मेरा यह प्रश्न सुनकर बोले—“ठीक है। परन्तु साधक के माध्यम से तांत्रिक साधना के लोक-कल्याण का पथ तभी स्पष्ट होता है जब कि मनुष्य अथवा देश के हृदय में श्रद्धा, विश्वास और जिज्ञासा का उदय होता है।”

“इनकी उत्पत्ति कैसे सम्भव है।” यह तीसरा प्रश्न था मेरा। “कुछ संस्कार के माध्यम से और कुछ वातावरण की प्रेरणा से इनकी उत्पत्ति हुआ करती है।”

“योगतंत्र के साहित्य का अब अभाव दृष्टिगोचर होता है”—मैंने प्रसंग को बदला इस नये प्रश्न से।

बाबा मौन हो गये। शायद इस प्रश्न का उत्तर उस समय नहीं देना चाहते थे। साधना-कक्ष में साँझ का धुंधलापन छा गया था। बाबा चंचल हो उठे। सम्भवतः पूजन का समय हो रहा था और तभी कल्पना आ गयी कमरे में। अवाक् रह गया उसकी रूप-शिखा को देखकर मैं। उन्नत ललाट, क्षीण कटि, आयताकार नेत्र, चम्पई आभा से सराबोर शरीर, मादक उतार-चढ़ाव। पूजन में योग देने के लिये तैयार होकर आयी थी कल्पना शायद।

उस दिन पूजा-गृह विशेष रूप से सज्जित था। बाबा अपने आसन पर बैठ गये और उनके सामने आसन पर बैठी कल्पना। उन्मुक्त केश राशि फैली हुई थी, उसके कन्धों तक।

पूजा शुरू हुई।

मकान के किसी अज्ञात कक्ष से नगाड़े की गम्भीर मगर मधुर ध्वनि प्रवाहित होने लगी वातावरण में। शनैः-शनैः पूजा की स्थिति गम्भीर होने लग गयी। चतुर्दिक वायुमण्डल में आकुलता का संचार होने लगा। आत्म-विभोर हो उठा मैं। ऐसा लगा मानों कोई अज्ञात और अव्यक्त शक्ति का स्पर्श मुझे और मेरी आत्मा को हो रहा है और उस स्पर्श के प्रभाव से दबता जा रहा हूँ मैं। एक भीनी-भीनी सुगन्ध का झोंका मेरी नासापुट से आ टकराया और सहसा मेरी तन्द्रा भंग हुई। फिर विस्मय विमुग्ध खड़ा निहारता रह गया मैं। देवी की प्रतिमा के सामने कल्पना की अर्धनग्न देह झूम रही थी। वह आँख मूँदे तन्मय थी। उसके स्तनों पर कसी हुई सुनहली कंचुकी न जाने कब और कैसे खुल गयी थी। पीन पयोधर दो स्वर्ण कलश के समान प्रत्यक्ष हो गये थे। रोमांच से भर उठा मेरा सारा शरीर।

बाबा निर्विकार बैठे थे पूर्ववत्।

सहसा कल्पना अपने स्थान से उठी। शेष वस्त्रों से अपने को मुक्त कर लिया उसने।

हे भगवान। पूर्ण नगना नारी का एक विस्मय और विमुग्ध रूप था मेरे सामने। कल्पना का सम्पूर्ण नग्न शरीर प्रतिमा के सामने काँप रहा था। वह नृत्य की मुद्रा में थी। पूजा-घर के वातावरण में अजीब उदासीमिश्रित विकलता भरी थी वह और भी घनी हो गयी।

दहल उठा मैं। सहसा कल्पना उछलकर मेरे करीब आयी और अपने दोनों हाथों से मेरी कमर को कस कर पकड़ लिया उसने।

वह उन्मत्त हो रही थी। पूर्ण नगना नारी की कामाग्निमयी देह का स्पर्श। एकबारगी झुलसा दिया उसने मेरी आत्मा को। वह मुझे खींचती ले जा रही थी शयन कक्ष की ओर।

“कल्पना। कल्पना।” चिल्लाया मैं। “यह क्या हो रहा है। कैसा पागलपन है यह। मुझे छोड़ो कल्पना मुझे।”

पर कल्पना ने मुझे छोड़ा नहीं। व्याकुल, उन्मत्त और शरीर की भूख से व्यथित हो रही थी वह। नारी के सौम्य रूप में पुरुष अपने को अर्पित करता है। क्रूर और भयंकर रूप नारी सदैव घृणा और कौतूहल की पात्र समझी जाती है। खैर, उसके बाद का इतिहास रात्रि के अन्धकार में डूब गया। प्रातःकाल हुआ। नींद खुली मेरी। स्तब्ध रहा गया मैं। मठ के आँगन में पड़ा था मैं। धूल और कीचड़ से शरीर और कपड़ा भर गया था मेरा।

चौबीस घण्टों में जिन दृश्यों का आविर्भाव हुआ था, उनका कोई भी चिह्न कहीं भी शेष नहीं था। मगर मेरी बुद्धि में यह बात आते देर न लगी कि ये सब विचित्र लीला उसी महातांत्रिक की थी जिसके खजाने की खोज में यहाँ तक आया हूँ। मैंने यह निश्चय कर लिया कि रहस्य को प्रकाश में लाये बिना यहाँ से कदापि न जाऊँगा।

मठ के आँगन से लगे एक कमरे में मैंने कुछ दिन व्यतीत करने का निश्चय किया। तीन दिन निर्विघ्न व्यतीत हो गये। कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी। चौथे दिन सन्ध्या से ही बूँदा-बाँदी शुरू हो गयी। क्रमशः बादल घने होते चले गये आकाश में। फिर आधी रात व्यतीत होने तक झम-झम कर बरसने लगे बादल। चारों तरफ एक अबूझ-सी खिन्नता व्याप्त हो गयी। कभी-कभी मेघ के अट्टहास से सारा प्रान्त गूँज उठता था। बिजली की चमक से तिमिराच्छन्न धरती उद्भासित हो जाती थी। मेरी आँखों में नींद नहीं थी। मस्तिष्क में विंगत घटनाओं के दृश्य थिरक रहे थे।

और तभी एकदम झनझनाहट की ध्वनि ने मेरी नस-नस को उद्वेलित कर दिया। मैं चौंक कर बैठ गया। उस झनझनाहट की आवाज को गौर से सुनने लगा मैं। उस झनझनाहट की अजीब ध्वनि थी। शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता उसे। सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि, उस विचित्र ध्वनि में एक अजीब मादकता थी, कोमलता थी और था आकर्षण। अब मेरे मन में कौतूहल के साथ-साथ भय का भी संचार हो

रहा था। वह आवाज स्थिर नहीं थी। इधर उसके कारण मेरा दिल तेजी से धड़क रहा था। मेरी आँखें पथरा रही थीं। आवाज ऊँची हुई थी। आँखों के सामने तारे नाच रहे थे। माथे पर पसीने की बूँदें उभरी आ रही थीं। लेकिन उस घबराहट और अर्धविक्षिप्त मनःस्थिति में भी मेरा स्वाभिमान एकदम जोर कर रहा था। मैं अनुभव कर रहा था कि मैं किसी अनहोनी-सी घटना के अथाह सागर में तिरोहित हो रहा हूँ। फिर भी अन्दर साहस का अंश शेष था और तभी मुझे ऐसा लगा कि झनझनाहट की वह आकर्षक आवाज मठ के अन्दर ही बने एक सूखे कुएँ की ओर बढ़ रही है। सूखा कुआँ, हाँ, सूखा कुआँ, जिसकी ओर मेरा ध्यान अभी तक नहीं गया था। मैं साहस इकट्ठा कर उस कुएँ के निकट जा पहुँचा। अजीब-सा लगा मुझे। ध्वनि अब खत्म हो चुकी थी। चारों तरफ सन्नाटा छा गया था। केवल वर्षा का शोर हो रहा था बाहर। मैं वहाँ कुछ समय खड़ा रहा, फिर वापस लौट आया कमरे में।

दूसरे दिन, मैंने उस कुएँ में उतरने का फैसला किया। जैसा कि मैंने बतलाया कुआँ बिलकुल सूखा था। लगभग ३५ फुट गहरा रहा होगा वह। मैं रस्सी के सहारे नीचे उतरा। भीतर अभी भी प्राण घातक दुर्गन्ध फैल रही थी। कूड़ों का ढेर लगा हुआ था और तभी मेरी आँखें चमक उठीं। देखा, कुएँ की दीवार में एक छोटा-सा दरवाजा बना हुआ था। लोहे के मजबूत चदर से बन्द था वह। तीन घण्टे के अथक और एकाकी श्रम से किसी प्रकार खुला वह। भीतर पत्थर के ईंटों की बनी सुरंग मिली मुझे, टॉर्च की रोशनी से आगे अन्दर बढ़ा मैं। लगभग ५० कदम अन्दर जाने पर मुझे एक आँगन मिला, जिसके एक तरफ छोटी-सी कोठरी जमीन को बराबर काट कर बनी हुई थी। भीतर भयंकर अन्धकार और दुर्गन्ध के बावजूद कुछ ऐसा था कि मन में घबराहट नहीं होती थी। कोठरी का दरवाजा भी मजबूत चादर का था। किसी प्रकार उसे भी खोला मैंने। दरवाजा खुलते ही सबसे पहले जिस वस्तु पर मेरी नजर पड़ी उसे देखकर चौंक पड़ा मैं।

संगमरमर-निर्मित पाषाण-वेदी पर एक नर-कंकाल दोनों पैर मोड़कर बैठा हुआ था, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि मानों कोई जीवित अवस्था में उस वेदी पर बैठा होगा और मृत्यु को प्राप्त कर अब कंकाल में परिणत हो गया था। पर ऐसा हुआ क्यों ?

विकट प्रश्न था मेरे सामने।

मेरे टॉर्च की रोशनी बराबर कोठरी का निरीक्षण कर रही थी और तभी दीवारों पर फिसलती हुई रोशनी दो बड़े-बड़े लौह-सन्दूकों पर पड़ी, जिसको देखते ही मुझको यह समझते देर न लगी कि मैं उस महान तांत्रिक के अपूर्व और दुर्भेद्य खजाने के बीच हूँ। सारे शरीर में झुरझरी होने लगी। कौतूहल और आश्चर्य से भर उठा मैं।

थोड़े से परिश्रम से दोनों सन्दूक खुल गये। पहले में मुझे स्फटिक की एक तश्तरी मिली। उस तश्तरी में विचित्र प्रकार का द्रव भरा हुआ था। उस द्रव के बीच में अण्डे के आकार का एक काँच तैर रहा था, जिसमें से रोशनी की तीखी किरणें बाहर निकल रही थीं। मैं उसको काफी गौर से देख रहा था सहसा उस प्रकाश भरे

काँच के अन्दर मुझे विचित्र दृश्य दिखलाई पड़ने लगे। घोर आश्चर्य हुआ मुझे। निश्चय ही वे दृश्य विस्मयकारक थे। वे इस संसार के दृश्य कदापि नहीं थे। सब कुछ अनोखा था। सब कुछ विचित्र और मन को उद्भासित करने वाला था। उसी सन्दूक में खोजने पर मुझे चाँदी और ताँबे के १ फुट लम्बे और आधे फुट चौड़े सैकड़ों पत्र मिले। जिस पर संस्कृत भाषा में तंत्रशास्त्र संबंधी प्राचीन विवरण थे। उसकी पृष्ठभूमि में मुझे तथाकथित महान तांत्रिक की महाकाव्य साधना और परिश्रम की झलक मिलती थी। दूसरे सन्दूक में भी मुझे सैकड़ों की संख्या में वैसे ही पत्र मिले। मगर वे पत्र सुवर्ण के थे। वह सभी योग तांत्रिक विषयों की गम्भीरता और प्रखरता को अपने आप में छिपाये हुए थे। समय का उन पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा था। वे बिल्कुल स्वच्छ थे। लगभग एक घण्टे के अन्दर मैंने कुछ पत्र पढ़ भी लिये। उसी समय मेरे मन में यह इच्छा जागृत हुई कि क्यों न इन पत्रों को संसार के प्रकाश में लाया जाय। यह भाव आते ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह कार्य अच्छा नहीं है। न जाने क्यों और कैसे, किस प्रेरणा से यह विचार आया मेरे मन में। कुछ बतला नहीं सकता मैं। मैं उसी प्रकार उस सुरंग के बाहर निकल आया। सम्पूर्ण रहस्य, रहस्य ही बना रह गया मेरे लिये। सबसे ज्यादा मुझे कल्पना कौन थी, अर्पणा कौन थी, और कंकाल किसका था, इन प्रश्नों ने परेशान किया।

लगभग एक हफ्ता बाद मैं बनारस लौट आया। मगर वे तमाम प्रश्न मुझे बराबर परेशान करते रहे। कोई उत्तर, कोई समाधान मुझे नहीं मिल रहा था। उस विषय में मैंने किसी से चर्चा भी नहीं की। सुनता भी कौन, किसको विश्वास होता मेरी बातों पर।

लगभग एक वर्ष बाद।

प्राचीन ग्रन्थों के संग्रह करने के प्रयास में मुझे अपने परिवार के किसी व्यक्ति द्वारा लिखित प्राचीन तांत्रिक विषय की पाण्डुलिपि सहसा मिली।

उस पाण्डुलिपि में एक ऐसी साधना का प्रसंग था जिसका काफी अंश गुफा में मिले ताम्रपत्रों के विषय से मिल रहा था। वह विषय था “दिव्यौषध पथ” की साधना। तंत्र-मार्ग की यह अत्यन्त जटिल और दुरूह साधना मानी जाती है। मगर उस पाण्डुलिपि में उसको काफी सरलता से समझाया ही नहीं गया था वरन् उसकी सिद्धि से अनेक दुर्लभ वस्तुओं की जानकारी, अन्धकार में छिपे अतीत के और भविष्य का विधिवत ज्ञान और अनेक सूक्ष्म लोकों की गतिविधियों के अनुभव के विषय में भी बतलाया गया था।

निश्चय ही वह अपूर्व और अलौकिक शक्तिसम्पन्न सिद्धि थी। लोभ संवरण न कर सका मैं। उस सिद्धि को प्राप्त करने का निश्चय कर लिया मैंने।

एक प्रकार से यह कहानी यहीं समाप्त हो जाती है। मगर तथाकथित तांत्रिक के इतिहास पर सम्पूर्ण रूप से प्रकाश तब पड़ा और उस गुफा में मिले कंकाल के संबंध में पूर्ण जानकारी तब मिली और कल्पना कौन थी, इसका उत्तर उस समय मिला जब कि मैं उस साधना को पूर्ण करने के प्रयत्न में था। तो क्या मेरी साधना

पूर्ण हुई ?

यदि मुझे किंचित भी यह ज्ञान होता कि वह साधना और सिद्धि मेरे जीवन का अभिशाप बन जाएगी तो मैं कदापि उसके चक्कर में न पड़ता। आप विश्वास करें या न करें, मगर है यह सत्य कि मेरा जीवन आप लोगों की तरह नहीं है। मैं स्वतंत्र और उन्मुक्त विचरण कर सकने में सर्वथा असमर्थ हूँ।



[The following text is extremely faint and illegible, appearing to be bleed-through from the reverse side of the page. It contains several paragraphs of text in Hindi.]

वह रहस्यमय तांत्रिक संन्यासी

अमावस्या की काली रात।

महानिशा की बेला।

निर्जन इलाका, उजाड़, बीहड़, धूसर। चारों तरफ निस्तब्धता छाई थी। बादलों से अट कर आकाश काला पड़ गया था। गहन निःश्वास जैसी हाहाकार करती हवा नदी के तट की झाड़ियों और झुरमुटों को कँपा-सी दे रही थी। सहसा श्यामल आकाश का बदन जलाती बिजली चमक उठी। सारा विस्तार एक क्षण के लिये प्रखर आलोक से उद्भासित हो गया। उसी क्षणिक प्रकाश में मैंने देखा—वह तांत्रिक संन्यासी अभी भी शव के ऊपर आसन लगा कर बैठा एकाग्रचित्त मंत्र का जाप कर रहा है। शव एक युवक का था, जिसे कुछ समय पूर्व उसके सगे-संबंधी नदी में प्रवाहित करके चले गये थे, किन्तु वह पशु-पक्षियों का आहार न बनकर एक भयंकर तांत्रिक संन्यासी की साधना का आसन बन गया था। शव का सिर पीछे की ओर लटका हुआ था। उसकी आँखें फैली हुयी थीं, मुँह भी थोड़ा सा खुला हुआ था। शरीर एकदम नग्न था, क्योंकि तांत्रिक संन्यासी ने उसका कफन उतार कर अपनी कमर में लपेट लिया था।

सहसा श्मशान के पीपल के पेड़ पर चोंच रगड़ता कोई पक्षी कर्कश स्वर में चीख उठा। तांत्रिक संन्यासी का संकेत पाकर मैंने तुरन्त घी का दीप जलाया और उसे शव के सिरहाने रख दिया। फिर मुर्गे का मांस, शराब की भरी बोतल और खोपड़ी भी सामने रख दी।

तांत्रिक संन्यासी ने थोड़ा-सा मांस खाया फिर खोपड़ी में उड़ेल कर थोड़ी-सी शराब पी। इसके बाद शेष मांस और शराब शव के खुले मुँह में डाल दिया।

दूसरे ही क्षण शव का सारा शरीर जोर-जोर से हिलने लगा अपने स्थान पर। मेरा मन भयमिश्रित विस्मय से भर उठा। ऐसा लगा मानों शव अब किसी भी क्षण उठ कर बैठ जायेगा।

मेरा अनुमान सत्य निकला। तांत्रिक संन्यासी को पीछे ढकेल कर सहसा वह शव उठ कर इस प्रकार बैठ गया मानों वह भी जीवित प्राणी हो।

वास्तव में वह जीवित ही लग रहा था उस समय। उसके चेहरे पर एक विचित्र-सी शान्ति और तेजोमयी दिव्य आभा थी। वह अपलक उस तांत्रिक संन्यासी की ओर निहार रहा था।

उस निविड़ गीली स्याह रात में शव की यह विचित्र स्थिति और उसका रूप देख कर मेरी चेतना जैसे लुप्त होने लगी। धीरे-धीरे दीपक का मन्द प्रकाश वर्तुलाकार होकर बैठे हुए शव के समीप सिमटने लगा।

सहसा शव अपने स्थान पर लुप्त हो गया। अब केवल सिमटा हुआ वर्तुलाकार

प्रकाश भर रह गया था वहाँ। लगभग पन्द्रह-बीस मिनट बाद उसी वर्तुलाकार प्रकाश की सीमा में सहसा एक अति सुन्दर नारी प्रकट हो गयी। उसकी उम्र अठारह-बीस वर्ष से अधिक नहीं थी। शरीर का रंग एकदम बर्फ जैसा। तन पर पीले रंग की रेशमी साड़ी लिपटी हुई थी। शैवाल से लहराते काले केश नितंबों तक छितराए हुए थे। बड़ी ही बाँकी छवि थी उस युवती की। उद्दाम यौवन से तरंगित वैसी देह-यष्टि की कल्पना शायद किसी कवि ने भी नहीं की होगी।

“कविता !” तांत्रिक संन्यासी ने हौले से पुकारा।

अपना नाम सुनकर युवती हँस पड़ी। बड़ी मधुर हँसी थी उसकी। फिर बोली—
“मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। अभी और कब तक करायेँगे प्रतीक्षा?” “बस थोड़े दिन और रह गये हैं, कविता ! बहुत जल्दी आ रहा हूँ तुम्हारे पास।”

फिर उस तांत्रिक संन्यासी और युवती में क्या बातें हुईं मैं समझ नहीं सका। हाँ, अन्त में तांत्रिक संन्यासी की रुदन-भरी आवाज अवश्य सुनाई दी मुझे। शायद युवती का विछोह सहन नहीं कर पा रहा था वह। किसी दारुण व्यथा से उसके स्वर काँप रहे थे।

सहसा उस वर्तुलाकार प्रकाश की परिधि से युवती भी लुप्त हो गयी और उसके स्थान पर धीरे-धीरे एक दूसरा दृश्य उभरने लगा—

मैंने देखा—सामने एक हरा-भरा मैदान था। मैदान के एक ओर जंगल और पहाड़ थे। दूसरी ओर रंग-बिरंगे जंगली फूलों और फलों के वृक्ष थे। उन्हीं वृक्षों की ओट में मुझे एक महल दिखलाई पड़ा। वह सफेद पारदर्शी पत्थरों से बना हुआ था। वातावरण में विचित्र-सी शान्ति और निस्तब्धता थी।

धीरे-धीरे वह पूरा महल मेरे सामने आ गया, भीतर काफी लम्बा-चौड़ा सभा-मण्डप था, जिसके तीन ओर दालान थे और एक ओर मन्दिर था। चारों ओर शुभ्र प्रकाश फैला हुआ था। सभा-मण्डप और दालानों में बहुत सारी नवयुवतियाँ इधर-उधर घूम रही थीं। उन सब की उम्र, रंग-रूप और वस्त्र-विन्यास एक जैसे ही थे। कहीं कोई वैषम्य नहीं था। मुझे लगा मानों वे युवतियाँ इस धरती की नहीं थीं। उनकी आँखें बड़ी-बड़ी और गोल थीं। नाक नुकीली और मस्तक चौड़ा था। घनी केशराशि घुटनों तक बिखरी हुई थी। सब गले में दिव्य आभूषण पहने हुए थीं। उभरे हुए गठीले वक्ष वस्त्रहीन थे। केवल कमर में लुंगी की तरह लाल रेशमी वस्त्र लिपटा हुआ था। कोई किसी से कुछ बोल नहीं रही थी।

धीरे-धीरे शुभ्र प्रकाश में कुहासा जैसा धुन्ध छाने लगा। फिर वह धुन्ध काफी घना हो गया। इसके बाद सहसा मन्दिर वाला भाग मेरे सामने आ गया।

मैं सब कुछ उसी प्रकार देख रहा था जैसे पदों पर फिल्म दिखाई पड़ती है।

मन्दिर काफी लम्बा-चौड़ा था। बीच में अष्टभुजी काली की एक आदमकद पाषाण-प्रतिमा स्थापित थी, जिसके गले में वास्तविक नर-मुण्डों की माला पड़ी थी। प्रतिमा का एक पैर स्त्री की तथा दूसरा पैर पुरुष की छाती पर स्थित था। मुझे बड़ी विलक्षण और सजीव लगी वह प्रतिमा।

उस विकराल भयंकर प्रतिमा के पास ही एक बड़ा-सा हवन-कुण्ड था, जिसके चारों ओर बैठे हुए भयानक रूप-रंग वाले चार पुरुषों के होंठ इस तरह हिल रहे थे, जैसे वे कोई मंत्र पढ़ रहे हों। बीच-बीच में वे हवन-कुण्ड में आहुति भी छोड़ते जा रहे थे। हवन-कुण्ड के निकट ही एक लम्बा-चौड़ा पुराने ढंग का खड्ग रखा था और उस खड्ग के पास ही आसन पर चार-पाँच वर्ष का एक बच्चा लेटा हुआ था, जिसके बायीं ओर भैसे की खोपड़ी में दीपक जल रहा था।

सभामण्डप में टहलती अर्धनग्न युवतियाँ धीरे-धीरे एक-एक करके मन्दिर में आ गयीं और उन्मत्त होकर नृत्य करने लगीं। लगता था जैसे सब ने छक कर मदिरा पी रखी हो। उनके मुख तमतमाहट के कारण लाल हो रहे थे।

एकाएक मुझे जैसे होश आया। बाप रे! यह तो कापालिकों का बलि देने का ढंग है। निश्चय ही अपनी किसी स्वार्थ-सिद्धि के लिये ये लोग इस बच्चे की बलि देंगे।

मेरा सारा शरीर एकाएक सिहर उठा।

एक व्यक्ति सहसा उठ कर खड़ा हो गया। उसके हाथ में वही भयंकर खड्ग लपलपा रहा था। उससे उसने बच्चे का सिर छुआ। बच्चे ने आँखे खोलें दीं और भय-विस्फारित दृष्टि से उस खड्गधारी व्यक्ति की ओर ताकने लगा।

ताँबिया रंग के उस व्यक्ति की लाल-लाल आँखें खिंची हुई थीं। नाक तिरछी थी। गालों की हड्डियाँ उभरी हुई थीं। मुख पर ऐसा भाव था मानों उसे अपनी शक्ति का बड़ा अभिमान हो। उस बच्चे के सामने खड़े होकर उसने अपने हाथ का खड्ग हवा में तान लिया।

उसी समय मेरे मुँह से एकबारगी चीख निकल गयी—“खून ...खून!”

दूसरे ही क्षण मैं चिल्लाता, ठोकरें खाता, जमीन पर गिरता और फिर सँभल कर उठता हुआ भागा, पर श्मशान के पीपल के पास ही चेतनाशून्य होकर गिर पड़ा।

और जब फिर चेतना लौटी तो सबेरा हो चुका था। एक व्यक्ति मेरे ऊपर झुका हुआ मेरे मुँह पर पानी के छीटे डाल रहा था। वह शायद अपने संबंधियों के साथ कोई शव जलाने के लिये श्मशान में आया था।

चेतना लौटते ही मैंने उस व्यक्ति से पूछा—“वह तांत्रिक संन्यासी कहाँ गया?”

“यहाँ तो कोई साधु-संन्यासी नहीं है बाबू जी! हाँ! एक मुर्दा जरूर घाट की ओर पड़ा है।”

आखिर वह तांत्रिक संन्यासी कहाँ गया ?

मैं दौड़ता हुआ-सा कालभैरव के मन्दिर में पहुँचा तो देखा कि पुजारी जी मेरे लिये व्याकुल हो रहे थे। मुझे देखते ही वह बोल पड़े—“शर्माजी! कहाँ थे आप? कल से ही मैं आपको खोज रहा हूँ। बिना बतलाये चले गये आप ...। यह बड़ा बीहड़ इलाका है। पग-पग पर जंगली जानवरों का खतरा बना रहता है। मैंने समझा कहीं—

उनका वाक्य पूरा होता, उसके पहले ही मैं बोल पड़ा “मैं उस तांत्रिक संन्यासी

के साथ नदी की ओर चला गया था।”

इसके अलावा पुजारी जी को और कुछ बतलाना उचित नहीं समझा मैंने।

लेकिन पुजारी जी ने आश्चर्य से मेरी ओर देखा, फिर निकट आकर पूछने लगे—
“किस तांत्रिक संन्यासी के साथ गये थे ?”

“अरे ! आप भवानन्द अवधूत को नहीं जानते ? वही जो पहले इसी मन्दिर में रहते थे। इधर उनसे मेरी घनिष्ठता हो गयी थी। वे प्रायः रोज ही दोपहर के समय मुझसे मिलने आया करते थे।”

मेरी बात सुनकर पुजारी जी एकदम चौंक पड़े। उनके चेहरे पर आतंक और विस्मय का मिला-जुला भाव फैल गया। कुछ क्षण तक वह मेरी ओर इस प्रकार देखते रहे, जैसे मेरी बातों पर विश्वास ही नहीं हो रहा हो। आखिर पूछ ही बैठे—“आपने जो कुछ कहा, वह सत्य है, शर्मा जी ? आपने जो कुछ देखा और अनुभव किया वह सब उस तांत्रिक संन्यासी की अतृप्त आत्मा की लीला थी। भवानन्द अवधूत की आत्मा तीस वर्षों से इस इलाके में भटक रही है। हे भगवान ! उसे कब शांति मिलेगी और कब उसका उद्धार होगा ?”

पुजारी जी खड़ाऊँ पहनकर खट्-खट् करते मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ़ कर भीतर चले गये।

मैं लड़खड़ाता-सा अपने कमरे में पहुँचा। बिस्तर पर तकिया के नीचे टटोल कर देखा लिफाफा ज्यों-का-त्यों पड़ा था। सचमुच मेरे सामने एक अविश्वसनीय सत्य था। एक चमत्कारपूर्ण सत्य, जिसके साक्षी थे सौ-सौ के दस नोट। उन नोटों को उसी तांत्रिक संन्यासी भवानन्द अवधूत ने दिया था और बड़ी विनम्रता से कहा था—
“मेरी आत्मा की शान्ति के लिये, मेरी आत्मा के कल्याण के लिये, मेरी आत्मा के उद्धार के लिये इन रुपयों से आप काशी में साधु-संन्यासियों को भोजन करा दीजियेगा।”

मेरे जीवन की इस विलक्षण चमत्कारपूर्ण अनुभव-कथा की शुरुआत लगभग पैंतीस वर्ष पूर्व होती है, जब मैं योगाभ्यास के लिये किसी उपयुक्त एकान्त स्थान की खोज में था। एक दिन दशाश्वमेध घाट पर मेरे एक पुराने तांत्रिक मित्र मिल गये। नाम था तारानाथ भट्टाचार्य। वह काली के भक्त थे। अपनी साधना के लिये उन्होंने कई दुर्गम स्थानों की यात्रा की थी।

मैंने उनसे अपने मन की बात कही।

तुरन्त मेरी समस्या हल हो गई। उन्होंने मुझे बतलाया कि ढाका जिले में पद्मा नदी के समीप कालभैरव का एक मन्दिर है। मन्दिर के पुजारी उनके परिचित थे। जंगली फूलों, फलों के वृक्षों और पहाड़ों से घिरा वह स्थान बड़ा सुरम्य और शान्त वातावरण था। योगाभ्यास के लिये निश्चय ही वह उत्तम स्थान है। भट्टाचार्य महाशय स्वयं कुछ दिनों तक वहाँ रह चुके थे।

पुजारी के नाम उन्होंने एक पत्र भी लिख दिया। एक सप्ताह बाद ही मैं ढाका के लिए रवाना हो गया। वहाँ कालभैरव का मन्दिर खोजने में परेशानी नहीं हुई। पद्मा

के तट से ऊपर लगभग फर्लांग ही दूर था वह मन्दिर। पुजारी जी बंगदेशीय थे। सज्जन, विनम्र और सहृदय। उन्होंने तुरन्त ही कालभैरव मन्दिर से सटे एक कमरे में मेरे ठहरने की उचित व्यवस्था कर दी।

भट्टाचार्य महाशय ने स्थान के बारे में जो कुछ बतलाया था मुझे उनसे कहीं अधिक शान्त और रमणीक लगा वह। मीलों तक कोई गाँव नहीं था, कोई आबादी नहीं थी। एक ओर घने जंगलों का सिलसिला और दूसरी ओर छोटी-छोटी पहाड़ियों की श्रृंखला। बीच में कल-कल निनाद करती पद्मा की शुभ्रधारा। कालभैरव का मन्दिर अति प्राचीन था। उसके ठीक सामने एक फर्लांग दूर पद्मा नदी के तट पर श्मशान घाट था, जिसके एक ओर पक्का घाट था और दूसरी ओर यमराज का छोटा-सा मन्दिर था। मन्दिर के पीछे पत्थर का एक लम्बा-चौड़ा चबूतरा था, जिसके समीप गूलर और पीपल के वृक्ष थे।

कभी-कदा साँझ के समय मैं उसी चबूतरे पर जाकर बैठ जाता था। गूलर और पीपल की छाया में बड़ी शान्ति मिलती मुझे। पीपल की डालों पर बँधे यमघंटों को देख कर जीवन जगत की निस्सारता पर घंटों विचार करता रहता मैं।

एक दिन मैं ऐसे ही विचारों में डूबा हुआ था। साँझ की स्याह चादर धीरे-धीरे फैलती जा रही थी श्मशान-भूमि पर। सहसा विचार-भंग हुआ। आँखें ऊपर उठीं, देखा तो सामने काषाय वस्त्रों में लिपटा एक व्यक्ति खड़ा मेरी ही ओर अपलक देख रहा था।

साँझ के धुँधलके में पहले तो उसका रूप बड़ा अस्पष्ट लगा मुझको, पर जरा ध्यान से देखने पर आकृति एकदम स्पष्ट हो गयी। लम्बा-दुबला, जीर्ण-शीर्ण-सा शरीर, तीखी नाक, भावहीन-सी विस्फारित आँखें, कोरों पर गहरी स्याही, विवर्ण रक्तहीन-सा मुख। न जाने कैसी दृष्टि से देख रहा था वह व्यक्ति। मुझे थोड़ा डर-सा लगा।

वह बड़ी देर तक मानों दुविधा-भरी आँखों से मेरी ओर ताकता रहा, फिर क्षीण हँसी हँस कर बोला, “घबराइये मत। मैं तांत्रिक संन्यासी भवानन्द अवधूत हूँ। इस स्थान से मेरा बहुत लगाव है, इसलिये टहलता हुआ इधर चला आता हूँ कभी-कभी।” फिर थोड़ा आत्मस्थ होकर उसने पूछा, “आप काशी से आये हैं न ?

“जी हाँ ?”

तांत्रिक संन्यासी ने मेरा उत्तर सुनकर जोर से साँस छोड़ी। उसके विवर्ण मुख की ओर ताक कर मैंने कहा—“आप कहाँ रहते हैं ?”

वह हँसा—“आपने देखा नहीं, यह पूरा इलाका निर्जन है। यहाँ कोई नहीं रहता। केवल मैं हूँ, केवल मैं।”

मुझे विस्मय हुआ। यह पागल-वागल तो नहीं है। वह शायद मेरे मनोभाव को समझ गया। कौतुक-भरे स्वर में बोला—“आप मुझे सनकी समझ रहे हैं क्या ? मैं पहले इस कालभैरव-मन्दिर में ही रहता था जिस कमरे में इस समय आप हैं। उसी कमरे में मैं रहता था। इस कमरे में मैंने जीवन के तीस वर्ष व्यतीत किये हैं।”

मुझे आश्चर्य हुआ। मैं काशी से आया हूँ, कालभैरव के मन्दिर में रहता हूँ,

यह सब कैसे जान गया यह तांत्रिक संन्यासी ? मैंने भयभीत दृष्टि से उसकी ओर देखा। वह एकटक बिना पलक झपकाये मेरी ओर देख रहा था। जीर्ण, क्लान्त मुख, पर उसकी दृष्टि में अजीब-सा सम्मोहन भरा हुआ था जैसे।

इसके बाद उस तांत्रिक संन्यासी से प्रायः भेंट होने लगी। कभी उसी चबूतरे पर, तो कभी कालभैरव के मन्दिर में। हाँ, वह मन्दिर में उसी समय आया करता, जब पुजारी कहीं बाहर गये रहते।

उसकी उपस्थिति मुझे बड़ी अनोखी लगती। कभी-कभी उसके बात करने और हँसने का ढंग भी बड़ा विचित्र लगता मुझे। एक दिन वह दोपहर के समय मेरे कमरे में आया। मैंने उसकी ओर देखा। अजीब-सी वेदना थी उसके मुख पर। सूनी-सूनी आँखों में दुःख की छाया तैर रही थी। आते ही बुझे हुए स्वर में कहने लगा—“आप मेरे बारे में जानने-समझने के लिये शुरू से ही व्याकुल हैं ना। आज मैं अपने विषय में सब कुछ बतलाने के लिये ही आया हूँ आपके पास। अधिक समय नहीं लगेगा इसमें। बड़ी अनोखी विचित्र कथा है मेरे जीवन की। आपको निश्चय ही यह बड़ी विस्मयजनक और रहस्यमय लगेगी।”

सहसा उसकी आँखें मशाल की तरह दप् से जल उठीं, फिर देखते-ही-देखते बुझ गयीं। फिर उसने जो व्यथा-भरी कथा सुनायी, वह निश्चय ही अलौकिक थी।

उसने कहना शुरू किया—“मेरे माता-पिता कौन थे, यह मैं नहीं जानता। मैं कहाँ का रहने वाला हूँ यह भी नहीं जानता। जब मैंने होश सम्हाला तो अपने को साधु-संन्यासियों की टोली में पाया। उन्हीं की छत्र-छाया में पल-पुस कर बड़ा हुआ। अट्ठारह वर्ष की उम्र तक उसी टोली में रहा। उसके बाद जीवन के छः वर्ष एक नेपाली बौद्ध तांत्रिक के साथ बीता। ये छः वर्ष मेरे जीवन के विचित्र अध्याय थे। इस अवधि में मेरे जीवन की दिशा ही बदल गयी। उस बौद्ध तांत्रिक ने मुझे तंत्र-मंत्र की बहुत सारी गुप्त विधायें बतलायीं। उनकी सिद्धि-साधना करायी। ज्योतिष के भी अनेक रहस्य बतलाये। तंत्र-मंत्र-ज्योतिष में पारंगत हो गया मैं। फिर उस बौद्ध तांत्रिक ने मुझे अपने गुरु से मिलवाया। वे कापालिक अघोरी थे। उनका नाम था सत्यानन्द अवधूत। वे मुझे अपना शिष्य बना कर अपने साथ तिब्बत ले गये।

“मैं उनके मठ में रह कर साधना करने लगा। वह मठ अलौकिक शक्तियों का केन्द्र था। उसका संबंध अनेक रहस्यमय लोक-लोकान्तरों से था। साधारण लोग वहाँ पहुँच ही नहीं सकते। मठ की भौगोलिक स्थिति भी नहीं बतलायी जा सकती। उस मठ में अनेक साधक थे, जिनकी आयु सौ वर्ष से कम नहीं थी, किन्तु सभी युवक जैसे थे। उनकी साधना में सहायता करने के लिये उच्च कोटि की आत्माएँ भैरवी के रूप में सशरीर आती थीं वहाँ। उनके रूप और सौन्दर्य की कल्पना मनुष्य नहीं कर सकता।

“तांत्रिक साधना में भैरवी का स्थान काफी महत्वपूर्ण है। बिना भैरवी के कुछ भी नहीं हो सकता। मेरे गुरु ने मेरे लिये भी एक भैरवी की व्यवस्था कर दी, किन्तु मैं यह भूल गया कि भैरवी तो मेरी साधना में सहयोगिनी है, वह एक ऐसी अमानवीय

सत्ता है, जो मानव-शरीर के बंधन में कभी नहीं बँध पाती। मैं यह भी भूल गया कि मठ के प्रबल आकर्षण के वशीभूत होकर यह भैरवी अपनी प्रबल मानवेतर इच्छा-शक्ति के बल पर स्थूल नारी रूप में अवतरित हुई है। इसकी पार्थिव काया मनुष्य की नहीं, बल्कि इसी की इच्छा-शक्ति की देन है।”

पल भर रुक कर भवानन्द अवधूत ने फिर कहना शुरू किया—“मैं उस भैरवी पर मुग्ध हो गया। उसको अनुपम मोहक रूप-छटा मेरे मन में बस गयी। वह अति लावण्यमयी थी। उसकी हँसी अनुपम थी—मीठी, मधुर, स्निग्ध और मन को लुभाने वाली। उसके प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता ही गया। अन्त में प्रेम का रूप धारण कर लिया उसने।

मानव जगत और जीवन में भी भारी आकर्षण है। शायद उसी आकर्षण के व्यामोह में पड़ कर भैरवी भी मुझ पर मुग्ध हो गयी और अन्त तक वह भी मुझसे प्रेम करने लगी। हम दोनों का प्रेम आत्मा का प्रेम था। ऐसी आत्मा का प्रेम, जिसे भौतिक धरातल पर नहीं लाया जा सकता, जिसकी पार्थिव कल्पना भी नहीं की जा सकती।

मैं चार वर्ष उस मठ में रहा और उन चार वर्षों में मैं अनेक दुर्लभ विद्याओं में पूर्ण पारंगत हो गया। जब मैं मठ से चलने लगा, तब एक ओर तो मुझे इन उपलब्धियों से प्रसन्नता थी, दूसरी ओर भैरवी के वियोग की पीड़ा भी थी, प्रस्थान के क्षणों में वह मेरे निकट आयी। मेरी आँखों में आँसू थे, किन्तु वह मुस्करा रही थी। उसने कहा—“घबराओ मत। दुखी होने की भी आवश्यकता नहीं है। अगोचर रूप में मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ। जीवन-यात्रा में सदैव मेरी सहायता और सहयोग मिलता रहेगा तुमको।

“तांत्रिक साधना में इसी को भैरवी-सिद्धि कहते हैं। मुझे भैरवी सिद्ध हो गयी थी। मैंने उसकी सहायता से यश, कीर्ति, प्रतिष्ठा, धन, ऐश्वर्य—सब कुछ चरम सीमा तक प्राप्त किया और उनका उपभोग भी किया, किन्तु अपने चरित्र की रक्षा मैं बराबर करता रहा, क्योंकि योगी और साधकों के लिये एकमात्र चरित्र ही बल है। मेरी अदृश्य सहयोगिनी ने भी कहा था—“जिस दिन तुम अपने चरित्र-बल को गँवा दोगे, उसी दिन मुझे भी खो बैठोगे हमेशा के लिये।”

“सहसा मेरे जीवन में एक अकल्पनीय घटना घट गयी। लोगों का भविष्य जानने वाला मैं स्वयं अपना भविष्य नहीं जान सका। इसी को कहते हैं नियति। उसने मेरी जीवन की अमृतमयी धारा में सहसा ही विष घोल दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि मैं सब कुछ त्याग कर संन्यास ले बैठा।”

कहते-कहते तांत्रिक संन्यासी भवानन्द अवधूत की आँखें आग की तरह जलने लगीं। मुँह लाल हो गया। कुछ देर मौन रह कर उसने जैसे एक अमानवीय चेष्टा से अपने को सँभाल लिया, फिर कहने लगा—“चलिये, शेष कथा पद्म के किनारे बैठ कर सुनाऊँगा।”

दुपहरी ढक चुकी थी। पुजारी के आने का भी समय हो गया था। रास्ते में हम दोनों मौन रहे। जब नदी के किनारे पहुँचे तो वहाँ श्मशान में कोई चिता जल रही

थी। तांत्रिक संन्यासी भवानन्द अवधूत काफी देर तक निहारता रहा जलती चिता की ओर, फिर एकाएक आगे की कथा शुरू कर दी उसने। कहने लगा—“मैं उन दिनों कलकत्ता में था। नित्य की तरह अपना-अपना भविष्य जानने के लिये लोगों की भीड़ लगी हुई थी। उसी भीड़ में एक वृद्ध भी अपनी युवती कन्या के साथ बैठा था। जब उसकी बारी आयी तो मैंने पूछा—“कहिये महाशय, क्या पूछना है आपको ?”

“वृद्ध ने एक बार चारों तरफ देखा, फिर बोला—“बस मैं आपको इसलिये कष्ट देने आया हूँ कि मेरी इस लड़की के भाग्य में क्या लिखा है, जरा अच्छी तरह देख कर बतला दें। आपका जो भी शुल्क होगा, मैं दूँगा।”

“उसने लड़की को मेरे निकट आने का संकेत किया। लड़की खिसक कर मेरे बिल्कुल निकट आ गयी और सोने की चूड़ियों से भरा अपना एक कोमल हाथ निःसंकोच मेरी ओर बढ़ा दिया उसने।

“मैंने पूछा—“क्या नाम है आपकी लड़की का ?”

“वृद्ध के बजाय लड़की ने ही उत्तर दिया—“मेरा नाम कविता है।” नाम सुनकर मैंने सहज भाव से उसकी ओर देखा। निश्चय ही वह किसी कवि की कल्पनामयी कविता जैसी थी। मैंने कविता की गुलाब के फूल जैसी कोमल कलाई को चुपचाप पकड़ लिया। कब तक पकड़े रहा, मालूम नहीं। फिर उसे छोड़ता हुआ बोला, “मैं हाथ नहीं, मुख देख कर बतलाता हूँ।

“फिर मैंने अपनी दृष्टि कविता के चाँद जैसे मुख पर टिका दी। मिनट-पर-मिनट, घंटे-पर-घंटे कब निकलते गये, कमरे में बैठे हम तीन मूक प्राणियों को पता ही नहीं चला।

“सहसा कविता के मुख पर अन्त में जो दृश्य उभरा उसको देख कर मैं एकदम विचलित हो उठा—हे भगवान ! मैंने यह क्या देखा ? अमंगल ! भयानक अमंगल के लक्षण। मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि कविता जैसी सुन्दरी, सरल और पवित्र लड़की का भविष्य इतना अन्धकारमय है। उसका भावी जीवन अपने आप में इतना मर्मन्तिक क्लेश और अमंगल लपेटे हुए है।

“कविता के वृद्ध पिता ने शायद मेरे मुख के भावों को पढ़ लिया। अनिश्चय से काँपते स्वर में उन्होंने पूछा—“महाशय ! आपने मेरी कविता के चेहरे पर क्या-क्या देखा ?

“मगर मैं सत्य बात न बतला सका। बताने से केवल जिह्वा ने ही अस्वीकार नहीं किया, बल्कि मन और आत्मा ने भी बाधा दी। मैंने उल्टी बात बतलायी। मुख पर यथासम्भव प्रसन्नता लाते हुए कहा—“ठीक ही देखा है। आपकी कविता का भावी जीवन मंगलमय है। दुख की कोई भी छाया स्पर्श नहीं कर सकेगी, अगर ...”

“उत्सुकतापूर्वक वृद्ध बीच ही में पूछ बैठा, “अगर क्या ?”

“मैंने कविता के सुन्दर मुख की ओर देखा। उसकी कजरारी आँखों में चमक थी। जवाकुसुम जैसे गालों पर लावण्य के कण बिखरे थे। देख कर मेरा हृदय एक अजीब करुणा से भर उठा। मैंने शब्दों में ममता उड़ेलते हुए कहा—“अगर कोई इसको

भरपूर चाह सके, भरपूर प्रेम कर सके और प्रेम सहित जीवन भर निर्वाह कर सके और प्रतिदान के रूप में कविता भी उससे उतना ही प्रेम कर सके।”

कविता के मुख पर प्रसन्नता छा गयी और लाल हो आए मुख को आँचल से पोंछने लगी। क्यों पोंछने लगी, वही जाने।

“मैं पिता-पुत्री को दरवाजे तक पहुँचाने गया। बीच में एक बार पलट कर कविता ने भरपूर दृष्टि से मेरी ओर देखा और मुस्करा दी।

“न जाने क्यों मैं हौले से पूछ बैठा—“मैं तांत्रिक हूँ। आपको मुझसे भय तो नहीं लग रहा है ना”

“मुस्करा कर कविता ने उत्तर दिया—“नहीं। अब नहीं लग रहा है।”

“मैंने फिर पूछा—“कब से ?”

“कुछ क्षण मौन रह कर अस्फुट स्वर में कविता ने कहा—“जब से आपने मेरा हाथ पकड़ा है।” फिर वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। बड़ी मोहक हंसी थी।

“मैं मानो अधा-सा गया, फिर कविता के इस मधुर शब्द को हृदय में सँजोये अपने कमरे में वापस आ गया। कलकत्ता में मैं चार-पाँच महीने रहा। कविता प्रायः रोजाना मेरे यहाँ आने लगी। वह मेरा काफी ख्याल रखती थी। हम दोनों एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते चले गये। मैं कविता से प्रेम करने लगा। एक दिन कौन ऐसा क्षण था, कौन ऐसा संयोग था कि सहसा मैंने कविता को आलिंगन में ले लिया और उसके पतले रक्तिम ओठों पर अपना ओंठ रख दिया। उसने विरोध नहीं किया, फिर न जाने कब मैं अपना आपा खो बैठा। दूसरे ही क्षण एक दूसरे के मन-प्राण-शरीर एकाकार हो गये। अब तक मुझे अशरीरी नारी का प्रेम मिला था, किन्तु उस समय मुझे मन-प्राण-आत्मा के सुख के साथ-साथ नारी-शरीर का भी सुख मिला, जिसकी अनुभूति में मैं खो-सा गया।

“एक दिन कविता ने बतलाया कि रात में उसे भय लगता है। जैसे कोई चुपचाप उसके आस-पास घूम रहा है। उसके साँस लेने की हवा तक कविता के शरीर को छूती है। कभी-कभी वातावरण में कोई विचित्र-सी गन्ध फैल जाती है। तब वह पूरी रात सो नहीं पाती।

“मुझे समझते देर न लगी। वह भैरवी की छाया थी। मुझे सहसा उसके शब्द याद हो आये—जिस दिन अपने चरित्र को गँवा बैठोगे, उसी दिन मैं भी तुम्हारा साथ छोड़ दूँगी हमेशा-हमेशा के लिये।

“मैं भैरवी को गँवाना नहीं चाहता था। वह मेरी बहुत बड़ी अमानवीय शक्ति थी। उसी के बल पर तो मैंने इतना सब प्राप्त किया। किसी भी मूल्य पर मैं उसको अपने आपसे अलग नहीं होने देना चाहता था।

“मैंने कविता के सामने दूसरे ही दिन विवाह का प्रस्ताव रख दिया। ऐसा लगा मानों इसके लिये वह पहले से ही तैयार थी। उसने तुरन्त मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। कविता के पिता ने भी किसी प्रकार की बाधा नहीं दी। आखिर उसी महीने की पूर्णिमा को हम दोनों विवाह के बंधन में बँध गये।

“जीवन अचानक इस मोड़ पर घूम जायेगा, मैं क्या जानता था ? मैंने क्या यह सोचा था कि इस संसार में जिसका अपना कोई नहीं है, उसी का इस नगर में सबसे अधिक अपना कोई हो जायेगा।

“मैं कविता को लेकर ढाका आ गया। स्थायी रूप से ढाका में ही रहने का विचार कर लिया मैंने। बड़े सुख से जीवन व्यतीत हो रहा था। विवाह करके चरित्र को बचा लिया था मैंने। इससे भैरवी मेरे हाथ से निकल तो न सकी, फिर भी उसकी शक्ति मेरे लिये अवश्य कम हो गयी। मधुर कोमल संबंध में भी थोड़ा अन्तर आ गया था। मगर मैंने कविता के प्रेम के सामने इसकी विशेष चिन्ता नहीं की।

“ठीक उसी समय योगेश्वर तांत्रिक से मेरी भेंट हुई। वह नेपाली तांत्रिक का शिष्य था। जब मैं नेपाल में था, उसी समय योगेश्वर तांत्रिक से परिचय हुआ था। वह मुझे गुरुभाई कहता था। अब मिला तो मैंने उसे अपने घर आने का निमन्त्रण दिया। काश ! मैं उस समय यह जान गया होता कि मैं योगेश्वर को नहीं, बल्कि किसी भयंकर विपत्ति को निमन्त्रण दे रहा हूँ तो सच मानिये, उसे कदापि न बुलाता।

“मेरे घर में प्रवेश करते ही उसने पूछा “यह कौन है ?”

“मैंने परिचय कराया—“मेरी पत्नी कविता।”

“योगेश्वर ने जोर से ठहाका लगाया ! “ओह ! कलकत्ते के सेठ रतनलाल की बेटा तो नहीं ! वाह ! बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा !”

“मैंने विस्मय से पूछा—“कविता को पहचानते हो क्या ?” “उसने हँस कर कहा, “हाँ-हाँ, खूब पहचानता हूँ, गुरु भाई।”

“मैंने एकान्त में कविता से पूछा—“क्या तुम योगेश्वर तांत्रिक को जानती हो ?”

“कविता ने संक्षेप में उत्तर दिया—“एक-दो बार पिताजी के पास देखा है इसे। बस, इससे अधिक कुछ नहीं जानती।

“मैं रहूँ या न रहूँ, इसके बाद योगेश्वर तांत्रिक प्रायः नित्य ही मेरे घर आने लगा।

“कविता को उसका आना अच्छा नहीं लगता था। वह उसके सामने बहुत कम आती और बहुत कम बोलती थी। आखिर एक दिन उसने मुझसे कह भी दिया,—“इस तांत्रिक को यहाँ आने से मना कर दें।”

“मैंने आश्चर्य से कहा—“क्यों ?”

“कविता खिन्न होकर बोली—“पता नहीं क्यों उसका यहाँ आना मुझे अच्छा नहीं लगता।”

मैंने शुष्क भाव से कहा—“मगर मैं उसे रोक नहीं सकता कविता।” “कविता चौकी “क्यों नहीं रोक सकते ?”

“मैंने गम्भीर स्वर में उसे बताया—“इसलिये कि उसके पास एक ऐसी विद्या है, जिसके द्वारा रूप बदला जा सकता है। वह धूमावती विद्या जानता है। मैं उससे यह विद्या प्राप्त करना चाहता हूँ।”

“कविता ने आपत्ति की—“मगर वह आदमी अच्छा नहीं है।” उसके मुख पर अचानक पीलापन छा गया। किसी अज्ञात भय से सिहर उठी वह।

“मैंने कविता की पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछा—“क्या बात है ? कुछ तो बोलो ! कुछ तो बतलाओ मुझे।”

“उसने मेरे कन्धे से गाल सटा कर हौले से कहा—“तुमसे मुझे कोई छीन न ले। मुझे इसी का डर है।”

“मैंने कविता के गालों को थपथपाते हुये कहा—पगली ! कौन छीनेगा भला तुमको ? यह तुम्हारे मन का भ्रम है।

“योगेश्वर धूमावती विद्या की सिद्धि देने को तैयार हो गया था। अमावस्या की रात में इसी श्मशान भूमि पर साधना करने का निश्चय किया गया। अष्टमी की रात तक लगातार साधना करनी होगी। योगेश्वर तांत्रिक ने मुझसे पुछा—“तैयार हो न ?

“मैंने कहा, “हाँ, हाँ, बिल्कुल तैयार हूँ।”

“अमावस्या के दिन सवेरे ही आ गया मैं उसके साथ। बलि के लिये काला बकरा, मदिरा, घी, धूप, आदि की पहले ही व्यवस्था कर ली थी मैंने। आठ दिन तक कविता अकेले रहेगी। इसीलिये उसकी देखभाल करने के लिये नौकर नितार्ई को सहेज दिया था। वह बड़ा चतुर और बुद्धिमान लड़का था। घर का सभी काम करता था। उस पर मेरा पूरा विश्वास था।

“एक रात अचानक योगेश्वर तांत्रिक बिना कुछ बतलाये श्मशान से गायब हो गया। इसके पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था।

“मेरा माथा ठनका। मैं तुरन्त साधना छोड़कर घर की ओर चल पड़ा। शंका-कुशंकाओं से मेरा मन तेजी से धड़क रहा था। रास्ते में नितार्ई से भेंट हो गयी। चिल्ला कर मैंने कहा, “अरे नितार्ई ! घर में कविता को अकेली छोड़कर कहाँ चला जा रहा है ?”

“नितार्ई मुझे देख कर एकदम घबरा गया, “अरे मालिक, आप यहाँ ? आप तो रात को घर में घुसे, इसीलिये मैं चला आया।”

“हतप्रभ रह गया। अचकचा कर बोला, “मैं घर में घुसा ...” “नितार्ई ने कहा, “घुसे नहीं थे। मैंने एक घंटा पहले ही तो प्रत्यक्ष देखा है आप घर में घुसे ...”

“मेरी आँखों के सामने एकबारगी अंधेरा छा गया। साथ ही छाती धड़कने लगी। मैं तीर की तरह भागा। सीढ़ी चढ़ कर ऊपर पहुँचा। सारा घर अंधेरे में डूबा हुआ था। बरामदे में पहुँच कर मैं सहसा ठमक गया। मेरे कमरे का दरवाजा बन्द था। भीतर से आवाज आ रही थी...

“तुम्हें प्यार नहीं करता तो किसे करता हूँ कविता ? आप ही सोचिये उस समय मुझपर क्या बीता होगा। मेरा माथा घूमने लगा। एक आवाज कविता की थी, जिसे मैं पहचान गया। मगर दूसरी आवाज बिल्कुल मेरी जैसी ही थी।

“हे भगवान, कौन है मेरे कमरे में ? कुछ क्षण के लिये स्तब्ध रह गया मैं। पीछे खिड़की थी। वह थोड़ी-सी खुली हुई थी। वहीं से झाँक कर देखा—भीतर मोमबत्ती जल रही थी। उसके पीले मद्धिम प्रकाश में भीतर का दृश्य देखकर मैं पाषाणवत् हो गया। साँस रुकने लगी जैसे। मैंने देखा—बिस्तर पर कविता की देहवल्लरी को

आलिंगनबद्ध किये हुये मेरा हूबहू दूसरा रूप पड़ा हुआ है। कहीं कोई अन्तर नहीं। कहीं कोई विषमता नहीं।

“मुझे समझते देर नहीं लगी कि वह व्यक्ति कौन है ? योगेश्वर तांत्रिक ! वह धूमावती विद्या जानता है। उसी के बल पर उसने मेरा रूप धारण करके कविता को छला है।

“क्रोध और आवेश से मेरी आँखें दप् से जल उठीं। मैंने एक दम दरवाजा पर जोर से धक्का मारा और चीख पड़ा—“कविता।”

“कविता चौक पड़ी। हड़बड़ा कर बोली—“बाहर तुम्हारे ही स्वर में यह किसकी बोली है ? कौन है वह ?”

“मैं दरवाजा पीटने लगा, साथ ही भयंकर रूप से चीख-चीख कर पुकारने लगा—“कविता ! कविता ! दरवाजा खोलो कविता। तुम्हारे साथ मेरे रूप में योगेश्वर तांत्रिक है।”

“कविता घबरा कर उठ खड़ी हुई। हकलाते हुए उसने कहा—“कौन है बाहर ? क्या कह रहा है ?”

“बहुरूपिया योगेश्वर तांत्रिक की आँखों में कामोत्तेजना थी। उसका मन वासना में आकण्ठ डूबा था। उसने कविता को फिर अपनी भुजाओं में समेट लिया और कहा—“मैं तुम्हारा पति हूँ कविता। वह झूठ बोल रहा है तुम तो जानती हो कि योगेश्वर बनावटी विद्या में पारंगत है। उसी के बल पर वह मेरे स्वर में बोल रहा है।”

“मैं बराबर दरवाजा पीटता जा रहा था और साथ ही चीख-चीख कर कविता को पुकारता भी जा रहा था। आखिर दरवाजा टूट कर गिर पड़ा।

मैं अन्दर घुसा और चीख कर बोला—“कविता किसकी गोद में हो ? यह महापापी योगेश्वर है।”

“मुझे देखकर कविता एकदम बिस्तर से छिटक कर खड़ी हो गयी और खूँख्वार शेरनी की तरह बिखर कर बोली—“सच-सच बतलाओ, कौन है मेरा असली पति ? किसने मेरे निर्मल पति-प्रेम पर कलंक लगाया है ? किसने छल किया है ? किसने धोखा दिया है मुझ अबला को ?”

“काम का नशा बड़ा घातक होता है। कविता के अर्धनग्न शरीर को अपनी ओर खींचते हुये योगेश्वर तांत्रिक ने कहा—“मैं हूँ तेरा पति। मैं ...मैं...।”

“वह चमक कर उठा खड़ा हुआ। मैं आपा खो बैठा और उछल कर एकदम योगेश्वर तांत्रिक की छाती पर चढ़ बैठा। मेरे दोनों हाथों की उँगलियां कसती चली गयीं उसके गले को। अन्त में योगेश्वर तांत्रिक का सिर झूल गया एक ओर और उसके साथ ही उसका वास्तविक रूप भी प्रकट हो गया। कविता फटी-फटी आँखों से देखती रही सब कुछ।

सहसा चीत्कार करती हुई वह जमीन पर गिर पड़ी। धीरे-धीरे उसका रंग काला पड़ने लगा। सारा शरीर ऐंठने लगा। फिर मुख से खून की एक पतली धारा निकल कर जमीन पर फैलने लगी और देखते-ही-देखते उसका शरीर निर्जीव हो गया।

“जिस समय कलकत्ता में पहली बार मेरे कमरे में अपने पिता के साथ वह आई थी तब मैंने ठीक यही दृश्य उसके मस्तक पर देखा था। मेरे नेपाली तांत्रिक गुरु की दी हुई तांत्रिक विद्या सत्य सिद्ध हुई।”

इतना सुना चुकने के बाद वह रहस्यमय तांत्रिक संन्यासी अवधूत सहसा मौन साध गया और एकटक श्मशान में जलती हुई चिता की ओर देखने लगा।

उस समय उसके मुख पर असीम वेदना और व्यथा के भाव तैर रहे थे।

साँझ की स्याह चादर धीरे-धीरे चारों ओर फैलने लगती थी। दूज का पीला चाँद जंगलों की ओट से झाँकने लगा था। चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। पद्मा के किनारे की झाड़ियों में छिपे झींगुरों का अनवरत क्रन्दन शुरू हो गया था। सहसा यमराज मन्दिर के पीछे से सियारों के रोने की आवाज आई। उसी समय तांत्रिक संन्यासी भवानन्द अवधूत ने मौन भंग किया। बुझे हुए स्वर में कहने लगा—“प्रश्न यह उठता है कि क्या सचमुच धूमावती विद्या द्वारा आदमी रूप बदल सकता है? क्या हिमालय या तिब्बत में ऐसे रहस्यमय गुप्त तांत्रिक मठ हैं? क्या इन मठों में दूसरे जगत की आत्मायें नारी-रूप धारण करके भैरवी के वेष में आती हैं। क्या तंत्र-मंत्र में ऐसी अलौकिक शक्ति होती है? आप कहेंगे कि नहीं जानता। किन्तु बन्धु, भारतीय संस्कृति का इतिहास कहता है तांत्रिक विद्या असत्य नहीं है। आपके विज्ञान की दृष्टि से दूर भी अनेक ऐसे सत्य विद्यमान हैं, जिनकी मनुष्य कभी कल्पना भी नहीं कर सकता। उनकी खोज में विज्ञान कभी सक्षम नहीं हो सकता। मैंने ऐसे सत्य हो देखा है और अनुभव भी किया है।

उस समय मेरे मन में अनेक भाव उठ रहे थे, जिनमें संशय का ही भाव अधिक था। शायद मेरे इस भाव को तांत्रिक संन्यासी समझ गया। बोला—“मेरी कथा की सत्यता पर संशय है क्या आपके मन में?”

“नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।”

संन्यासी एकबारगी हा-हो कर हँसने लगा। बड़ी विचित्र हँसी थी। शायद मेरी दुर्बलता पकड़ी गयी थी, चिता से उठ रही लाल-लाल लपटों का पीला प्रकाश उस समय उसके मुख पर पड़ रहा था। सहसा किसी अतीन्द्रिय ज्योति से उसकी आँखें टप से जल उठीं और इसके साथ ही उसके मुख पर एक अमानवीय भाव भी तैर गया। फिर भी बड़े ही शान्त और निर्विकार स्वर में वह बोला—शरीर का बंधन भले ही टूट गया है। मगर पति-पत्नी का बंधन अभी तक है। कविता आज भी मेरे साथ है और उस अलौकिक मठ से भी मेरा संबंध है। आप चाहें तो कविता को देख सकते हैं और उस मठ को भी।”

“यह कैसे सम्भव है?” आश्चर्य से मैंने पूछा।

“अभी साँप काटे हुए एक व्यक्ति का शव यहाँ आएगा। लोग उसे नदी में प्रवाहित करने के लिये आयेंगे।”

“आपको कैसे मालूम?”

“मुझे सब मालूम हो जाता है। मैं जैसा कहूँ वैसा करते जाइये, बसा।”

मैंने वैसा ही किया। लगभग बीस मिनट बाद ही शव आ गया श्मशान में। जब उसके सगे-संबंधी शव को प्रवाहित करके चले गये तो मैं शव को खींच कर पानी के बाहर निकाल लाया। फिर श्मशान में भयंकर वातावरण गहरा गया। अमावस्या की स्याह काली रात में उस तांत्रिक संन्यासी ने अपनी साधना शुरू की।

इसके बाद क्या हुआ? यह तो शुरू में ही लिखा जा चुका है। वाराणसी लौटने पर मैंने साधु-संन्यासियों को भोजन करा दिया। इसके लिए भवानन्द अवधूत ने पहले ही मुझे सौ-सौ के दस नोट दिए थे और कहा था कि इन रुपयों से मैं वाराणसी में उसके नाम पर साधु-संन्यासियों को भोजन करवा दूँ। मैंने उसकी इच्छा पूर्ण कर दी। उस रहस्यमय तांत्रिक संन्यासी की आत्मा को शान्ति मिली कि नहीं, भगवान जाने।



असम की कामरूप विद्या

असम का कामरूप कामाख्यामन्दिर इक्यावन शक्तिपीठों में से एक है। कभी कामरूप की स्त्रियाँ शुरू में तंत्र-मंत्र, जादू-टोना आदि में बहुत प्रसिद्ध रही हैं इस समय यह सब भले ही उतनी आम बात न रह गई हो, मगर असम के कुछ पहाड़ी और जंगली इलाकों में आज भी तांत्रिक सिद्धियों और काले जादू की भयंकर शक्तियों के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं विशेष रूप से स्त्रियों का बाहुल्य तो है ही, वे पुरुषों की अपेक्षा अधिक कर्मठ और शक्ति-सम्पन्न भी होती हैं। उनके रूप, सौन्दर्य और यौवन में बड़ा विचित्र कामात्तेजक आर्कषण होता है

मैं जिस समय की घटना बता रहा हूँ, उन दिनों तांत्रिक सिद्धियों और जादू-टोनों की शक्तियों की सत्यता जानने-समझने के लिये असम के घने पहाड़ी, जंगली इलाकों में घूम रहा था। इस दिशा में मैंने काफी खतरे भी उठाए हैं। कई बार तो मरते-मरते बचा हूँ मैं।

कार्तिक का महीना था। हल्की-हल्की ठंड पड़ने लगी थी। मेरा मन उन दिनों बहुत अशान्त था। असम की मनोरम प्राकृतिक छटा भी मुझे शान्ति नहीं प्रदान कर पा रही थी। मैं पागलों जैसा घने जंगलों और बीहड़ पर्वतीय स्थानों में घूमता रहता था, लेकिन अशान्ति का कारण क्या था इससे मैं स्वयं अनभिज्ञ था।

एक दिन मैं घूमता-घूमता भूख-प्यास से विचलित हो उठा। गाँव काफी दूर थे। किसी तरह घिसटता-सा मैं एक गाँव के समीप पहुँचा, तो उस समय तक रात हो चुकी थी।

कमजोरी के कारण मुझे चक्कर आ रहा था। एकाएक पैर लड़खड़ाया और मैं बेहोश हो कर गिर पड़ा। फिर जब मेरी चेतना लौटी, तो मैंने अपने आपको एक मकान के अन्दर खूब साफ-सुथरे कमरे में मुलायम बिस्तर पड़ा हुआ पाया। मुझे आश्चर्य हुआ—आखिर मैं यहाँ कैसे पहुँचा ? कौन लाया मुझे ?

उसी समय किसी का कोमल हाथ मेरे माथे पर आ टिका। सिर उठा कर देखा, तो एक अत्यन्त सुन्दर युवती मेरे सिरहाने खड़ी मुस्करा रही थी। मुझे चैतन्य देख कर ही वह प्रसन्न हो उठी थी। उमक कर बोली—“तुम भूखे हो न ? ठहरो, मैं अभी खाना लाती हूँ।” और वह कमरे से बाहर चली गयी।

उसके चलने से पैरों की पायल की झनकार ने मेरे मन को मोह लिया। अद्भुत रूपसी थी वह, इतनी सुन्दर कि मैं उसके रूप का वर्णन शब्दों में नहीं कर सकता। बस, यही इच्छा होती थी कि अपलक उसे निहारता रहूँ। लगता था, जैसे प्रकृति का सौन्दर्य भी इस तरुणी के उज्ज्वल स्वरूप के सामने अपूर्व हो। उसकी आकर्षण-शक्ति बड़ी ही प्रबल थी और मैं इस बात को सोच कर ही व्याकुल हो उठा कि मुझे इस रूप-राशि को छोड़कर जाना पड़ेगा। उन कुछ क्षणों में ही मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा

कि उसे देखे बिना अब एक पल भी जीवित न रह सकूँगा।

जब हिरनी-सी कूदती छम-छम पायल छनकाती हुई वह लौटी, तो उसके हाथ में भोजन की थाली थी। मेरे सामने रख कर बोली, “लो, भोजन कर लो।”

जैसे कोई बहुत ही मधुर संगीत गूँज उठा हो। मैं मंत्र-मुग्ध-सा उसे देख रहा था। देखता ही रह गया।

एकाएक वह लजा उठी। कनखी से ताक कर बोली, “क्या देख रहे हो ?”

उसके इस प्रश्न से मैं चौंक पड़ा। बोला “मैं कहाँ हूँ ? तुम कौन हो ?”

“मेरा नाम लाजो है और तुम मेरे घर पर हो।” उस युवती ने संक्षेप में बतलाया, “तुम बेहोश पड़े थे। मेरे बाबा ने देखा, तो तुमको यहाँ उठा लाये।”

“मुझे भूख तो नहीं है।” मैंने संकोच से कहा।

“तुम भूख-प्यास के कारण ही बेहोश पड़े थे और कहते हो कि भूख नहीं है।” मीठी झिड़की देकर वह मुस्कराई और अपने हाथ से जबर्दस्ती मुझे खाना खिलाने लगी।

“तुम बड़ी “वो” हो।” मैं जाने क्या तो कहना चाहता था, पर जबान लड़खड़ा गई।

“क्या ?”

“सुन्दर, बहुत सुन्दर।” मेरे मुँह से अनायास निकल गया।

“कितनी ?” उसके प्रश्न में अल्हड़ता थी।

“चाँद से भी गोरी और फूलों से भी कोमला।” मैं भावुकता में कह गया।

“ऐसा भी कोई हो सकता है भला।” और वह हँस पड़ी।

कितनी सरल हँसी थी वह। उस समय मुझे आश्चर्य हुआ था कि इतना सरल भी कोई हो सकता है। पर कितना मूर्ख था मैं।

लाजो को लेकर मैं भविष्य के रंगीन सपनों में डूब गया। सचमुच आत्मा की गहराई से मैं उससे प्रेम करने लगा था, मगर मेरा यह विचार कितना भ्रमपूर्ण था। लाजो वैसी नहीं थी, जैसी मैं उसे समझ रहा था।

नहीं ! लाजो ने मुझे धोखा नहीं दिया, बल्कि मैं स्वयं अपने आप से धोखा खा गया। उस समय मेरी उम्र ही क्या थी ? बस, यही पच्चीस साल रही होगी। इस उम्र में नवयुवक जो रंगीन सपने देखते हैं वैसे ही मैं भी देख रहा था। मेरे जीवन में पहली बार लाजो के रूप में कोई युवती आई थी। हृदय में पहली बार प्रेम की तरंगें उठ रही थीं।

इस समय लाजो के सिवाय मेरे सामने और कुछ न था। वह मेरे रोम-रोम में बस चुकी थी। मैं उससे विवाह करना चाहता था। उसके साथ एक सुखी गृहस्थी बसाना चाहता था। लाजो भी मुझे पाकर जैसे पागल-सी थी। पहली रात को ही उसने अपना तन-मन-दोनों समर्पित कर दिया मेरे सामने। उस समर्पण में उसे जो सुख मिला था उससे हजारों गुना सुख मुझे उसको पाने में मिला था। आनन्द की वह पहली अनुभूति शायद जीवन में कभी नहीं भूल पाऊँगा मैं।

एक दिन लाजो ने बतलाया कि अगली पूर्णिमा को उसके बाबा हम दोनों का विवाह कर देंगे। विवाह के बाद उसके बाबा की सारी जायदाद मुझे मिल जायेगी। लाजो के बाबा तीन-चार गाँवों के चौधरी थे। नागाओं से भी उनका अच्छा मेल-जोल था।

मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। लाजो मुझे इतनी सरलता से मिल सकेगी, मुझे इसकी कल्पना तक नहीं थी। खुशी से फूले हुए हम दोनों पहाड़ियों की सैर करते, प्रेम के गीत गाते और हिमालय के उत्तुंग शिखरों की शुभ्र छटा का आनन्द लूटते। मैं लाजो के लिए सब कुछ करने को तैयार था। बस चलता तो उसके लिये आकाश के तारे भी तोड़ कर ला सकता था मैं।

लाजो उस दिन अपने विवाह के काम-काज में व्यस्त थी। मैं अकेला ही पहाड़ों पर घूमने चला गया। मन पुलकित था। फागुन का महीना। प्राकृतिक सौन्दर्य अपने यौवन पर था। शीतल वायु के झोंके मन मोह रहे थे। रंग-बिरंगे फूल अत्यन्त भले लग रहे थे और भीनी-भीनी सुगन्ध से सारा वातावरण गमक रहा था। मेरी दृष्टि ऊपर बर्फ से ढँकी एक पहाड़ी चोटी पर जम गयी थी। डूबती हई सूर्य-किरणों से वहाँ सुनहरी छटा बिखरी रखी थी। जब सूर्य डूब जायेगा, तो फिर ...।

और सहसा दो कोमल हाथों ने मेरी आँखें ढक लीं।

मैंने सोचा—लाजो का अभाव खटक रहा था, सो भी पूरा हो गया। और मैंने उसके हाथों पर अपने हाथ रख कर जोर से दबा दिए, “लाजो!”

“नहीं!” मेरी आँखें खोलकर वह खिलखिला पड़ी, फिर लाज भरे स्वर में उसने पूछा, “क्या मैं लाजो से कम सुन्दर हूँ?”

मेरे सामने एक रूपवती षोडशी विचित्र भाव-भंगिमा में खड़ी थी। सचमुच वह बहुत सुन्दर और आकर्षक थी। आश्चर्य से मैं उसकी ओर ताकता ही रह गया।

एकाएक उसने मेरे गले में बाँहिं डालकर पूछा, “मुझसे शादी करोगे?”

मैं हतप्रभ हो उठा। सहसा कुछ बोला नहीं गया मुझसे।

उसने अपनी कजरारी रसीली आँखें मेरी आँखों में डालकर कहा—“तुम जिस चीज को पाने के लिए भटक रहे हो, मैं वह चीज तुमको दूँगी। आओ, चलो मेरे साथ!” यह कह कर उसने मेरा हाथ पकड़ कर खींचा तो मैं सम्मोहित सा उसके पीछे-पीछे चलने लगा। बातों-ही बातों में पता चला कि उसका नाम रूपा था। पहाड़ी के दूसरी ओर तराई के एक गाँव में रहती थी वह। मगर उसकी झोपड़ी बस्ती से अलग-थलग वीरान जगह पर थी।

रात गहरा गयी थी। चारों तरफ निस्तब्धता छाई हुई थी और सन्नाटा साँय-साँय कर रहा था। रूपा की झोपड़ी के भीतर लालटेन का मद्धिम प्रकाश फैला हुआ था। एक ओर खाट पर मैली-कुचैली कथरी बिछी थी। रूपा ने मुझे उसी पर बैठने का संकेत किया। फिर वह शराब की बोतल, गिलास और कुछ नमकीन तथा भुनी मछली लाकर बैठ गई।

यंत्रचालित-सा मैं उसकी हर आज्ञा और संकेत का पालन करता रहा। उस रोज

जीवन में पहली बार मैंने शराब पी। सारा शरीर एकबारगी सनसना उठा। मस्तिष्क की तमाम शिराएँ झनझनाने लगीं। फिर कब, किस क्षण मैं होश-हवास खो बैठा पता ही नहीं चला।

अचानक मेरी आँख खुली तो देखा, रूपा वहाँ नहीं थी। उसकी जगह बैठी एक बुढ़िया मेरी ओर देख-देख कर मुस्करा रही थी। उसके बाल सन की तरह सफेद थे। आँखें भीतर की ओर धँसी हुई थीं और गालों की हड्डियाँ उभर कर सामने की ओर निकल आयी थीं। मुँह में एक भी दाँत नहीं था। मैंने तो समझा था कि वह शायद रूपा की माँ या दादी होगी, मगर यह मेरा भ्रम था। उसने अचानक लपक कर मुझे आलिंगन में भर लिया और लगातार चुम्बनों की वर्षा करने लगी मेरे गालों पर। इसके साथ ही हर पल वह कभी मुझे छाती से चिपका लेती तो कभी गोद में लेकर प्यार करने लगती।

मेरे हृदय की धड़कन तेज हो गयी। जीभ तालू से चिपक गयी। मेरी नजर रूपा को खोज रही थी, मगर रूपा वहाँ कहाँ थी। मैं विह्वल होकर बोल उठा, “माँ, माँ मैं तुम्हारे बेटे के बराबर हूँ। यह सब क्या है ? मुझको छोड़ दो। मैं तुम्हारे पैर पकड़ता हूँ, मेरा दम निकल जायेगा ...”

“नहीं नहीं ! अब तुमको छोड़ने वाली नहीं हूँ। तुम अब जाओगे कहाँ ? मैं तुम्हें यह सुख और आनन्द दूँगी, जो कोई भी स्त्री जीवन भर नहीं दे सकती।”

मैं घबरा गया। किसी तरह छुड़ाकर भागने की कोशिश की, पर उसने लपक कर मेरा हाथ पकड़ लिया और बलि के बकरे की तरह खींच कर फिर बिस्तर पर पटक दिया। इसके बाद पूरी रात मुझ पर जो कुछ गुजरा और मेरी जो दुर्दशा हुई, उसकी आज कल्पना करके भी सिहरन हो आती है।

किसी तरह सबेरा हुआ। भोर में मुझे थोड़ी झपकी लग गयी थी, तभी किसी ने झकझोर कर जगा दिया मुझे। आँखें मलता हुआ जब उठा, तो सामने रूपा खड़ी मुस्करा रही थी। मैंने सिहर कर पूछा, “वह बुढ़िया कहाँ गयी ? और तुम कहाँ चली गयी थी रात में ?”

रूपा हँस पड़ी। बोली—“कौन बुढ़िया ? मैं पूरी रात तुम्हारे साथ इसी झोपड़ी में थी।”

“नहीं-नहीं ...ऐसा कैसे हो सकता है ! तुम झूठ बोल रही हो। उस बुढ़िया ने रात भर ...”

रूपा मेरे करीब आकर हँस कर बोली, “मैं ही थी वह बुढ़िया।”

“तुम क्या कह रही हो ?” डर से काँपता हुआ मैं बोला—“तुम मुझे परेशान कर रही हो। छोड़ दो मुझे। मैं अब जाना चाहता हूँ यहाँ से। तुम्हारा गोरख-धन्धा मेरी समझ में नहीं आ रहा है।”

मेरी बात सुनकर रूपा एकाएक तमतमा उठी। चेहरा एकदम सुर्ख हो उठा। तमककर बोली—“अब तुम यहाँ से कभी नहीं जा सकोगे, समझे ?”

“क्यों ?”

“इसलिये कि मुझे तुम्हारी आत्मा की शक्ति चाहिए। मैं तुम्हारे जैसे ही किसी युवक की प्रतीक्षा में थी कि अचानक तुम मुझे मिल गये ...।”

“तू मेरी आत्मा की शक्ति को कैसे पा सकोगी ? और उसका करोगी क्या ?”

“यह सब जानकर तुम क्या करोगे ? रूपा ने सिर झटकाकर कहा, “मेरा असली रूप और मेरी असली उम्र तुम कल रात देख ही चुके हो। मैं कामरूप विद्या जानती हूँ। मुझसे सब डरते हैं। मैं अपनी इस विद्या के बल पर सब कुछ कर सकती हूँ। रूप भी बदल सकती हूँ। तुम मुझे अपनी आत्मा की शक्ति दो। उसके बदले में अपनी कामरूप विद्या तुम्हें दे दूँगी।”

थोड़ा रुक कर वह बोली—“कल रात मैंने तुमको लेकर एक विलक्षण सिद्धि की है। यह देखो !” कह कर उसने अपनी बन्द मुट्ठी खोल दी। उसकी हथेली पर एक ताबीज पड़ा था।

मैंने नासमझी की तरह पूछा, “यह कैसा ताबीज है ? इससे क्या होगा ?”

रूपा जोर से हँस पड़ी। बड़ी कौतुक भरी हँसी थी वह। फिर वह पलथी मार कर बैठती हुई बोली—“यह ताबीज “टहा विद्या” से मंत्र-पूत है। इसे मुँह में रखकर मैं गायब हो सकती हूँ।” यह कह कर उसने ताबीज को मुँह में रख लिया। ऐ, वह क्या ? रूपा का अस्तित्व मेरे सामने से तुरन्त गायब हो गया, जैसे वह हवा में विलीन हो गयी हो।

मैं सिहर उठा—हे भगवान ! किस झंझट में आकर फँस गया। असम की जादूगरिनियों के नाम और उनके कारनामे सुने अवश्य थे, मगर अब प्रत्यक्ष देख रहा था। अज्ञात आशंका और भय से मैं रोमांचित हो उठा।

अचानक अदृश्य रूप से रूपा की आवाज सुनायी पड़ी, मानो वह कहीं शून्य में बोल रही हो, “घबराओ मत, तुम्हें परेशान नहीं करूँगी। तुम्हें कौन-सी तकलीफ मैंने दी है ? मर्द हो कर घबराते हो ? छिः, तुम्हारी जवानी का थोड़ा उपयोग मैंने कर लिया, तो तुम्हारा कौन-सा नुकसान हो गया ? बस, यही इतनी-सी हिम्मत लेकर चले थे तंत्र-मंत्र की शक्ति देखने और उसकी सत्यता जानने ?”

फिर वह प्रकट हो गयी। मेरे सिर पर हाथ फेरती हुई वह सान्त्वना-भरे स्वर में कहने लगी “देखो ! तंत्र-मंत्र की साधना-सिद्धि में मांस-मदिरा और नारी-भोग—सब कुछ चलता है।” बिना इसके कुछ भी नहीं मिलता तंत्र में, मगर इसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। तंत्र-मंत्र के नाम पर इनका प्रयोग केवल भौतिक सुख के लिए करने से आदमी जानवर की तरह हो जाता है। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है फिर वह किसी काम का नहीं रह जाता। लोगों में भ्रम फैलता है और तंत्र-मंत्र पर से लोगों का विश्वास उठता है सो अलगा समझे ?”

पल भर रुक कर उसने कहा, “मैं अस्सी साल से कामरूप विद्या की अलौकिक शक्ति का भार ढो रही हूँ। अब यह तुम्हें देकर मुक्ति पाना चाहती हूँ। तुम्हारी आत्मा की शक्ति मुझे इस विद्या के जाल से मुक्त कर देगी।”

मूर्ख की तरह मुँह बाएँ मैं रूपा की बातें सुनता रहा। आखिर उसने कहा, “आज

रात में तुमको “कामरूप विद्या” की कुछ शक्तियाँ दिखलाऊँगी। चमत्कार देखकर घबराना मत। डरना भी मत वर्ना ...।

आखिर रात हुई।

वह कौन-सा प्रहर था, यह अब नहीं याद रह गया है।

रूपा मुझे अपने साथ एक पहाड़ी नदी के किनारे श्मशान पर ले गयी। भयानक निस्तब्धता। जंगल की ओर से जानवरों की आवाजें आ रही थीं। रोम-रोम काँप रहा था मेरा। भय के कारण मेरी बहुत बुरी हालत थी।

रूपा मेरी स्थिति समझ गयी। कहने लगी, “कैसे मर्द हो तुम। मैं तुम्हारे साथ हूँ, तो डर और भय कैसा !”

उसने ढेले से जमीन पर गोलाकार एक रेखा खींचकर कहा, “तुम इसी के भीतर खड़े हो जाओ। कुछ नहीं होगा, मगर शान्त रहना।”

मैं चुपचाप घेरे में खड़ा हो गया।

फिर रूपा ने श्मशान में आग लगाई। इसके बाद साथ लाये गये थैले में से शराब की बोतल, मुँगे का मांस, तेल का दीपक, कुछ कौड़ियाँ और कुछ कंकड़ निकाले। पहले उसने खुद थोड़ी-सी शराब उड़ेल कर पी। थोड़ी-थोड़ी सारी चीजें आग में भी डाल दीं। आग एकदम भभक उठी। फिर उसने थोड़ा-थोड़ा करके मुँगे का मांस आग में डाला। उसके बाद कोई मंत्र पढ़कर उसने कुछ कौड़ियाँ और कंकड़ों को चारों दिशाओं में फेंका तो दूसरे ही क्षण चारों ओर से नर-कंकालों के झुण्ड के झुण्ड आने लगे। वे सब एक दूसरे से टकराते हुए नाच-कूद रहे थे।

बड़ा भयंकर दृश्य था। उनमें से एक नर-कंकाल रूपा के सामने आकर खड़ा हो गया। रूपा ने तुरन्त थैली में से एक छूरी और कटोरा निकाला। छूरी को झटके से नर-कंकाल के सीने में भोंक दिया। भलभला कर खून बह निकला। रूपा ने तुरन्त उस खून को कटोरे में रोक लिया और गट्-गट् पीने लगी।

रूपा बिल्कुल पिशाचिनी जैसी लग रही थी उस समय। फिर एक-एक कर सारे नरकंकाल शून्य में विलीन हो गये। उसी समय सहसा कहीं कोई जंगली जानवर चीख पड़ा और उसके साथ ही श्मशान के वातावरण में भयंकर नीरवता छा गयी।

खून का कटोरा हाथ में लिये हुए रूपा मेरी ओर बढ़ी तो भयभीत आँखों से उसकी ओर देखा मैंने। धीरे-धीरे वह मेरे बिल्कुल करीब आ गई और इशारे से कटोरे का खून पीने के लिए कहने लगी।

मैं एकदम चिल्ला पड़ा, “नहीं ! नहीं ! मुझसे यह नहीं होगा। मैं खून नहीं पीऊँगा।

“पीना पड़ेगा।” रूपा गुर्गुर कर बोली। फिर उसने कटोरा मेरे मुँह में लगा दिया।

न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं एक साँस में ही सारा खून पी गया। दूसरे ही क्षण ऐसा लगा, मानो सारे शरीर में कोई अज्ञात अदम्य शक्ति दौड़ गई हो। आँखें जलने लगीं। होंठ फड़कने लगे। पैर काँपने लगे और मैं उसी अवस्था में गिर पड़ा।

फिर जब चेतना लौटी, तो मैंने अपने आपको रूपा की झोपड़ी में पाया।

उसी दिन से मैं अपने आप में एक विलक्षण अनुभव करने लगा। मैं जो कुछ सोचता-विचारता, उसका तुरन्त जवाब मिल जाता और समाधान भी हो जाता अपने आप। जो कोई भी मेरे पास आता, मैं उसके विषय में सारी बातें तत्काल जान जाता। ऐसा लगता था जैसे कोई मेरी देह के भीतर बैठकर सब कुछ बतला दिया करता है। वही मुझे जवाब देता है और वही समस्या का समाधान भी कर देता है।

कौन बैठा है मेरे भीतर ? कौन-सी शक्ति काम करती है मेरे मस्तिष्क में ? भूत-भविष्य-वर्तमान—तीनों कालों का रहस्य कैसे खुल जाता है मेरे मानस-पटल पर। यह आज तक मेरी समझ में नहीं आया।

कामरूप विद्या तंत्र भयंकर और तामसिक विद्याओं में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। असम्भव से असम्भव काम करना, मनचाही वस्तुओं की सृष्टि करना, मूठ-बान आदि चलाकर शत्रु के प्राण लेने जैसी क्रियायें तांत्रिक लोग इसी विद्या के बल पर किया करते हैं। इतना ही नहीं, इस विद्या के अध्ययन से त्रिकाल और दूसरों की मति-गति का भी पता लगाया जा सकता है।

रूपा “कामरूप विद्या” अच्छी तरह जानती थी, इसमें शक नहीं। उसकी चमत्कारपूर्ण तांत्रिक सिद्धियों तथा गतिविधियों को देखकर मैं रोमांचित हो उठता। उसके चंगुल में मैं बुरी तरह फँस गया था।

लेकिन एक दिन रूपा के चंगुल से मुक्ति मिल ही गयी। फिर भी वह मुक्ति मेरे लिए एक प्रकार से अभिशाप ही सिद्ध हुई।

न जाने कैसे लाजो को यह जानकारी मिल गयी कि मैं रूपा के कब्जे में हूँ। बस, एक दिन शेरनी की तरह गरजती हुई आ ही धमकी रूपा की झोपड़ी में। उसका रौद्र रूप देखकर मैं काँप उठा।

लाजो ने मुझे देखते ही लपक कर मेरा हाथ पकड़ लिया और घसीटती हुई रूपा से बोली, “चाण्डालिन ! मेरे शिकार को फँसाने की तेरी हिम्मत कैसे हुई ?”

रूपा तमक कर बोली—“तूने खरीद थोड़े ही रखा है इसे।” फिर पलट कर वह मुझसे पूछने लगी, “बोल, तू मुझसे शादी करेगा न ?”

मुझे तो जैसे लकवा मार गया। न जबान हिली, न गर्दन डोली। मैं सहमा हुआ मुँह बाये कभी रूपा की तरफ तो कभी लाजो की तरफ देखने लगा।

लाजो ने तड़प कर कहा, “उससे क्या पूछती है ? मुझे देख, जिस पहाड़ से टकराने चली है, उसकी ऊँचाई देख ...देख सकेगी ? गर्दन टूट कर पीछे लटक जायेगी।”

लाजो का ऐसा भी रूप होगा, वह इस प्रकार कठोर बातें भी कर सकती है—ऐसा मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था।

उसकी बात सुनकर रूपा दहाड़ उठी—“डींग मत हाँक। मैं तुझे चूर-चूर कर सकती हूँ। मेरी “कामरूप विद्या” की शक्ति तू नहीं जानती। पल भर में खून उगल कर मर जायेगी तू।”

“क्यों मुझसे टकरा रही है ...।”

रूपा विकट हँसी हँस कर बोली—“जान की बाजी लगाने की हिम्मत है बोल, अपने आप फैसला हो जायेगा, जो जीतेगा वही शादी करेगा इससे।”

रूपा की ललकार सुनकर लाजो ने कहा, ठीक है, फैसला हो जाया जान रहते भागने वाले को तीन कसमा। फिर नोना चमाइन और गुरु गोरखनाथ के नाम की दुहाई देकर उसने जमीन पर तीन बार पैर पटक दिया।

जवाब में रूपा ने भी कसमें खायीं और तीन बार जमीन पर पैर पटके।

मैं हक्का-बक्का-सा खड़ा देख रहा था, कुछ समझ नहीं पा रहा था कि यह सब क्या हो रहा है ? फिर वे एक साथ मेरे दोनों हाथ पकड़कर बलिके बकरे की तरह घसीटते हुए घाटी की तरफ चल पड़ीं। वहाँ पहुँचकर मैं भागने न पाऊँ, इसीलिए दोनों ने मेरे हाथ-पैर रस्सी से बाँधकर मुझे एक सुरक्षित स्थान पर बैठा दिया।

उस निर्जन घाटी के दूसरे छोर पर घना जंगल था। सूरज जंगल के पीछे छिप गया था। वातावरण में एक अनोखा रहस्य व्याप्त था। चारों तरफ भयंकर निस्तब्धता और उदासी छायी थी। हम तीन व्यक्तियों के अलावा वहाँ और कोई नहीं था। उन दोनों ने एकाएक अपने-अपने आँचल से पीले चावल निकाले। दोनों ने एक-दूसरे को क्रुद्ध शेरनी की तरह देखा। थोड़े-थोड़े से चावल हाथ में लिए, फूँक मारी, फिर कोई मंत्र पढ़कर एकसाथ चावलों को आकाश की ओर फेंक दिया।

मैंने देखा—काफी ऊपर आकाश में दो कच्ची हँडिया आपस में जोर से टकराई और भन्-भन् की आवाज करती हुई बड़ी वेग से एक पूरब की ओर तथा दूसरी पश्चिम की ओर चल पड़ी। इसके साथ ही आकाश में आग की भयंकर लपटें भी फैल गयीं।

हे भगवान ! मैं दो पिशाचिनियों के चक्कर में फँस गया, मेरा उद्धार करो भगवान। अब कभी इधर आने की कामना भी नहीं करूँगा। एक बार छुटकारा दिला दो मुझे।

एकाएक मुझे घाटी में दो भयंकर शेरों के दहाड़ने की आवाज सुनाई पड़ी। मैंने देखा घाटी के दोनों ओर दो शेर आकाश की ओर सिर उठाये गरज रहे थे। फिर दोनों में भयंकर मल्ल-युद्ध छिड़ गया। दोनों पहले दूर से गरजे फिर एकसाथ उछल कर बीचोबीच घाटी के ऊपर आकाश में ही जा टकराये।

घण्टों वहाँ भयंकर शेर-युद्ध होता रहा। दोनों की गर्जना से घाटी गूँज रही थी और ऐसा लग रहा था, मानों घाटी हिल रही हो। जैसे भूचाल आ गया था। ज्वालामुखी फट पड़ा हो कहीं। मैं स्तब्ध खड़ा वह भयानक दृश्य देख रहा था। रूपा और लाजो समानान्तर बैठीं बराबर कोई मंत्र पढ़े जा रही थीं। उस समय दोनों के चेहरे भयानक हो उठे थे। सिर के बाल खुल कर पीठ पर बिखर गये थे। और आँचल छाती पर से खिसक कर हवा में लहरा रहे थे।

अचानक लाजो ने चाकू से अपना बायाँ हाथ चीर डाला। खून की धारा बह चली पर उसने तुरन्त वह खून जीभ से चाट लिया। उस समय वह एकदम राक्षसी जैसी लग रही थी। खून चाटते ही नीचे एक शेर भयंकर रूप से अट्टहास कर उठा। मैंने देखा—वह एकदम दूसरे शेर की गर्दन पर चढ़ बैठा। दाँतों एवं नाखूनों से उसका

गला चीरने-फाड़ने लगा। कुछ ही क्षणों में दूसरे शेर की गर्दन एक तरफ झूल गयी और वह मर गया। पहले शेर ने विजयोल्लास से झूमते हुए एक बार आकाश की ओर देखा, फिर दहाड़ता हुआ जंगल की ओर चला गया।

उसी समय पूरब की ओर से एक हँडियाँ सन्-सन् करती आग की लपटें फेंकती हुई आयी और रूपा के सिर के ऊपर चक्कर काटने लगी। बड़ा विचित्र दृश्य था वह। एकाएक वह मंत्रपूत हँडिया रूपा के सिर से टकरा गयी और दूसरे ही क्षण रूपा का सारा शरीर आग की लपटों से झुलसने लगा।

रूपा कातर स्वर में चीखने-चिल्लाने लगी—“मुझे छोड़ दो, छोड़ दो। अब कभी तुम्हारे शिकार की ओर आँखें नहीं उठाऊँगी छोड़ दो।”

मगर लाजो ने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। रूपा चीखती-चिल्लाती, रोती-गिड़गिड़ाती रही। उसका शरीर आग की लपटों में झुलसता रहा। बड़ा ही लोमहर्षक दृश्य था वह। आखिर कुछ देर बाद रूपा का शरीर जलकर राख के ढेर में बदल गया।

लाजो ने मेरा बंधन खोल कर कहा—“चलो, चलें।”

एक संकट टला तो अब दूसरा संकट मेरे सामने था। कुछ बोला नहीं गया। मैं उसके पीछे-पीछे चलने लगा।

रास्ते में लाजो कहने लगी, “देखा मेरी शक्ति तुमने ? मुझसे टक्कर लेने चली थी वह चुड़ैल। उसको नहीं मालूम था कि मुझे भी कामरूप विद्या आती है।”

असम की औरतों से टोने-टोटके, जादू-मन्त्र आदि जानती हैं। सुना था कि उन औरतों के चंगुल से बच कर कोई नहीं लौटा है। इन सारी बातों का मुझे उस समय प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा था। लाजो के प्रति पहले जो प्रेम, आकर्षण और अपनत्व था, वह सब एकबारगी घृणा में परिवर्तित हो चुका था। घर पहुँच कर वह फिर जोर-शोर से शादी की तैयारी में जुट गई, मगर मैं उससे मुक्ति पाने का उपाय सोचने लगा। उससे मुक्त होना आसान काम नहीं था। मैं जानता था कि धोखा देने पर वह “कामरूप” विद्या के जरिये मेरा भी अहित कर सकती है पर ...।

शादी का दिन निश्चित हो चुका था। मुझ पर लगातार नजर रखी जा रही थी कि कहीं मैं भाग न जाऊँ। जाति-प्रथा के अनुसार शादी के एक दिन पहले बिरादरी वालों को निमंत्रित किया गया था। साँझ से ही लोग जुटने लगे। शराब का दौर चला। मुर्गे काटे गये। काफी रात तक लोग शराब पीते हुए मांस खाते रहे। लाजो भी खूब शराब पीकर नशे में काफी देर तक नाचती रही। आखिर अन्त में अचेत-सी होकर गिर पड़ी। उसने इतनी ज्यादा शराब पी ली थी कि उसी बेहोशी में सबेरा होने के पहले ही उसने दम तोड़ दिया।

उल्लास और खुशी की जगह मातम छा गया, मगर मुझे प्रसन्नता हुई। दूसरे ही दिन मैंने चुपचाप वह गाँव छोड़ दिया। बनारस आकर सारी घटना मैंने अपने तांत्रिक गुरु भुवनमोहन भट्टाचार्य को सुनायी, तो उन्होंने बतलाया कि “कामरूपविद्या” जानने वाली इस प्रकार की स्त्रियाँ मरने के बाद और अधिक खतरनाक हो उठती हैं। वे अपने शिकार को छोड़ती नहीं। उनकी प्रेतात्मायें भी अपनी कामना-वासना आदि पूरी करने

के लिये उस विद्या का प्रयोग किया करती हैं।

भट्टाचार्य जी की बातें सुनकर सिहर उठा मैं। आखिर उनका कथन सत्य सिद्ध हुआ। आज एक लम्बा अरसा गुजर चुका है, लेकिन लाजो की अशरीर आत्मा अभी तक मेरे पीछे पड़ी हुई है। जब रात गहरा जाती है और वातावरण में निस्तब्धता छा जाती है, तब मैं अपने निकट किसी अपार्थिव सत्ता का विचित्र अनुभव करता हूँ। लगता है, वह अतृप्त आत्मा लाजो की ही है, जो आज भी भटक रही है....

और न जाने कब तक वह इसी तरह भटकती रहेगी।^१



१. इस कथा पर आधारित लेखक की असम के गुह्य और सिद्ध साबरी मंत्रों की अद्भुत पुस्तक 'असम की साबरी मंत्र विद्या' मंत्रशास्त्र की एक संग्रहणीय कृति है।

डाकिनी विद्या

१९५० का वर्ष मेरे व्यक्तिगत जीवन का सच पूछिये तो संक्रांति-काल था। तमाम उलझनों और रहस्यमय घटनाओं ने मेरे मन-मस्तिष्क को इतना उद्वेलित कर दिया था और इतनी जिज्ञासाओं को भर दिया था कि मुझे अपनी धारणा बदलनी ही पड़ी अंत में। पिछले दिनों की एक घटना को लेकर मुझे बेहद कौतूहल था। जब मैं एकांत में काशी के लाली घाट की धूलभरी सीढ़ियों पर बैठा रहता, उस समय सहसा उस घटना की नायिका, रोहिणी की याद आ जाती। फिर सारी घटना एक-एक कर उभरने लगती मानस-पटल पर।

रोहिणी तांत्रिक-साधना के मार्ग पर अग्रसर थी, इसमें संदेह नहीं। अपनी कामना पूरी करने का आश्वासन लेने के बाद उसने जो कुछ बताया, उससे पता चला कि वह रोज एक लाश पर बैठकर स्नान करती थी। यदि उस दिन उसके साथी और पालतू चीते को मार न दिया जाता और यदि वह आखिरी लाश पर भी बैठकर स्नान कर लेती तो निःसंदेह उसे एक नयी जिंदगी, नयी देह और नयी उम्र मिल जाती। फिर उसका वह कायाकल्प और रूप-यौवन चिरस्थायी होता। मगर उसकी कौन ऐसी रहस्यमय कामना थी, कौन-सी वासना थी और कौन-सी ऐसी इच्छा थी, जिसे पूरी करने के लिए वह बार-बार अनुरोध कर रही थी मुझसे।

क्या उसकी आत्मा से कभी मेरा संपर्क स्थापित हो सकेगा ? क्या कभी किसी माध्यम से मिल सकती है वह मुझको ?

मेरे एक सहपाठी मित्र थे। नाम था गजानन चौबे। तंत्र-मंत्र में उनकी काफी दिलचस्पी थी। हर समय नये तांत्रिक की खोज में रहते थे वह। जहाँ किसी नये तांत्रिक का पता चला कि तुरंत उसके यहाँ फल, मिठाई और शराब की बोतल लेकर पहुँच जाते वे महाशय। फिर तो महीनों सेवा में लगे रहते।

एक दिन जब मैंने अपने मन की बात चौबे जी को बतायी तो बोले, “आप कालिकानंद अवधूत से मिलें। वे जरूर आपकी मदद करेंगे।”

कालिकानंद अवधूत काशी की पातालेश्वर गली में रहते थे। साँझ की स्याह कालिमा पातालेश्वर की सँकरी गली में बिखर चुकी थी। चारों ओर सत्राटा था। गली के नुक्कड़ पर मरियल-सा कुत्ता बदन खुजलाता पड़ा था और पास ही एक लड़की चूल्हे में आग जला रही थी। लड़की के नजदीक जाकर जब मैंने उससे अवधूत महाशय का घर पूछा तो उसने सामने वाले एक टूटे-फूटे जंजर मकान की ओर इशारा कर दिया। तभी उस मकान का दरवाजा खोलकर एक युवती बाहर निकली। काला स्याह रंग, मझोला कद, पीठ पर बिखरे बाल और काली देह पर लाल चौड़ी किनारी की साड़ी और साड़ी के छोर में तालियों का गुच्छा बँधा हुआ था।

“किससे मिलना है आपको ?” युवती ने हौले से पूछा।

“कालिकानंद अवधूत महाशय से। उनके दर्शन करना चाहता हूँ, यही मकान है न?”

“हाँ, आप सीढ़ी से चढ़कर ऊपर चले आइये।” उस युवती ने कहा। आँगन में काफी अँधेरा था। किसी प्रकार टटोल-टटोल कर सीढ़ी चढ़ा और ऊपर पहुँचा। सामने वाले कमरे में एक महाशय बैठे थे। थुलथुल शरीर, काला रंग, गोल चेहरा, हृद से ज्यादा बाहर को निकला हुआ पेट और उस पर पड़ा हुआ जनेऊ। सामने शराब की बोतल रखी थी, साथ ही काँच का एक टूटा गिलास भी रखा था। शायद उन्होंने कुछ देर पहले ही मदिरा-पान किया था। आँखें गूलर के फल की तरह लाल हो रही थीं।

वहीं थे तांत्रिक कालिकानंद अवधूत महाशय।

प्रणाम करके जमीन पर बिछे फटे बोरे पर बैठ गया। एक बार गहरी नजर से उन्होंने मेरी ओर देखा, फिर गिलास में डालकर शराब पीने लगे। सारा कमरा शराब की दुर्गन्ध से भर उठा। मुझे नाक पर रूमाल लगानी पड़ी।

“कौन हो तुम?” भरिये स्वर में अवधूत महाशय ने पूछा। मैंने अपना परिचय और आने का उद्देश्य बताया। मेरी बात सुनकर एक बार फिर उन्होंने तीखी नजर से मेरी ओर देखा पर बोले कुछ नहीं।

सुन रहा था कि अवधूत महाशय को डाकिनी विद्या सिद्ध थी। कठोर शव-साधना द्वारा उन्होंने डाकिनी को वश में किया था। डाकिनियाँ सूक्ष्म लोक की घोर तामसिक प्राणी होती हैं। बुद्धि, विवेक से शून्य, पर उनमें प्राण-शक्ति बहुत ज्यादा होती है। इसी शक्ति के बल पर वे बिना किसी बाधा के किसी भी लोक-लोकान्तर में आ-जा सकती हैं। धरती और धरती के प्राणियों के प्रति उनमें काफी आकर्षण होता है। वे कभी-कदा अपनी किसी भौतिक इच्छा को पूरी करने अथवा लौकिक मनोरंजन के लिए अपनी प्राण-शक्ति से मानव-रूप भी धारण कर लिया करती हैं, मगर साधारण जन उन्हें पहचान नहीं सकते।

कालिकानंद अवधूत अपनी सिद्धि के बल पर वशीभूत डाकिनी के जरिये किसी भी लोक की किसी भी आत्मा से संपर्क साध लिया करते थे और उसकी प्रबल शक्ति से कोई भी अलौकिक काम ले लेते थे। मैंने यह भी सुना था कि कभी-कदा वह डाकिनी युवती के रूप में अवधूत महाशय के पास भी रहती थी। चौबेजी ने ही बताया था यह।

काफी देर बाद मौन भंग हुआ। अवधूत महाशय बोले, “अमावस्या को सायंकाल आना। दारू और मुर्गे का पका हुआ मांस भी लाना इतना कहकर फिर उन्होंने शराब से भरा गिलास मुँह से लगा लिया।

मैं किसी प्रकार अँधेरे में नीचे उतरा। जब गली में आया तो कृष्णवर्ण युवती से फिर भेंट हो गयी। इतना ही नहीं, मेरा शरीर भी टकरा गया उससे। मेरा रोम-रोम सनसना उठा। यह युवती फिस्स से हँस पड़ी। मैं कुछ समझा ही नहीं।

अमावस्या के रोज, साँझ के समय मैं अवधूत महाशय के यहाँ पहुँचा। एक बोतल शराब और हँडिया में मुर्गे का गोश्त भी ले गया था। दोनों चीजें देखकर तांत्रिक महाशय प्रसन्न हो गये। पहले पूरा गोश्त खाया और फिर शराब की पूरी बोतल खाली की। उसके बाद बोले, “अच्छा तो तू उस तंत्र-साधिका की आत्मा से मिलना चाहता

है ? मगर क्यों ? तुझे काम क्या है ? यह तो बताओ।”

“उसके प्रति न जाने कैसा मोह हो गया है मेरे मन में।” थोड़ा रुककर मैं बोला, “क्यों और किसलिए यह तो मैं भी नहीं जानता।”

अवधूत महाशय हँस पड़े। बोले, “एक तांत्रिक का एक साधिका के प्रति मोह और आकर्षण ? यदि जीवन की रक्षा चाहते हो तो इस मोह को त्याग दो। संसार में रहने वाले व्यक्ति के लिए अंतरिक्ष में भटकती हुई एक तंत्र-साधिका की आत्मा के प्रति यह आकर्षण अत्यंत भयानक सिद्ध हो सकता है। उसका परिणाम भी बड़ा दारुण हो सकता है।”

मुझे अवधूत महाशय की बात अच्छी नहीं लगी। उस समय लगा कि टरकाने के लिए ही कह रहे हैं यह सब। साहस जुटाकर मैं बोला, “परिणाम की और उसकी भयंकरता की चिंता नहीं है मुझे। आपके पास बड़ी आशा लेकर आया हूँ। यदि वह आशा निराशा में बदल गयी तो समझिये तंत्र-मंत्र के प्रति मेरे मन में घोर अविश्वास पैदा हो जायेगा। समझूँगा कि सब व्यर्थ है, पाखण्ड है और आडम्बर के सिवाय कुछ भी नहीं है।”

शराब के नशे में बोझिल हो रही उनकी आँखें दप् से जल उठीं। चेहरे का भाव भी बदल गया और तभी वह युवती आकर सामने खड़ी हो गयी। कमरा दुर्गन्ध से भर गया। अवधूत महाशय ने युवती की ओर रहस्यमय दृष्टि से एक बार देखा और जोर-जोर से मंत्र पढ़ने लगे। मंत्र की भाषा अटपटी थी। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया, लेकिन मंत्र-शक्ति का परिणाम तुरंत मेरे सामने आ गया।

युवती की समूची काया देखते ही देखते धूमाकृति में बदल गयी, फिर वह काँपी और दूसरे ही क्षण सहसा गायब हो गयी।

मैं स्तब्ध अवाक् देखता रह गया। यह तांत्रिक-लीला, अब तक जिसे मैं हाड़-मांस की युवती समझ रहा था, निश्चय ही वह उस महान तांत्रिक की वशीभूत डाकिनी थी, इसमें जरा-सा भी संदेह नहीं रह गया। तामसिक लोक की वह तमोगुणी शक्ति अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति से पंचमहाभूत तत्वों का निर्माण कर युवती के रूप में अपने वशीकर्ता के सामने प्रकट हो जाया करती थी उनके आवाहन करने पर, मुझे यह भी समझते देर न लगी।

धीरे-धीरे कमरे का वातावरण बोझिल हो उठा। सारा शरीर रोमांचित हो उठा किसी अज्ञात भय से।

और तभी अंधकार में डूबे कमरे के बोझिल वातावरण में मुझे किसी नारी-कंठ से निकलती हुई विगलित आवाज सुनायी दी, “जैसे तुम मेरे लिए व्याकुल हो, उसी तरह मैं भी पागल हूँ तुम्हारे लिए। तुम्हारे बिना मुझे कहीं भी शांति नहीं है ...।”

स्वर पहचानते मुझे देर नहीं लगी। वह रोहिणी का ही स्वर था। उसकी आत्मा को वह डाकिनी अंतरिक्ष के किसी लोक से पकड़ लाई थी। अंधकार के गहन अंतराल में उस क्षण कालिकानंद अवधूत का अस्तित्व बिलकुल लुप्त हो गया था।

“रोहिणी!” एकाएक मैं चीख पड़ा। मेरी वह चीख उस विगत अंधकार से

टकराकर चिथड़े-चिथड़े हो गयी। किस प्रेरणा से चीखा था, मेरी समझ में नहीं आया।

मंत्रोच्चारण फिर शुरू हुआ। कुछ देर में कमरे का वातावरण सामान्य हो गया और इसके साथ ही कोने में रखी लालटेन अपने आप भक् से जल उठी। उसकी पीली रोशनी में मैंने सामने रोहिणी को देखा। उसके चेहरे पर उदासी थी। आँखें भावहीन थीं। उस समय वह पूर्व परिचित गुफा की साधिका के रूप में नहीं, बल्कि राजकुमारी के रूप में थी और उस रूप में कितना सौन्दर्य, कितना आकर्षण और कितना लावण्य था, बताया नहीं जा सकता। बस, लगा कि अग्नि-शिखा से जलते उस सौंदर्य को देखता ही रह जाऊँ। उच्चकोटि के साधकों की आत्मा देश, काल और स्थिति के अनुसार अपने पार्थिव शरीर की रचना कर लेती है, यह मैंने किसी तंत्र-ग्रंथ में पढ़ा था, मगर उस समय सत्य को सामने देख रहा था।

रोहिणी उस तांत्रिक वातावरण में अधिक देर तक ठहर न सकी। शरीर के परमाणु विघटित हो गये धीरे-धीरे और रोहिणी की आत्मा न जाने कहाँ विलीन हो गयी।

वह शरद पूर्णिमा की रात थी। लाली घाट की सीढ़ियों पर बैठा मैं रोहिणी के विषय में ही सोच रहा था। न जाने क्यों मैं इतना मोहाविष्ट हो गया था उस तंत्र-साधिका के प्रति, समझ में नहीं आ रहा था। जब से मैंने अवधूत महाशय के कमरे में उसे देखा था, उस क्षण से पहले से भी ज्यादा उसके प्रति मोह, आकर्षण और प्रेम बढ़ गया था।

रात काफी गहरी हो गयी थी। हरिश्चन्द्र घाट के श्मशान में जल रही चिता अब बुझ चुकी थी। चाँद भी काफी ऊपर चढ़ आया था। चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। सहसा मुझे अपने निकट किसी अपार्थिव अस्तित्व का बोध हुआ। सिर घुमाकर पीछे की ओर देखा—रोहिणी खड़ी थी। थोड़ा भय लगा, फिर अपने को संभाल कर लड़खड़ाते स्वर में बोला! “तुम, तुम! यहाँ कैसे?”

उस समय रोहिणी के गुलाब जैसे चेहरे पर गहरी उदासी छाई हुई थी। आँखों में भी किसी अज्ञात पीड़ा और व्यथा की मिली जुली झलक थी।

मैं आगे बोलूँ, उसके पहले भर्राये स्वर में रोहिणी कहने लगी, “तुम तो जानते हो कि रामाचारी ने मुझ पर जादू कर दिया था और उसके चक्कर में फँसकर मेरी जिंदगी बर्बाद हो गयी। न कायाकल्प हुआ, न स्थायी रूप और यौवन ही मिला और न तो सिद्धि ही मिली। सोचा था, मरने के बाद शांति मिलेगी, लेकिन शायद वह भी तकदीर में नहीं लिखी थी। रामाचारी ने मरने के बाद भी मुझे नहीं छोड़ा। उसकी तांत्रिक आत्मा के चंगुल में अभी भी फँसी हुई हूँ मैं।”

थोड़ा रुककर भरे गले से रोहिणी बोली, “ऐसा लगता है कि उस नर-पिशाच के चंगुल से कभी भी मुक्ति नहीं मिलेगी मुझे। जन्म लेने के बाद भी मेरा साथ नहीं छोड़ेगी उसकी कृतघ्न आत्मा।”

रोहिणी का वाक्य अभी पूरा भी नहीं हुआ था कि गंगा की ओर से हवा का एक तेज झोंका आया और रोहिणी के अस्तित्व से टकराता हुआ आगे निकल गया। उसके साथ ही मुझे रोहिणी की एक दर्द-भरी चीख सुनाई दी और उसका अस्तित्व

भी गायब हो गया। हाँ, एक बात बतलाना भूल ही गया था। हवा के उस झोंके के दायरे में मैंने साफ-साफ एक स्याह और भयानक मानवाकृति देखी थी। निश्चय ही वह रामाचारी की प्रेतात्मा थी।

इस घटना के बाद काफी दिनों तक रोहिणी मुझसे नहीं मिली। एक रात जब मैं गहरी नींद में सो रहा था तो सपने में दिखलायी दी वह मुझको। बोली, “रामाचारी के कारण मैं चाहकर भी पार्थिव काया की रचना नहीं कर सकती और अब तुमसे न उस ढंग से मिल ही सकती हूँ, इसीलिए सपने में आना पड़ा मुझे।”

मैं रोहिणी के निकट पहुँचा। उसका स्पर्श करना चाहा पर वह संभव न हो सका।

“मैं सूक्ष्म शरीरधारिणी हूँ इस समय। तुम पार्थिव शरीर के द्वारा मुझे सिर्फ सपने में ही देख सकते हो, मेरा स्पर्श नहीं कर सकते। मेरी शारीरिक अनुभूति भी नहीं प्राप्त कर सकते।” रोहिणी ने कहा।

“मैं तुम्हारा स्पर्श चाहता हूँ। तुम्हारे सान्निध्य में आना चाहता हूँ। रोहिणी बोलो, यह सब कैसे संभव होगा ? बतलाओ।”

रोहिणी हँस पड़ी। बोली, “इतने व्याकुल हो गये हो मेरे लिए ? जरा अपने पीछे तो देखो !”

जब सिर घुमाकर पीछे की ओर देखा तो आश्चर्यचकित रह गया। मेरा स्थूल शरीर बिस्तर पर निश्चेष्ट पड़ा गहरी नींद में सो रहा था और उसके सिर की ओर से धुएँ की-सी एक पतली-सी लकीर निकलकर मुझसे जुड़ी हुई थी। वह सूक्ष्मतम प्राण की लकीर थी जिसके द्वारा मेरे स्थूल शरीर का अगोचर संबंध मेरे सूक्ष्म शरीर से जुड़ा हुआ था। जब वही प्राण की लकीर कमजोर होकर टूट जाती है तो दोनों शरीर हमेशा-हमेशा के लिए अलग हो जाते हैं। उसी को मौत कहा जाता है। इसी अगोचर संबंध के कारण मैं रोहिणी का न स्पर्श कर सकता था और न उसके निकट ही जा सकता था।

उस दिन से हर रात सपने में मिलने लगी रोहिणी, मगर हम एक-दूसरे से दूर ही रहते। चाह कर भी एक-दूसरे का स्पर्श नहीं कर पाते थे।

मैंने इन सारी घटनाओं की चर्चा एक दिन अवधूत महाशय से की। उन्होंने बतलाया कि डाकिनी विद्या के बल पर आकर्षित होकर अब रोहिणी की आत्मा पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की परिधि में आ गयी है। वह बाहर नहीं निकल सकेगी और न लोक-लोकांतर में ही जा सकेगी। जब तक वह कहीं जन्म नहीं ले लेगी, तब तक इसी प्रकार मिलती रहेगी तुमसे।

अवधूत महाशय का कहना सही साबित हुआ। वह लगातार कई सालों तक मुझसे सपने में मिलती रही। उस समय बड़ी विचित्र अनुभूति होती मुझे। मेरा पार्थिव शरीर तो बिस्तर पर पड़ा रहता गहरी नींद में मगर मैं अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा धरती की सीमा में ही रोहिणी के साथ बहुत दूर-दूर भ्रमण करता। पर इस स्थिति में मैंने न कोई आवाज सुनी और न किसी जीवित व्यक्ति को ही देखा। ध्वनिहीन वातावरण में विकट शून्य का अनुभव करते हुए मैं सिर्फ उन्हीं लोगों को देख पाता जो संसार

के लिए मर चुके होते। जिन्हें हम मृतात्मा कहते हैं।

मैंने अधिकांश मृतात्माओं को पुनः शरीर धारण करने के लिए व्याकुल देखा वे शरीर के लिए पागलों की तरह चीखते-चिल्लाते नजर आते। जहाँ स्त्री-पुरुष सहवास करते रहते, वहाँ वे मृतात्मायें भीड़ लगा लेतीं और गर्भ में घुसने की असफल चेष्टा करतीं। इसके अलावा जहाँ कोई व्यक्ति मर रहा होता, जहाँ कोई दुर्घटना हुई होती अथवा जहाँ-कहीं कोई दुर्घटना होने वाली होती, वहाँ भी उनकी भीड़ दिखलायी देती थी। गंदी बस्तियों में, शराबखाने में, श्मशान और कब्रिस्तानों में भी वे दल बाँधकर घूमते हुए नजर आतीं।

इस तरह लगातार दो-तीन वर्षों तक रोहिणी के साथ पृथ्वी के ही वातावरण में छिपे अदृश्य जगत के अदृश्य प्राणियों के बीच भ्रमण करने के बाद मेरी समझ में एक अति महत्वपूर्ण तथ्य आया। वह यह कि जीवित अवस्था में जो व्यक्ति जिस संस्कार और विचार का होता है, मरने के बाद उसी के अनुसार और उसी के आधार पर वह अदृश्य लोक में भी परिस्थिति और वातावरण का निर्माण कर लेता है। इतना ही नहीं, उसी विचार और संस्कार के अनुसार जीवित व्यक्ति सक्रिय मस्तिष्क के ज्ञान-तंतुओं पर अपना प्रभाव डालकर उन्हें अच्छे या बुरे कामों के लिए प्रेरित भी किया करते हैं और उनके माध्यम से अपनी अधूरी कामना या वासना की पूर्ति भी किया करते हैं।

यदि किसी व्यक्ति के स्वभाव, चरित्र अथवा विचार में अकस्मात् अच्छा या बुरा परिवर्तन हो जाता है तो समझना चाहिए कि उस पर कोई अदृश्य मृतात्मा अपना प्रभाव डाल रही है जिससे अकस्मात् उस व्यक्ति में परिवर्तन आ गया। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति अकस्मात् अपने चरित्र, स्वभाव और संस्कार के प्रतिकूल कोई अच्छा या बुरा काम कर बैठता है तो समझ लीजिए कि इसमें किसी अदृश्य का हाथ है।

मृतात्माओं के अच्छे-बुरे प्रभावों से अपने मस्तिष्क को बचाने के लिए सबसे अच्छा तरीका यही है कि हम अपने मन को कभी दुर्बल न करें। उसमें हीन भावना न आने दें।

वास्तव में मनुष्य में विचार ही मुख्य है। विचारों के ही अनुसार संस्कार बनते हैं और संस्कार के आधार पर जीवन का निर्माण होता है। यह जीवन चाहे लौकिक हो या पारलौकिक, न कहीं स्वर्ग है न कहीं नर्क। मरने के बाद अच्छे विचार ऐसे सुखद और आनंददायक वातावरण का निर्माण कर देते हैं, जिन्हें हम स्वर्ग कह सकते हैं। बुरे विचारों से क्लेश, यातना और मानसिक कष्टों का वातावरण तैयार होता है। वही नर्क है। जीवन को पाने का एक मूल्यवान अवसर है। इस अवसर के जरिए जीवन पाया भी जा सकता है और खोया भी जा सकता है और मानव-जीवन कितना मूल्यवान और महत्वपूर्ण है यह तभी समझ में आता है, जब मरकर हम दोनों को खो बैठते हैं।

उस रात भी यही सब सोचते-सोचते न जाने कब गहरी नींद सो गया मैं। रोज की तरह उस रात भी रोहिणी सपने में आयी। बड़ी उदास थी वह। उसके चेहरे पर किसी गहरे दुःख की छाया थी। भीगें स्वर में बोली, "जानते हो ! आज हमारी मुलाकात

की आखिरी रात है। इसके बाद तुमसे कभी न मिल सकूँगी।”

“क्यों ?”

“आत्मा की दुनिया में मेरी उम्र खत्म हो गयी है। अब मैं तुम्हारी दुनिया में जन्म लेने वाली हूँ।” थोड़ा रुककर मेरी ओर गहरी नजर से देखती हुई रोहिणी बोली, “मेरी एक सहायता करोगे ?”

“पहले कुछ बताओ तो।”

रोहिणी एक लंबी साँस लेकर बोली, “तुम तो जानते ही हो कि मेरे जन्म लेने के बाद भी रामाचारी की आत्मा मेरा पीछा नहीं छोड़गी। इंसान की जिंदगी में भी वह मुझे परेशान करेगी। तुमको उसकी आत्मा से मुझे मुक्ति दिलानी होगी। उसके चंगुल से छुड़ाना होगा मुझको। यही मेरी समस्या है और इस समस्या को तुम्हीं हल कर सकोगे।”

“मगर मुझसे यह सब होगा कैसे ? न मैं तंत्र-मंत्र जानता हूँ न मेरे पास कोई तांत्रिक सिद्धि ही है, जिससे तुम्हारी सहायता कर सकूँ। दूसरी बात यह है कि तुम्हारे जन्म लेने के बाद तुमको पहचानूँगा कैसे ?”

मेरी बात सुनकर रोहिणी हँस पड़ी। बोली, “तांत्रिक सिद्धि तो मैं ढूँगी कालिकानंद अवधूत की वही जो डाकिनी है न, वह तुमको मिलने आयेगी। उसकी सहायता से तुम मुझे बड़ी आसानी से छुटकारा दिला सकोगे।”

“हे भगवान ! वह डाकिनी ! सिहर उठा मैं। नहीं, नहीं, मुझे डाकिनी सिद्धि नहीं चाहिए।” काँपते स्वर में बोला, “इन सबके चक्कर में पड़कर अपनी दुर्गति नहीं कराऊँगा मैं।”

“दुर्गति कैसी ? तुमको एक मानवेतर शक्ति मिल जायेगी। मेरी तो सहायता करोगे ही, इसके अलावा उसके जरिये जो चाहो, वह कर सकते हो तुम। कोई भी काम तुम्हारे लिए असंभव न होगा। जब भी तुम शराब पिओगे वह तुरंत तुम्हारे सामने आ जायेगी फिर तो जो चाहो, नौकरानी की तरह कारवाओ उससे। रही बात मेरे पहचानने की, तो तुम बड़ी आसानी से मुझे पहचान लोगे। मैं तुमसे २३-२४ साल की उम्र में मिलूँगी। जिस युवती की देह और उम्र मैं लेना चाहती हूँ, उसी युवती से मिलती-जुलती शक्त होगी मेरी।”

“क्या यही कामना थी तुम्हारी ?” मैंने पूछा, “इसी कामना को पूरी करने के लिए बार-बार तुमने मुझसे अनुरोध किया था ?”

“नहीं !” थोड़ा गंभीर होकर रोहिणी बोली—“वह कामना मेरी नहीं, मेरी आत्मा की कामना है। अब मैं जन्म लेकर तुमसे मिलूँगी, तभी तुम उस कामना को पूरा करोगे।”

“क्या उस कामना को बताओगी नहीं मुझसे।”

“अभी बतलाने से कोई फायदा नहीं। समय आने दो, स्वयं मालूम हो जायेगा तुमको।” इतना कहकर रोहिणी गायब हो गयी।

कुछ दिनों बाद सुनने में आया कि अवधूत महाशय की मृत्यु हो गयी। पूरी रात वह चीखते-चिल्लाते रहे, फिर सवेरे अपने कमरे में मृत पाये गये थे। मुझे समझते देर नहीं लगी निःसन्देह उस तंत्र-साधक की डाकिनी ने ही जान ले ली थी। उन्हें मार

कर उसने अपने को मुक्त कर लिया।

इसके पीछे रोहिणी की प्रेरणा तो नहीं थी ? संभव है उसी की प्रेरणा से डाकिनी ने मार डाला हो अवधूत महाशय को। उनका मकान आज भी भुतहा पड़ा है। कोई उसमें रहने का साहस नहीं करता। कभी-कदा रात के समय किसी के चीखने-चिल्लाने की दर्द-भरी आवाज जरूर सुनायी देती है उसमें।

लगभग २७-२८ वर्ष के दीर्घकाल के बाद पिछले वर्ष मई में वह लड़की मेरे सामने न आयी होती तो शायद ही कभी याद पड़ती ये तमाम घटनाएँ।

लड़की का नाम था अमिता। दुबली-पतली देह, गोरा रंग, लंबा चेहरा और बड़ी-बड़ी आँखें। उम्र यही करीब २३-२४ वर्ष। उसके साथ वृद्ध पिता भी थे। पहले मैंने समझा कि अपनी कोई जिज्ञासा या कौतूहल शांत करने के लिए आयी होगी, पर बाद में मालूम हुआ कि ऐसी कोई बात नहीं थी। वह अपनी एक समस्या लेकर मेरे पास आयी थी।

अमिता सुन्दर और आकर्षक तो थी ही, इसके अलावा उसका गला भी सुरीला था। संगीत से एम.ए. कर रही थी वह। लेकिन यह सब होते हुए भी उसकी जिंदगी बर्बाद हो रही थी। उसकी सारी जिंदगी में जहर घुल गया था। भयंकर प्रेतबाधित थी वह। काफी उपचार के बावजूद कोई लाभ नहीं हुआ था। बड़े-बड़े तांत्रिक, ओझा, मुल्ला और मौलवी हार मान चुके थे। कोई अमिता को मुक्त न करा सका प्रेतबाधा से। जब मैंने कहा कि मैं न तांत्रिक हूँ और न भूत-प्रेत हटाने का काम ही करता हूँ तो यह सुनकर अमिता का चेहरा उदास हो गया।

सिर झुका कर वह जाने क्या सोचने लगी।

उसी समय मेरे कमरे का खुला दरवाजा अपने आप बंद हुआ और फिर खुल गया। निश्चय ही कोई दुष्ट प्रेतात्मा थी वह। मैंने सिर घुमाकर अमिता की ओर देखा तो दंग रह गया। उसके पीछे एक स्याह आकृति खड़ी थी। बड़ी वीभत्स और डरावनी थी वह। मेरा अपना कमरा मंत्रपूरित है। कोई भी दुष्ट आत्मा उसमें प्रवेश नहीं कर सकती। कोई अपनी इच्छा-शक्ति को यहाँ स्वतंत्र भी नहीं रख सकता। फिर वह प्रेतात्मा कैसे घुस आयी मेरे कमरे में ? घोर आश्चर्य हुआ मुझे।

मेरे एक मित्र हैं। नाम है डॉ. कुरबान अहमद। वह अरबी फारसी व तंत्र-मंत्र के अच्छे जानकार हैं। मैंने उसी समय उन्हें बुलाकर अमिता को दिखाया। वे देखते ही चौंक पड़े। बोले, “इस लड़की पर कोई नट-प्रेतात्मा है। काफी पुराना लगता है यह।” फिर कोई मंत्र बुदबुदाकर बोले—डॉ. कुरबान अहमद जिंदगी में बहुत बड़ा जादूगर रहा है वह। यदि इसकी रूह किसी को पकड़ लेती है तो फिर छोड़ने का नाम ही नहीं लेती।”

“क्या आप इसके लिए कुछ कर नहीं सकते ? बेचारी लड़की की जिंदगी चौपट हो रही है।”

“अगर कोई नट की प्रेतात्मा को पकड़ ले तो बाद का काम मैं सँभाल लूँगा।”
डॉ. कुरबान बोले।

मैं जानता था कि नट की प्रेतात्मा को पकड़ना अपने आपको मौत के मुँह में

डालना है। मगर उस वक्त मैं न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर बोला उठा, “ठीक है, डॉक्टर साहब! मैं नट की प्रेतात्मा को पकड़ूँगा। बाद में आप समझिएगा। अच्छा, पहले आप उसे इंसान की शक्ल में ले आइये।”

और जैसे ही नट की प्रेतात्मा इंसान की शक्ल में आयी, उसे देखकर मैं एक बारगी स्तब्ध रह गया। मेरे सामने लंबी-चौड़ी काठी का सिर पर जटाजूट बाँधे वही साधु खड़ा था जिसको मि. ब्राउन ने गोली मारी थी। दूसरे ही क्षण मुझे रोहिणी की कथा याद आ गयी। रोज एक नयी लाश पर नहा कर कायाकल्प... एक के बाद एक तमाम घटनाएँ सजीव हो उठीं मानस में। सिर घुमाकर मैंने अमिता की ओर देखा, “हे भगवान अब क्या होगा ? यह तो वही लड़की है, जिसकी लाश को मैंने अरावली की गुफा में देखा था। बिल्कुल वही रूप, वही रंग और वही चेहरा। कहीं कोई वैसम्य नहीं और तभी याद आयी रोहिणी और उसकी बात ... तो क्या रोहिणी ने ही अमिता के रूप में जन्म लिया है ?

“हाँ” इसमें जरा-सा भी संदेह नहीं रह गया। रोहिणी की ही आत्मा थी अमिता की देह में।

फिर रुका नहीं मैं। आलमारी में रखी शराब की बोतल खोलकर एक ही साँस में पूरी शराब पी गया। कहने की जरूरत नहीं, दूसरे ही क्षण एक काली स्याह छाया मेरे कमरे में मंत्रपूरित वातावरण में मँडराने लगी। वह छाया थी डाकिनी की, कालिकानंद अवधूत की सिद्ध डाकिनी की छाया। सारा कमरा दुर्गन्ध से भर उठा, इसके साथ ही फिस्-फिस् करके हँसने की हल्की आवाज निकलने लगी।

फिर जो होना था, वही हुआ। मंत्रसिद्ध शराब पाकर डाकिनी ने दूसरे ही क्षण नट की प्रेतात्मा को पकड़ लिया। इसके बाद शुरू हुआ डॉ. कुरबान का तंत्र-मंत्र। मगर इसकी भारी कीमत अदा करनी पड़ी कुरबान मियाँ को। जाते-जाते नट की प्रेतात्मा उनकी दुधमुँही औलाद को ले गयी। मुझे तो कोई कीमत नहीं अदा करनी पड़ी मगर हाँ, हमेशा के लिए कालिकानंद अवधूत की डाकिनी जरूर गले पड़ गयी। उसे रोज एक बोतल शराब और मुर्गे का गोश्त चाहिए। आप ही बताइए कहाँ से लाऊँ रोज ये दोनों चीजें। रोहिणी ने कहा था कि तुम्हारी वह मदद करेगी। तुम जो चाहोगे, वह उससे करा सकते हो। बात अपनी जगह पर बिल्कुल सत्य है, मगर मैं इस सत्य से भी भली-भाँति परिचित हूँ कि एक बार भी इस दुर्धर्ष तामसिका शक्ति से काम लिया गया नहीं कि वही नतीजा होगा जो अवधूत महाशय की जिदगी का हुआ था। हर समय मैं यही सोचता रहता हूँ कि कैसे पिंड छूटे उस डाकिनी से। रोहिणी की सहायता तो कर दी मैंने, अपना वचन भी पूरा कर दिया, पर यदि यह जानता होता कि इसका ऐसा फल मिलेगा, तामसिक लोक की एक भयंकर तामसी शक्ति मेरे गले बँध जायेगी तो सच पूछिए, मैं कभी मोह-माया में न पड़ता और न कभी सहायता करता और न वचन देता।

अंत में आपको बता दूँ—अमिता को यह नहीं मालूम है कि उसके भीतर भयंकर तंत्र-साधिका की आत्मा है और वह नट उसका गुरु था।

ब्रह्मपिशाच का शाप

प्रेतों की जितनी योनियाँ हैं, उनमें एक योनि ब्रह्मप्रेत की भी है। प्रेतशास्त्र में इस योनि के तीन मुख्य काम बतलाये गये हैं—पहला ब्रह्मपिशाच का रूप, दूसरा रूप ब्रह्मराक्षस का और तीसरा रूप ब्रह्मवीर का। भारतप्रसिद्ध हरसूब्रह्म, हरिरामब्रह्म, तुलसीरामब्रह्म आदि इसी तीसरे रूप के ब्रह्म हैं। इन तीनों प्रकार के ब्रह्मप्रेतों का संबंध केवल ब्राह्मण जाति से समझना होगा। जो ब्राह्मण स्वयं किसी कारणवश आत्महत्या करता है उसको ब्रह्मपिशाच की योनि प्राप्त होती है। यदि किसी ब्राह्मण ने धर्म, सम्प्रदाय अथवा समाज, जाति, संस्कृति आदि की रक्षा हेतु आत्मदाह किया है तो उसे ब्रह्मवीर की योनि प्राप्त होती है। इसी प्रकार जिस ब्राह्मण की किसी कारणवश हत्या कर दी गयी है अथवा स्वयं अकालग्रस्त होकर मर गया है तो उसे ब्रह्मराक्षस की योनि मिलती है।

अपने-अपने स्थान पर ये तीनों प्रकार के ब्रह्मप्रेत मानवेतर, आयु प्राप्त भयंकर दुर्घर्ष और अत्यंत शक्तिशाली होते हैं। उनमें असीम प्राण-बल होता है। मनः-शक्ति और इच्छा-शक्ति भी अत्यंत प्रखर और तीव्र होती है, जिससे पदार्थ अणुओं का संगठन करके वे अपने को किसी भी रूप में आकार अथवा शरीर में प्रकट कर सकते हैं। मनोनुकूल वातावरण भी तैयार कर सकते हैं। वे भयंकर दुर्घटनाओं, तूफानों, झंझावातों और सामूहिक नर-संहार के भी कारण बनते हैं। वे प्रकृति में विकृति पैदा कर तरह-तरह का उत्पात कर जन-जीवन को अस्त-व्यस्त करने में सिद्धहस्त होते हैं।

प्रेतशास्त्र के अनुसार ब्रह्मप्रेतों की स्थिति पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की परिधि के बाहर है। वे जिस दिन और समय अपने पार्थिव शरीर का त्याग किए रहते हैं उस दिन, उस समय प्रत्येक वर्ष अपने मृत्यु-स्थल पर आते हैं। यदि उस स्थान पर उनके निमित्त मंदिर, चौरा अथवा समाधि बनी होती है तो उसमें प्रवेश कर वे कुछ समय विश्राम करते हैं। वे सूक्ष्म लोक के अत्यंत शक्तिशाली और भयंकर प्राणी माने जाते हैं। उनकी आयु सूक्ष्म लोक में कम से कम सौ वर्ष और अधिक से अधिक एक हजार वर्ष होती है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि स्थूल जगत का एक दिन सूक्ष्म जगत के एक मिनट के बराबर होता है। खैर, आयु पूर्ण होने पर ब्रह्मप्रेत पुनः मानव योनि में जन्म लेते हैं या फिर “वेताल” की योनि में चले जाते हैं। वह प्रेतों की अंतिम योनि समझी जाती है। उसके ऊपर क्रमशः यक्ष, गंधर्व, किन्नर और देव योनियाँ हैं। कहने की आवश्यकता नहीं, ये समस्त गुह्य योनियाँ मानव-योनि से संबंधित हैं। उन्हें सिद्ध करने तथा उस लौकिक कार्यों की सफलता के लिए सहायता प्राप्त करने की अनेक साध्य-प्रसाध्य विधियाँ और क्रियाएँ हैं।

तांत्रिक साधना से संबंधित जितने मार्ग हैं उनमें एक मार्ग “अघोर मार्ग” भी है। अघोरमार्गीय श्मशान साधना, चिता साधना, शव साधना आदि कठिन साधनाओं द्वारा वे सिद्ध होते हैं। उनकी प्रसन्नता और अप्रसन्नता दोनों घातक और विनाशकारक हैं। देव

जाइएगा। मैं आपको सुंदरगढ़ पहुँचाने की व्यवस्था भी कर दूँगा। आप चिंता न करें।”

“आपको कैसे मालूम हुआ कि मैं सुंदरगढ़ जाऊँगा ?” मैंने एकबारगी चौककर पूछा।

मेरी बात सुनकर हँसते हुए बोला, “मुझे नहीं मालूम होगा तो भला किसको मालूम होगा महाराज !” इतना कहकर खड़ा हो गया वह और साथ चलने का आग्रह करने लगा।

एक बार तो हिचकिचाया मैं। सोचा, खाना तो खा लिया है। रात बिताने के लिए जगह भी मिल गयी है। क्या होगा जाकर। फिर न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर अटैची उठाई और चल पड़ा उसके पीछे-पीछे।

लगभग १५-२० मिनट चलने के बाद वह रुक गया। बोला, “लीजिए महाराज पहुँच गये हम लोग।” मैंने नजर घुमाकर चारों ओर देखा तो अंधेरे में सामने कुछ दूर पर एक आलीशान महल दिखाई पड़ा। मन ही मन सोचने लगा—देखने में तो यह व्यक्ति बहुत साधारण लगता है, मगर है संपन्न।

वर्षा बन्द हो चुकी थी उस समय। चतुर्दशी का रूपहला चंद्रमा बादलों की ओट से झाँकने लगा था। उसकी दूधियाँ चाँदनी में वह महल बड़ा ही रहस्यमय लगा मुझे। चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। ऐसा लगा मानों मैं किसी अनजाने लोक में आ गया हूँ। रास्ते में अपना परिचय देते हुए उसने मुझे बतलाया था कि उसका नाम विष्णु शर्मा है। कई पीढ़ी से वह वहाँ रह रहा है। बाल-बच्चे नहीं हैं। केवल पत्नी है। नाम है माधुरी। माधुरी के मधुर निश्छल प्रेम के वशीभूत होकर उसने अंतर्जातीय विवाह किया था। अतः ब्राह्मण-समाज से निकाल दिया गया। लेकिन उसे इसकी कोई परवाह नहीं थी। उसके विचार से नारी नीच से नीच जाति की क्यों न हो, वह पवित्र है। उसकी पवित्रता से जाति का कोई संबंध नहीं। यदि नारी का प्रेम निष्कलंक और निश्छल है तो मनुष्य को मानवीय गुणों से भर देता है। देवता की कोटि में पहुँचा देता है। आज तक जितने लोग महापुरुष के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं उनमें से अधिकांश के पीछे नारी की ही प्रेरणा और उसी का निश्छल प्रेम रहा है। विष्णु शर्मा ने कहा, “माधुरी ऐसी ही नारी है। जीवन भर उसने मेरा साथ दिया और आज भी दे रही है।” न जाने क्यों ये सब सुनकर मेरे मन में माधुरी को देखने की लालसा जागृत हो गयी। इसके लिए अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। उसे विशाल महलनुमा मकान के दरवाजे पर ही हाथ में लालटेन लिए पति की प्रतीक्षा करती हुई खड़ी मिल गयी माधुरी।

“महाराज यही है मेरी पत्नी माधुरी।” हँसते हुए विष्णु शर्मा ने कहा।

मैंने माधुरी की ओर देखा।

पति जैसा ही उसके शरीर का भी रंग एकदम काला था। पर नाक-नकश से वह आकर्षक, कमनीय और सुंदर थी। अब तक मेरी धारणा थी कि गौर वर्ण की ही सुंदर होती हैं, लेकिन माधुरी को देखकर अपना विचार बदलना पड़ा मुझे। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में न जाने कैसी चमक थी जो मेरी आत्मा की गहराइयों में उतरती चली गयी। घनी स्याह केश-राशि उसके नितंबों तक फैली हुई थी। पुष्ट उन्नत उरोजों

का मादक आकर्षण किसी को भी मोह सकता था। उसके शरीर की बनावट देखकर मुझे ऐसा लगा मानो कोणार्क के मंदिरों में पत्थरों पर बनी कोई देवी सजीव होकर आ खड़ी हुई है मेरे सामने।

विष्णु शर्मा ने उल्लास भरे स्वर में अपनी पत्नी को मेरा परिचय देते हुए कहा, “ये काशी के पंडित जी हैं। धन्य भाग्य है मेरा कि आपने मेरे यहाँ ठहरने और भोजन करने का अनुरोध स्वीकार कर लिया।” फिर उन्होंने पत्नी को आदेश दिया, “शीघ्र भोजन तैयार करो।” मेरी ओर मुस्कराकर देखती हुई माधुरी भीतर चली गयी। उसके बाद विष्णु शर्मा के साथ मैं एक काफी बड़े कमरे में पहुँचा।

कमरे का राजसी ठाट-बाट देखकर दंग रह गया मैं। छत से कीमती झाड़-फानूस लटक रहे थे, जिनमें रंग-बिरंगी मोमबत्तियाँ जल रही थीं। दरवाजों और खिड़कियों पर लाल और पीले रंग के कीमती रेशमी पर्दे झूल रहे थे। कमरे के एक पड़े तख्त पर मोटा गद्दा बिछा था, जिस पर राजसी ढंग से तकिए और मसनद लगे हुए थे। तख्त के बगल में कीमती लकड़ी की जड़ाऊ मेज और कुर्सियाँ पड़ी थीं। फर्श पर कीमती कालीन बिछा हुआ था। पेंटिंग की हुई दीवारों पर राजा-महाराजाओं के साथ सर पर रेशमी पगड़ी बाँधे, मिरजई पहने, गले में मोती और रुद्राक्ष की माला डाले, मस्तक पर भस्म-टीका लगाए पंडितों के कई तैल चित्र टँगे थे, जिनमें एक था विष्णु शर्मा का भी। मैं चित्रों को निहार रहा था तभी भोजन की थाली लिए माधुरी आ गयी।

भोजन स्वादिष्ट था। कभी कल्पना भी नहीं की थी कि इस पहाड़ी और जंगली इलाके में इतना स्वादिष्ट भोजन मिलेगा खाने को ? चाँदी की थाली और कटोरी में करीने से सजे विविध प्रकार के व्यंजनों को देखकर आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक था। भोजन करते समय माधुरी सामने बैठी रहीं। उस समय उसके कृष्णवर्णीय चेहरे पर एक विचित्र भाव था और थी एक विचित्र-सी चमक। वह अपलक मेरी ओर निहार रही थी।

भोजन करने के बाद सहज भाव से मैंने पूछा, “विष्णु शर्मा कहाँ गये ?” “आते होंगे।” इतना कहकर माधुरी मेरे बिल्कुल निकट आ गयी और फिर मद्धिम स्वर में बोली, “रात ढलनेवाली है। चलिए अब थोड़ा विश्राम कर लें आप।”

उस लंबे-चौड़े कमरे में एक छोटा-सा सजा हुआ कमरा था। एक ओर पलंग बिछा था। कमरे में घुसते ही एक विचित्र-सी गंध नासा-पुट में भर गयी। वह गंध कैसी थी, समझ न सका मैं। पीछे-पीछे माधुरी भी आ गयी। जब मैं बिस्तर पर लेट गया तो वह मेरे बिल्कुल निकट पलंग पर बैठ गयी। उसकी क्या इच्छा है, यह समझते देर न लगी मुझे। उसकी आँखों में झाँककर देखा मैंने वहाँ कामना और वासना की मिली-जुली आग धधक रही थी। चेहरे पर भी अजीब से सम्मोहन का-सा भाव उतर आया था।

“क्या चाहती हैं आप,” मैंने व्याकुल होकर पूछा।

मेरा प्रश्न सुनकर माधुरी के चेहरे पर अजीब-सी वेदना उभर आई और उसी के साथ भर आई उसकी सूनी-सूनी आँखों में न जाने कैसी दुख की छाया भी।

वह हताश स्वर में धीरे से बोली, “पंडितजी ! आप पढ़े-लिखे विद्वान व्यक्ति हैं। आप तो जानते ही हैं कि नारी की पूर्णता मातृत्व में है। मुझे अभी तक वह पूर्णता प्राप्त नहीं हुई। इतना लंबा समय जीवन का व्यतीत हो गया पर मेरी गोद सूनी ही रही। कोई फूल खिल न सका मेरी गोद में।”

बोलते-बोलते माधुरी का गला भर आया और गालों पर आँसू की बूँदें लुढ़क आईं। किसी प्रकार गला साफकर कहने लगी वह—“महाराज ! मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए। आपके पवित्र शरीर के स्पर्श से मेरी कामना पूरी हो जाएगी। मेरी सूनी गोद में फूल खिल जाएगा।”

“हे भगवान ! क्या चाहती है माधुरी।” मैं झटके से उठकर पलंग पर बैठ गया। किन्तु कुछ बोले, इसके पहले ही माधुरी सहसा मेरे ऊपर झुक गयी। जैतून की शाखा की तरह उसने अपनी दोनों बाँहें मेरे गले में डाल दीं। उसकी गर्म साँसों मेरे सीने से टकरा रही थीं। उसके शरीर का दबाव बढ़ता ही जा रहा था मुझ पर। अचानक उसकी आँखें दप् से जल उठीं। फिर अधिकार भरे स्वर में बोली, “महाराज ! मेरी कामना पूर्ण किए बिना आप सुधारानी की कामना और उनका मनोरथ पूर्ण नहीं कर सकते।”

“सुधा रानी को कैसे जानती हो तुम ?” मैंने चकित होकर पूछा, “यह सब कहने का मतलब क्या है तुम्हारा ?”

मेरी बात सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ी माधुरी। बड़ी ही विचित्र और रहस्यमयी हँसी थी उसकी। उसने उसी मुद्रा में मुझे आलिंगनबद्ध कर लिया और फिर उल्लसित होकर कहने लगी, “महाराज ! आप मतलब जानना चाहते हैं। सब कुछ बतलाऊँगी आपको। अब तो बतलाना ही पड़ेगा मुझे ...।” उस समय माधुरी ने जो कुछ बतलाया वह निश्चय ही विलक्षण, रहस्यमय और अविश्वसनीय था।

विश्वासराय चौधरी के परदादा लावण्यराय चौधरी बहुत बड़े जमींदार थे। चुपके-चुपके अंग्रेजों की सहायता करके उन्होंने अपनी जमींदारी काफ़ी बढ़ा ली थी। विष्णु शर्मा उनके परम मित्र तो थे ही, इसके अलावा वह राजपंडित भी थे। उस समय उनके जैसा वेद और तंत्रशास्त्र का धुरंधर विद्वान कोई नहीं था। विष्णु शर्मा कद के लंबे, गौर वर्ण, सुंदर और तेजस्वी पुरुष थे। उनका बहुत आदर-सम्मान करते थे लावण्यराय चौधरी। विष्णु शर्मा भी पूजा-पाठ और तंत्र-मंत्र द्वारा लावण्यराय चौधरी की श्रीवृद्धि, यशवृद्धि और राज्यवृद्धि के लिए सदा प्रयास करते रहते थे। फलस्वरूप तीनों प्रकार की वृद्धियाँ बराबर होती गयीं।

विष्णु शर्मा पहुँचे हुए तांत्रिक थे, इसमें संदेह नहीं। एक दिन प्रसन्न होकर उन्होंने लावण्यराय चौधरी से कहा, “महाराज ! मैं आपके लिए एक ऐसे तांत्रिक दीप के निर्माण में लगा हूँ, जिसकी प्रखर ज्योति के धवल प्रकाश से आपकी कीर्ति अमर हो जाएगी।”

यह सुनकर लावण्यराय चौधरी प्रसन्न और गद्गद हो उठे। यथासमय उस अमोघ तांत्रिक दीप का निर्माण हो जाने पर विष्णु शर्मा ने उसे राजमहल के ऊपर स्थापित

कर दिया, दीपावली की महानिशा में।

उस दीप से चौबीसों घंटे एक विलक्षण शुभ्र प्रकाश फूटता रहता था। आँधी, तूफान और वर्षा आदि का भी उस दीपक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। निश्चय प्रखंड दीप था वह, जो तांत्रिक मंत्र-शक्ति के बल पर हमेशा प्रज्वलित रहता था। उसे देखकर सभी आश्चर्यचकित थे। समय व्यतीत होता गया।

आखिर विनाश की घड़ी आ पहुँची। राजमहल के उत्तर की ओर कुछ दूर पर डोमों की बस्ती थी। डोमों का चौधरी भी उसी बस्ती में रहता था। उसकी एक युवा सुंदर पुत्री थी। इतनी रूपवती कि कोई देखकर सोच भी नहीं सकता था कि वह नीच जाति की हो सकती है। एक दिन उस रूपसी सुंदरी पद्मगंधा पर न जाने कैसे विष्णु शर्मा की दृष्टि पड़ गयी। देखते ही वह वासना के वशीभूत होकर पागल हो उठे। किन्तु लोक-लाज और समाज के भय से अपनी मुग्ध भावना को उस समय दबा दिया उन्होंने। फिर भी वासना की आग भीतर ही भीतर सुलगती रही।

समय व्यतीत हो गया। दीपावली का पर्व आ गया। राज्य की श्रीवृद्धि के लिए हर वर्ष उस रात्रि विष्णु शर्मा तांत्रिक विधि से लक्ष्मी की पूजा करते थे। इसके लिए विभिन्न जातियों की ५ कन्याओं की आवश्यकता पड़ती थी, जिसमें डोम जाति की कन्या का विशेष महत्व था। इसके लिए विष्णु शर्मा ने इस बार डोम चौधरी की लड़की को ही बुलाने का निश्चय किया। जब उन्होंने अपने इस विचार से लावण्यराय चौधरी को अवगत कराया तो उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की। अनुष्ठान और पूजा के समय लड़की आ गयी। अनुष्ठान पूरा होने पर अन्य लड़कियों को तो विष्णु शर्मा ने वापस भेज दिया, किन्तु डोम चौधरी की लड़की को रोक लिया। एकांत पाते ही विष्णु शर्मा सहसा उसे अपने बाहुपाश में कसकर बोले, “मैं तुम्हारे रूप और यौवन पर मुग्ध हूँ और तुमसे विवाह करना चाहता हूँ। क्या तुम मेरी पत्नी बनोगी ?”

डोम-पुत्री यह सुनकर निहाल हो गयी। उसने विष्णु शर्मा की ओर दृष्टि उठाई। उनका तेजस्वी रूप और बलिष्ठ शरीर देखकर वह भी मुग्ध हो गयी। उसने विष्णु शर्मा के गले में बाँहें डाल दीं। महातांत्रिक विष्णु शर्मा की अतृप्त कामना पूर्ण हो गयी। उन्होंने उसी समय डोम-पुत्री से गंधर्व विवाह कर लिया।

दूसरे दिन उस विवाह की चर्चा जंगल की आग की तरह चारों ओर फैल गयी। लोगों को यह अंतर्जातीय विवाह पसंद नहीं आया। इतना बड़ा विद्वान और तांत्रिक एक डोम-पुत्री से विवाह करेगा। किसी ने इसकी कल्पना तक न की थी। विष्णु शर्मा को काफी समझाया-बुझाया गया। जाति से निकालने की धमकी दी गयी। किन्तु वे अपने निर्णय पर अटल रहे।

आखिर उन्हें ब्राह्मण-समाज से निष्कासित कर दिया गया। जब यह सारी कथा लावण्यराय चौधरी को मालूम हुई तो उनकी भी भाँहें तन गईं। वे स्वयं उस रूपसी डोमबाला के रूप-यौवन का भोग करने के लिए मन ही मन लालयित थे और उसके रूप-सौरभ का पान करने के लिए अवसर की खोज में थे। इस घटना से उन्होंने पराजय का अनुभव किया। कुछ दिनों बाद जब विष्णु शर्मा दरबार में आए तो उन्हें घूरते हुए

वे क्रोध भरे स्वर में बोले, “पंडितजी ! आपने ब्राह्मण-समाज का ही नहीं, बल्कि मेरा भी घोर अपमान किया है। अब हमेशा के लिए मेरे महल का दरवाजा आपके लिए बंद हो गया है। आप तत्काल मेरी जमींदारी की सीमा के बाहर निकल जाइए।”

विष्णु शर्मा कब सहन करने वाले थे। बोले, “ठाकुर साहब, ब्राह्मणों से किस स्वर में बोलना चाहिए ? क्या इसकी शिक्षा आपको नहीं मिली है।”

यह सुनकर लावण्यराय चौधरी क्रोध से आग-बबूला होकर बोले, “अरे, विष्णु शर्मा, अब तुम ब्राह्मण कहाँ रह गये। तुम तो चांडाल-कन्या से विवाह करके ब्राह्मण-समाज के कलंक का टीका बन गये। अब किस मुँह से अपने को ब्राह्मण कहते हो। तुम तो चांडाल हो चांडाल और चांडाल को मैं राजपंडित के पवित्र आसन पर नहीं बैठा सकता।” भरे दरबार में इस घोर अपमान को विष्णु शर्मा विष की तरह पी गये। कुछ बोले नहीं।

इस पर लावण्यराय चौधरी का क्रोध और भड़क उठा। क्रोधावश में उन्मत्त से वह चीख उठे, “नीच, चांडाल अभी इस क्षण मेरी जमींदारी की सीमा के बाहर निकल जा।” और सहसा लावण्यराय चौधरी अपने स्थान से उठकर आगे बढ़े और ढकेल कर बाहर कर दिया विष्णु शर्मा को।

गिरते-गिरते बचे विष्णु शर्मा। उसी समय किसी ने उन्हें सँभाल लिया। पलट कर देखा तो उनकी पत्नी थी बगल में। उसने सब कुछ सुन लिया था। क्रोध और आवेश में उसका चेहरा तमतमा उठा था। पति को सँभालते हुए उसने लावण्यराय चौधरी की ओर एक बार जलती दृष्टि से देखा और फिर नागिन की तरह फुँफकारती हुई ऊँचे स्वर में कहने लगी, “राय चौधरी ! मेरे सामने मेरे पति का अपमान किया है तुमने जिसे कोई भी नारी कदापि सहन नहीं कर सकती। तांत्रिक-साधना में जात-पात और ऊँच-नीच का कोई भेदभाव नहीं है। चांडाल-कन्या का प्रयोग यदि पूजा-उपासना में शास्त्रविहित है तो उसे पत्नी के रूप में ग्रहण करना भी शास्त्र के अनुकूल ही है।” फिर विष्णु शर्मा की ओर संकेत करके उसने कहा, “पंडित जी तंत्रशास्त्र के प्रकांड विद्वान हैं। इन्होंने सर्वप्रथम तांत्रिक दीक्षा देकर मुझे “भैरवी” रूप में स्वीकार किया और बाद में पत्नी रूप में। मैं इनकी भैरवी हूँ और धर्म के अनुसार पत्नी भी। भैरवी का स्थान पत्नी से ऊँचा होता है। इन दोनों महत्वपूर्ण और गरिमामय पदों के अनुसार मुझे तांत्रिक साधना-भूमि में जो स्थान प्राप्त हो चुका है उस स्थान-शक्ति के बल पर मैं तुमको शाप देती हूँ कि तुमने नारी की भोग लालसा के कारण मेरे पति को अपमानित किया है, इसलिए तुम नपुंसक हो जाओगे और तुम्हारा वंश नहीं चलेगा। इतनी ही नहीं, जो तुम्हारी गद्दी पर बैठेगा वह भी तुम्हारी ही तरह नपुंसक और निर्वशी होगा।”

विष्णु शर्मा से अब और सहन नहीं हुआ। वह भी ऊँचे स्वर में बोल उठे, “महाराज, मैं भी जानता हूँ कि मेरी पत्नी को पाने की कामना पर तुषारापात होने के फलास्वरूप ही तुमने मेरा घोर अपमान किया है, इसलिए मेरे द्वारा निर्मित तांत्रिक दीप का अखंड प्रकाश ही अब तुम्हारे राज्य को नष्ट कर देगा। तुम्हारी संपूर्ण राज्य-

शक्ति म्लेच्छों के हाथ चली जाएगी।”

पति-पत्नी के भयानक शाप सुनकर दरबार में उपस्थित सभी लोग सन्न रह गये। लावण्यराय चौधरी का क्रोध पश्चात्ताप में परिणित होने लगा, मगर राजदंभ से मस्तक उठाकर बोले, “अरे ब्राह्मण, तूने एक चांडाल कन्या के मोहपाश से बँधकर मेरा अपमान करते हुए शाप दिया है। इसलिए मैं भी अपने राजत्व की मर्यादा की शपथ खाकर कहता हूँ कि अन्य ब्राह्मणों के समान तुझे कभी भी मुक्ति नहीं मिलेगी और तू सदा चांडाल होकर ब्रह्मपिशाच की कष्टदायिनी योनि में भटकता रहेगा। तेरी यह चांडाल पत्नी भी निर्वश होकर तेरे साथ ब्रह्मपिशाचिनी के रूप में भटकती रहेगी।”

इस प्रकार ब्रह्मबल और राजबल आपस में टकराकर अपने-अपने को नष्ट कर लिए। लावण्यराय चौधरी का शाप सुनते ही विष्णु शर्मा का गौरांग शरीर काला पड़ने लगा। तेजस्वी चेहरे पर चांडालों की-सी हीनता-दीनता और वीभत्सता आ गयी। उन्होंने चुपचाप पत्नी का हाथ पकड़ा और सर नीचा करके दरबार से बाहर निकल गये।

दोनों को एक-दूसरे के शाप ने तत्काल अपना फल दिखा दिया था। लावण्यराय चौधरी को तब तक कोई संतान नहीं हुई थी। उसी समय उनके चेहरे पर भी क्लीनत्व का भाव उतर आया। कुछ समय बाद ब्रिटिश शासन की सहायता किसी तरह न करने के कारण अंग्रेजों ने उनके सारे अधिकार छीन लिए।

इस अविश्वसनीय विलक्षण कथा को सुनने के साथ ही मेरा मस्तिष्क अवसन्न होने लगा था। शनैः-शनैः मन प्राण चेतना शून्य होने लगी थी और न जाने कब उसी अवश चेतना के वशीभूत होकर अपना आपा खो बैठा मैं। फिर एक अज्ञात सुखद अनुभूति से आत्मा भर उठी मेरी। जीवन में प्रथम और अंतिम बार वह स्व-अनुभूति हुई थी मुझको। माधुरी के मधुर कलश में भरे अमृत का मैं जाने कब तक पान करता रहा। सहसा किसी का कोमल स्वर कानों से टकराया, “पंडितजी ! वह चांडाल-कन्या और कोई नहीं, मैं ही हूँ। आपके स्पर्श से मेरी कामना, मेरी लालसा पूर्ण हो गयी। मेरी आत्मा भी मुक्त हो गयी महाराज ! इतना ही नहीं, मेरे पति विष्णु शर्मा भी ब्रह्म-पिशाच की योनि से मुक्त हो गये। हम दोनों पिछले सौ वर्षों से आप जैसे काशी के किसी ब्राह्मण की प्रतीक्षा में भटक रहे हैं।”

सुनते ही चेतनाशून्य हो गया मैं। और फिर उसी शून्यावस्था में मैंने देखा कि एक अति सुन्दर स्त्री-पुरुष का जोड़ा मेरे सामने खड़ा दोनों हाथ जोड़कर कह रहा है, “महाराज ! आपने मुझे मुक्त किया है। इसलिए हम लोग भी आपकी विद्वत्ता और मर्यादा की रक्षा करेंगे। आप विश्वासराय चौधरी से पुत्रेष्टि यज्ञ करवाइए। ब्राह्मणों को भोजन और दान-दक्षिणा दिलवाइए। सुधा रानी को अवश्य पुत्र-लाभ होगा। इसमें सन्देह नहीं।” अब समझ गया मैं। वे दोनों निश्चय ही माधुरी और विष्णु शर्मा थे। अब दोनों को प्रेत-योनि से मुक्ति मिल चुकी थी।

भोर के समय जब मेरी चेतना लौटी तो अपने आपको एक सुनसान खँडहर में पाकर आश्चर्य हुआ। मेरे चारों तरफ ४-५ व्यक्ति खड़े थे। खँडहर के एक ओर बहुत बड़ा पीपल का पेड़ था, जिसके नीचे ब्रह्म का चौरा बना था। सोचने लगा, “मैं

वेटिंग रूम से यहाँ कैसे, कब इस खँडहर में पहुँच गया ? तभी स्मृति में रात की सभी घटनाएँ एक-एक कर उभरने लगीं। रात में जो कुछ अनुभव किया था निश्चय ही वह सब ब्रह्मपिशाच की लीला था इसमें संदेह नहीं रहा।

मेरे चैतन्य होते ही आसपास के लोगों में एक व्यक्ति ने आगे बढ़कर कहा, “मैं सुंदरगढ़ के राय चौधरी का सेक्रेटरी मोहन हूँ पंडित जी ! आप इस भुतहे स्थान पर कैसे पड़े थे ? यह तो ब्रह्मपिशाच का स्थान है। इस पीपल पर ब्रह्मपिशाच का निवास है। बड़ा भयंकर है वह, पकड़ लेता है तो फिर छोड़ता नहीं। लोगबाग डर के मारे रात को क्या, दिन में भी इधर आने से कतराते हैं।” फिर थोड़ा रुककर वह बोला, “पंडितजी ! मैं आपको लेने के लिए आया हूँ। सामने गाड़ी खड़ी है। चलिए अब यहाँ से।”

मुझसे कुछ न बोला गया। जाकर चुपचाप गाड़ी में बैठ गया मैं। सुंदरगढ़ पहुँचा तो पति के साथ सुधा जी मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं। जब मैंने उन्हें रात की सारी बातें बतलाई तो पति-पत्नी अवाक् रह गये।

कुछ देर बाद मैंने कहा, “यदि आप संतान चाहते हैं तो ब्रह्मपिशाच के कथनानुसार व्यवस्था कीजिए।”

पति-पत्नी दोनों मेरी बात मान गये। दूसरे ही दिन पूजा-पाठ, हवन और ब्राह्मण-भोजन आदि शुरू हो गया। तभी एक विलक्षण घटना घटी।

एक दिन हवन करते समय अचानक सुधाजी की आँखें लाल हो गयीं। देखते ही देखते उनका चेहरा कठोर और वीभत्स हो उठा। न जाने कहाँ से उनमें भयंकर शक्ति आ गयी। बाल अपने आप खुलकर पीठ पर बिखर गये। उसी विचित्र अवस्था में हवन-कुंड में वह कूदने के लिए आगे बढ़ीं। कई लोगों ने उन्हें पकड़ना चाहा, किन्तु उन्होंने सभी को ढकेल दिया और सहसा हवन-कुंड की धधकती आग में कूद पड़ीं।

चारों ओर हाहाकार मच गया। कुछ लोग तो इस अविश्वसनीय दृश्य को देखकर डर के मारे भाग खड़े हुए। समझते देर न लगी मुझे, जिस पिशाच-पिशाचिनी को भयंकर शाप के बंधन से मुक्त कराने के लिए मुझे अपने जीवन का भारी मूल्य चुकाना पड़ा था वही दोनों उस समय सुधाजी पर आक्रमण कर बैठे थे।

राय चौधरी दौड़े-दौड़े मेरे पास आये और चीत्कार करते हुए बोले, “शर्माजी किसी भी प्रकार सुधाजी को बचा लीजिए।”

उस समय मैं भी किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया था। कुछ सूझ ही नहीं रहा था मुझे फिर भी इतना तो जानता ही था कि सुधाजी का शरीर अग्नि से अप्रभावित रहेगा।

काफी प्रयत्न करके आखिर सुधाजी को हवन-कुंड से बाहर निकाला गया। सचमुच उनका शरीर पूर्ण अप्रभावित रहा अग्नि से। उस समय वह अचेत थीं मगर उसी अवस्था में न जाने क्या बड़बड़ा रही थीं। मेरा अनुमान सच निकला। उनके शरीर का एक रोआँ तक नहीं जला था, बल्कि उनका चेहरा अलौकिक आभा से चमक रहा था। मेरी ओर अपलक निहारते हुए उन्होंने कहा, “मुझे पहचानते हैं महाराज ? मैं माधुरी हूँ।”

स्वर और बोलने के ढंग से समझ गया कि वह माधुरी की मुक्त आत्मा ही है। मैंने कहा, “अब क्या चाहती हो तुम ? जो कुछ चाहिए था वह तो तुमने पा लिया मुझसे।”

पैशाचिक हँसी हँसकर माधुरी की आत्मा बोली, “हम दोनों को शरीर चाहिए, मनुष्य का शरीर। अब अधिक समय तक इस अवस्था में नहीं रहना चाहते ? मुझे उपाय बतलाइए कि हम दोनों आपके संसार में कैसे आएँ ?”

“ठीक है। रास्ता बताता हूँ। मगर किसी प्रकार का अमंगल मत करना।” मैंने कहा।

समयानुसार सुधाजी को दो संतानें हुईं एक पुत्र राजीव राय और एक पुत्री विभा राय। दोनों को देखकर मुझे घोर आश्चर्य हुआ। राजीव राय का रूप-रंग बिल्कुल विष्णु शर्मा से मिलता-जुलता था और विभा राय भी एकदम माधुरी की प्रतिमूर्ति थी। कहीं कोई वैषम्य नहीं था। निश्चय ही दोनों की आत्मा ने राजीव और विभा के रूप में जन्म लिया था। किन्तु इस रहस्य को कभी किसी को नहीं बतलाया मैंने। यदि बतला भी देता तो भला कौन करता विश्वास।

पर जिस अमंगल की कामना थी वह होकर ही रहा। उसे रोकने में असमर्थ रहा मैं। लावण्यराय चौधरी और सुधाराय चौधरी का अकस्मात् मात्र तीन दिनों के अंतर पर निधन हो गया। उस समय उनकी दोनों संतानों की आयु केवल चार और दो वर्ष की थी।



पं. अरुण कुमार शर्मा की अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

मारुणपात्र

(संशोधित एवं परिवर्धित द्वितीय संस्करण)



कालपात्र

(योग-तंत्र के गूढ़ गोपनीय प्रसंग)



योग तांत्रिक साधना प्रसंग

(योग-तंत्र के गूढ़ गोपनीय रहस्य)



तीसरा नेत्र

(हिमालय और तिब्बत के प्रच्छन्न/अप्रच्छन्न साधकों और योगियों से सत्संग और योग-तंत्र साधना प्रसंग)



कुण्डलिनी शक्ति



परलोक विज्ञान



तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी

(योग-तंत्र कथा प्रसंग)



फाँसी

(भूत-प्रेत कथा प्रसंग)



अरुणकुमार शर्मा

- जन्म काल और स्थान—1924 ई० वाराणसी
- अध्ययन स्थल— वाराणसी
- कर्म स्थल—उत्तर प्रदेश, गुजरात और बंगाल
- विशेष अध्ययन—योग, तंत्र और ज्योतिष
- चिन्तन-मनन-विषय—वेद, पुराण और उपनिषद्
- साधना विषय—योग-तंत्र
- शोध एवं अन्वेषण विषय—प्रकृष्ट विज्ञान
- विशेष कार्य— अध्यापन और लेखन
- वर्तमान में—केवल चिन्तन, मनन एवं लेखन
- अब तक विभिन्न विषयों पर सैकड़ों लेख, निबन्ध और कथाएँ प्रकाशित।
- प्रकाशित पुस्तकें—तंत्र विज्ञान, हिन्दी साहित्य दर्शन, मरणोत्तर जीवन का रहस्य, परलोक विज्ञान, कुण्डलिनी, मारणपात्र और अब 'वह रहस्यमय कापालिक मठ'।
- शीघ्र प्रकाश्य—तीसरा नेत्र, कालपात्र, योग तांत्रिक साधना प्रसंग, मृतात्माओं से सम्पर्क (कथा संग्रह), तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी (कथा संग्रह)।